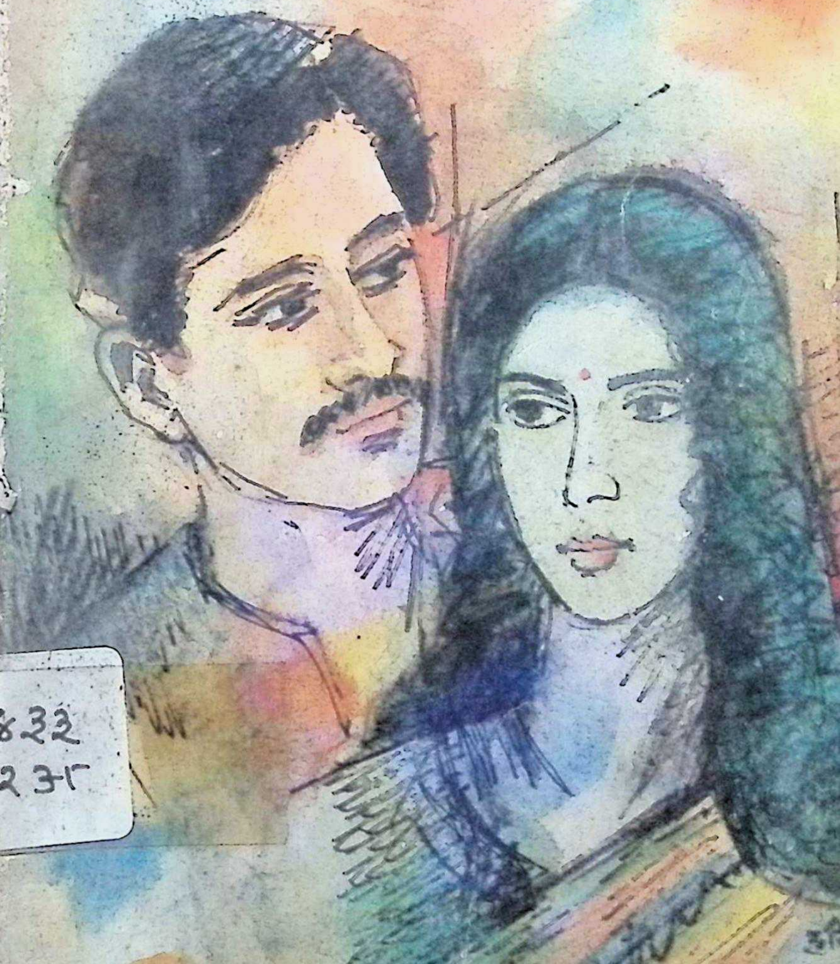
शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

अन्तिम परिचय



अन्तिम परिचय

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास

अपने पराये
अकेली
चन्द्रनाथ
अनुराधा
परिणीता
बिन्दु का बेटा
बैकुण्ठ का दानपत्र
बड़ी दीदी
बिराज बहू
ब्राह्मण की बेटी
पण्डित मोशाय
मंझली दीदी
देवदास
नया विधान
देहाती समाज
शुभदा
श्रीकान्त भाग-१
श्रीकान्त भाग-२
विप्रदास
देना-पावना
गृहदाह
शेष प्रश्न
पथ के दावेदार

सुबोध पब्लिकेशन्स

अन्तिम परिचय

['शेषेर परिचय' का रूपान्तरण]

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

Rs 30.00

प्रकाशक : **सुबोध पब्लिकेशंस**, २/३ बी, अंसारी रोड, नई दिल्ली-२/
संस्करण : १९९१/मुद्रक : अजय प्रिण्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

ANTIM PARICHAY by Sharat Chandra

अन्तिम परिचय

तीन माह बीतते-बीतते तारकनाथ और राखाल घनिष्ठ मित्र हो गए। उनका उठना-बैठना साथ-साथ होता था।

आज जब तीन बज गए और तारक नहीं आए तो राखाल की बेचैनी और व्याकुलता बढ़ गई। भवानीपुर में स्त्रियों की सभा होने वाली थी आज। उसमें भले घरों की शिक्षित स्त्रियाँ एकत्रित होंगी। उस सभा में जाने के लिए राखाल उद्विग्न हो रहा था। सारी व्यवस्थाएँ जाने की हो गई थीं। सफेद कुर्ता, धोती और रेशमी साफा पलंग पर रखे थे। समीप ही पालिश किया हुआ चमचमाता जूता। सोने की रिस्टवॉच। सोने की चेन। सब चमचमा रहे थे।

चाय का पानी स्टोव पर जरूरत से ज्यादा उबल चुका था और तारक अभी तक नहीं आया था। राखाल के कान दरवाजे पर किसी के पाँवों की आहट सुनने के लिए अधीर थे। मित्र की प्रतीक्षा और सभा में जाने की व्यग्रता के बीच उसका मन झूल रहा था।

कठिनता तो यह थी कि वह ताला लगाकर भी नहीं जा सकता था।

वह बार-बार दरवाजे तक जाता था और लौट आता था। एक बार तो वह चप्पल पहनकर सड़क तक भी जा आया। फिर चाय बनाकर अकेला ही पीने लगा। वह विचारने लगा कि इस चाय पीने तक वह प्रतीक्षा करेगा फिर वह अकेला ही चला जायेगा। वह इससे अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकता। मुझे कौन-सा उससे परामर्श लेना है। अगर इसका महत्त्व वह जानता तो स्वयं भी आ जाता और समय के पूर्व आ जाता। यदि वह नहीं आया तो कल उसकी बाड़ी (घर) चला जाऊँगा। उसके मन में ऐसी बातों का संघर्ष चलता रहा।

वैसे राखाल अपने को संन्यासी समझता है। कारण, वह संसार में

अकेला है। वह ठीक तरह से अनुमान भी नहीं लगा सकता कि उसके परिवार में कौन-कौन थे और कब उसका उन सबसे सम्बन्ध टूट गया। किस प्रकार टूट गया। वह अपने कुटुम्ब के बारे में बताना ठीक नहीं समझता। पटलडाँगा। वहाँ वह एक कमरे में रहता है। किराये पर। सीलनभरा कमरा है पर हवा और धूप का प्रवेश भी है।

राखाल फैशनपरस्त है। खुली तबीयत का व्यक्ति है। इसलिए उसके कमरे में एक सुन्दर पलंग, मेज-कुर्सी और दो अलमारियाँ हैं। वह सुन्दर व आकर्षक कपड़े पहनता है। बिजली का पंखा भी है। मतलब साफ है कि राखाल के पास सुख-सुविधा की सारी चीजें हैं।

एक बुढ़िया नौकरानी है। वह राखाल का सारा काम करती है। वह उसे नानी के सम्बोधन से पुकारता है। बुढ़िया भी उसे स्नेह करती है। घर के कामकाज से लेकर बाजार से सामान लाने का काम वह करती है। तनख्वाह के अलावा राखाल ऊपर से भी कुछ देता रहता है।

राखाल सुबह-सुबह लड़कों के ट्यूशन करता है। बाकी समय वह सभा-बैठकों में देता है। वह राजनीतिक सभाओं में न जाकर साहित्यिक बैठकों में जाता है। राजनीति का अस्थिर-अशांत वातावरण उसे अच्छा नहीं लगता। वह छोटी कक्षा के लड़कों को पढ़ाता है। नौकरी के लिए आरंभिक प्रयासों के पश्चात् और असफल होने के बाद उसने उस ओर प्रयत्न करना ही छोड़ दिया है।

वह साहित्यकार है पर किसी पत्र-पत्रिका में उसकी रचना नहीं छपती। वह रात-रात-भर बैठकर लेखन-कार्य करता है पर उसका वह क्या करता है, यह रहस्य ही बना हुआ है।

वह किस कक्षा तक पढ़ा है, जब कोई व्यक्ति इस प्रकार की जानकारी उससे चाहता है तो उसका चेहरा ऐसा बन जाता है कि मिडिल से लगाकर डॉक्ट्रेट तक किसी भी डिगरी का अधिकारी उसे समझा जा सकता है। उसकी अलमारियों में काव्य, साहित्य, दर्शन, विज्ञान सभी विषयों पर पुस्तकें भरी पड़ी हैं। प्राचीन अथवा वर्तमान, डॉक्टरी हो या विज्ञान—वह उन पर पूर्ण अधिकार के साथ बातें करता है। बड़े-बड़े ग्रंथों और उनके लेखकों के नाम पूर्ण परिचय के साथ उसे याद हैं। होमर, स्पेंसर और ड्रक

आॅर्थर के काव्यों की तुलनात्मक समालोचना और भारतीय दर्शनों के समक्ष उनकी तुच्छता का वर्णन जब वह करता है तो तत्त्वों के स्पष्टीकरण में अपने पूर्ण पांडित्य का प्रदर्शन कर डालता है। वोर-युद्ध का कौन सेनापति था, यह सब रहस्य उसके लिए खेल है। भारतीय गोल्ड स्टैंडर्ड, रिवर्स कौंसिल और मुद्रा विषयक प्रश्नों पर वह अपनी बहुत गम्भीर सम्मति दे सकता है और देता भी है। यही नहीं, न्यूटन के विचार किस दिन आइंस्टाइन के विचारों से मेल खाकर एक हो जाएँगे, यह भविष्य-वाणी वह बड़े गर्व से करता है। उसकी बातें सुनकर कोई हँस देता है और कोई श्रद्धा से शिष्य हो जाता है। इतना अवश्य है कि राखाल के परोपकारी होने में किसी को संदेह नहीं और यह सभी जानते हैं कि वह दूसरों की सहायता करने में सबसे आगे रहता है।

अनेक घरों के दरवाजे राखाल के लिए चौबीसों घंटे खुले रहते हैं। उसे बेगार करने में मजा आता है। बड़ी आयु वाली स्त्रियाँ राखाल से विवाह करने के लिए नित्य ही आग्रह करती हैं, परन्तु राखाल इसके उत्तर में कान पकड़कर मुस्कराकर केवल इतना ही कह देता है—"कुछ और कहिए न? ऐसी सलाह मत दीजिए। मैं अपनी आज की दशा में बहुत सुखी हूँ।" राखाल के हितैषी उसकी इस प्रवृत्ति से दुःखी हैं, लेकिन उसके इस पागलपन को छुड़ाने के लिए आज तक किसी भी हितैषी ने यह नहीं कहा, "भाई राखाल, हमने एक सुन्दर युवती तुम्हारे विवाह के लिए ठीक कर दी है। इस विवाह की सारी व्यवस्था हो चुकी है और तुम्हें अब शादी करनी ही पड़ेगी।" हितैषियों में इतना अधिकार कहाँ था और कोरी सहानुभूति पर राखाल भला पिघलता ही क्यों? इसी प्रकार राखाल अपनी जीवन-नौका को खे रहा था।

राखाल अकेला है और भविष्य भी उसे ऐसा ही दिखाई देता है कि स्त्रियाँ उसकी इस कमी का सहानुभूति के साथ विचार करती हैं। वह उनके आग्रह को भी पूरी सहानुभूति के साथ स्वीकार करता है और उनकी बेगारें करता रहता है।

चाय भी समाप्त हो गई, पर तारक अभी तक नहीं आया।

राखाल कपड़े पहनकर जैसे ही दरवाजे की ओर बढ़ा वैसे ही तारक

सामने से आता दिखाई दिया। राखाल ने समीप आते ही कहा, "क्यों जी, इसी को आवश्यक समय कहते हैं ?"

"क्या वहाँ नहीं जाना है ?"

"जी नहीं, मैं तो शाम तक यहीं बैठा रहूँगा।" उसने व्यंग्य से कहा।

"परन्तु अभी शाम दूर है, बैठो न !"

"ना मित्र, अब कल परामर्श होगा।" और दुपट्टा गर्दन में डाल लिया।

तारक गम्भीर स्वर में बोला, "तब तो समझिए सम्मति नहीं होगी ! कल तड़के मैं बहुत दूर चला जाऊँगा। फिर कभी···नहीं, ईश्वर ऐसा न करे, शायद बहुत दिनों तक भेंट ही न हो सके।"

"क्या मतलब ?" राखाल ने विस्मित होकर कुर्सी पर बैठते हुए पूछा।

"मतलब साफ है कि बर्दवान जिले में, एक नये स्कूल की हैडमास्टरी मिल गई है। मुझे वहाँ नौकरी करने के लिए जाना पड़ेगा।"

"किसी प्राइमरी स्कूल में ?"

"ना, हाई स्कूल में।"

"वेतन कितना मिलेगा ?"

"नब्बे रुपया और एक छोटा-सा घर।"

राखाल हँस पड़ा और बोला, "यह सब धोखा जान पड़ता है। वह रकम सौ से भी अधिक है। क्या संसार के दूसरे सब विद्वान् मर गए जो तुम्हारे पास··?"

"अवश्य मर गए होंगे। फिर गँवार देहात में ऐसा कौन विद्वान् जाने को तैयार होगा ?"

राखाल मुस्कराते हुए बोला, "बन्धु जाने को प्रस्तुत क्यों नहीं होगा ? सौ रुपये मिलने पर तो आदमी यमराज के यहाँ भी जा सकता है, बर्दवान की तो बात ही क्या है ?" इतना कहकर घड़ी देखी। तीन बजकर दस मिनट हो गए थे। "यह सब पागलपन है मित्र ! कल सवेरे विचार करेंगे, देखूँगा कि उन्होंने क्या लिखा है ? यह सब छल-कपट है। अच्छा, अब तो मैं चलता हूँ।" वह उठ खड़ा हुआ।

"मित्र, केवल दस मिनट और ठहरो। उन्होंने झूठ लिखा या सच,

परन्तु मैं आज रात की गाड़ी से अवश्य जाऊँगा।"

"क्यों ? क्या मेरी बात पर विश्वास नहीं हो रहा है ?"

तारक चुप रहा।

"यदि किसी दिन तुमसे न मिलूँ तो मन अधीर हो जाता है। कुछ आदत-सी बन गई है मेरी।" तारक ने गम्भीरता से कहा।

"और शायद मेरी नहीं !" राखाल चुप हो गया।

"यदि जीवित रहा तो बड़े दिन की छुट्टियों में भेंट होगी।" बात का प्रसंग बदलते हुए तारक ने अपनी अँगूठी मेज के एक कोने पर रखकर कहा, "मुझे बीस रुपये की आवश्यकता है···।" धीरे से सिर झुका लिया।

"अर्थात् यह अँगूठी गिरवी रख रहे हो !" बीच में ही राखाल बोल उठा और अँगूठी उठाकर खिड़की के बाहर फेंकने ही वाला था कि तभी तारक जल्दी से हाथ पकड़कर बोला, "गिरवी क्यों मित्र ? इसको बेचने पर भी क्या कोई दस रुपये दे सकेगा ? जाने से पूर्व यह अपना स्मृति-चिह्न तुम्हारी अँगुली में पहनाऊंगा।" उसने अँगूठी अंगुली में पहना दी और फिर कहने लगा, "बस ! अब तुम जा सकते हो। मैंने दस मिनट के लिए कहा था और पन्द्रह मिनट हो लिये।"

राखाल के मस्तिष्क में गोष्ठी के चित्रों के स्थान पर दूसरे ही विचार अंकित हो चुके थे। दोनों मित्रों की आकृति बड़े शीशे में साफ दिखाई दे रही थी। राखाल अपने मध्यम कद, गौर वर्ण, गोल कपोल और सरल स्वभाव से भला आदमी दिखाई पड़ता है।

तारक पतला-दुबला, कद लम्बा, श्याम वर्ण आदमी देखने में बहुत शक्तिशाली है। उसके नेत्रों में एक विशेष प्रकार का आकर्षण है। आदमी विश्वासी है, सुख-दुःख में विचलित न होने की क्षमता रखता है। आयु लगभग अठारह साल की होगी, राखाल से दो-तीन साल कम।

"तुम्हारा जाना ठीक नहीं है।" राखाल ने कठोरता से कहा।

"क्यों ?" तारक की गम्भीर मुद्रा थी।

"क्यों क्या ? हाई स्कूल के दसवें दर्जे को पढ़ाना क्या कोई आसान काम है ? इतनी योग्यता होनी चाहिए कि उन्हें उत्तीर्ण करा सको। क्या···?"

"उन लोगों ने योग्यता नहीं, कॉलेज की डिगरियाँ माँगी थीं, सो मैंने पेश कर दीं और कमेटी ने उनके आधार पर मुझे हैडमास्टरी के पद पर नियुक्त कर दिया। लड़कों को पढ़ाने का उत्तरदायित्व मुझ पर और पास कराने का उन पर रहेगा।"

राखाल गम्भीरता से बोला, "तुम मुझसे बराबर झूठ बोलते रहे कि तुम पढ़ते-लिखते नहीं हो। भला ऐसा तुमने क्यों किया?"

तारक ने हँसकर कहा, "यह तो मैं अब भी कहता हूँ कि केवल डिगरियाँ ही तो ले ली हैं। पढ़ाई समाप्त करते ही नौकरी की खोज में लग गया। पढ़ने के लिए समय ही कहाँ मिला? कलकत्ते में तुम्हारी दया से दो समय भोजन का सहारा मिल गया।"

"तारक! देखना यदि फिर कभी तुमने···" बात समाप्त न होने पाई थी कि शीशे में एक तीसरा नारी-प्रतिबिम्ब दिखाई दिया। यह एक अपरिचित स्त्री थी जिसकी आयु यौवन को लाँघकर आगे बढ़ चुकी थी, गौर वर्ण, शरीर कुछ दुबला, सुन्दर साड़ी, दो-चार गहने, माथे पर सिन्दूर बिन्दु, नारी और नारी का एक विचित्र आकर्षण उसमें झलकता था।

क्षण-भर दोनों मित्र मौन नवागन्तुक के मुख को देखते रहे। फिर अचानक राखाल कुर्सी छोड़कर बोला, "यह क्या? अरी नई-माँ!" और महिला के पैरों पर सिर रखकर इस प्रकार लेट गया मानो कितने ही दिन का भटका हुआ वह आज अपनी पूर्ण श्रद्धा देना चाहता है।

"बेटा राजू!" महिला ने राखाल को ठोड़ी थामकर उठाते हुए कहा और स्वयं कुर्सी पर बैठ गई।

राखाल और उसका मित्र दोनों सामने धरती पर बैठ गए।

"तुरन्त नहीं पहचान सका माँ!" राखाल ने कहा।

"न पहचानने की तो आशा ही थी बेटा।"

"मैं सोच ही रहा था कि वैसे ही आपका लम्बा केशजाल दिखलाई पड़ गया। रंगीन आँचल में से झलकते हुए केश आपके पैरों की एड़ियों को चूम रहे हैं। उन दिनों की स्मृति कितनी स्पष्ट है कि जब वे लोग कहा करते थे, 'इन बालों में से थोड़े बाल लेकर देवी की मूर्ति को सजाना चाहिए।' आप भूली न होंगी माँ वह बात।"

माँ हँसने लगीं और बात बदलकर बोलीं, "यही तुम्हारे मित्र हैं न राजू ? क्या नाम है इनका ?"

"तारक भट्टाचार्य।" राखाल बोला, "लेकिन आप कैसे जान गईं कि यह मेरे मित्र हैं ?"

उन्होंने इस प्रश्न को भी दवा रखा। कहा, "सुनती हूँ तुम लोगों में बहुत प्रेम है ?"

"हाँ।" राखाल ने कहा, "परन्तु यह आज भर का ही अतिथि है। वर्दवान जिले के किसी गाँव में हैडमास्टर बनकर जा रहा है। मैं इसे समझाता हूँ कि एम० ए० पास करके मास्टरी की क्या चिन्ता करते हो, किन्तु इसे विश्वास नहीं हो रहा है कि यहाँ इतने बड़े कलकत्ता शहर में इसे कोई काम मिल जाएगा। कितनी बुरी बात है माँ ?"

नई-माँ ने मुस्कराकर कहा, "तुम्हारी बात पर विश्वास न करना कोई बुरी बात नहीं, लेकिन क्या तारक बाबू, आप सचमुच चले ही जाएँगे ?"

"परन्तु बात तो बुरी कुछ और ही हुई माँ ! राखाल राज का इतना लम्बा नाम तो आपने छोटे-से राजू में बदल दिया और मेरे नाम से पहले बाबू का पुछल्ला लगा दिया। मेरा नाम भी आपको छोटा करना होगा माँ।" तारक ने विनीत भाव से कहा।

"ऐसा ही होगा तारक।" नई-माँ ने मुस्कराते हुए कहा।

तारक प्रसन्न होकर कुछ कहना ही चाहता था कि उसकी वाणी अवरुद्ध हो गई। उसी समय नई-माँ बोलीं, "कभी उस मकान की ओर भी जाना होता है, राजू ?"

"चला तो जाता हूँ माँ ! लेकिन दुनिया-भर के झंझट चैन नहीं लेने देते। पन्द्रह-बीस दिन में कभी…।"

"कुछ समाचार है कि रेणुका की शादी हो रही है ?"

"किसने कहा आपसे ? मुझे तो कुछ भी सूचना नहीं है।"

"हाँ, निश्चय ही हो रही है। सवेरे दस बजे उसके शरीर पर तेल और उबटन मला जा चुका, परन्तु तुम्हें शादी रोकनी होगी।"

"किसलिए, माँ ?"

"इसलिए कि उसकी ससुराल में पागलपन का रोग है। बाबा, बुआ

दोनों पागल हैं। बाबा अभी-अभी अच्छे हुए हैं लेकिन कुछ दिन उन्हें भी जंजीर में बाँधकर रखा जा चुका है।"

"कैसी आफत है! क्या इन बातों पर विचार नहीं किया गया?" राखाल बोला।

"लड़का सुन्दर और धनी है और अभी पढ़ रहा है और तुम जानते हो रेणुका के पिता हरएक की बातों में आ जाते हैं। विश्वास कर बैठते हैं। यदि यह रहस्य जान भी जाते तो क्या हुआ? सब-कुछ समझ-बूझकर भी वह इसमें भय नहीं मानते।"

"बात तो यही है।" राखाल ने दुःख से कहा।

तारक के मन में राखाल के इस 'बात तो यही है' निरुत्साही स्वर ने हलचल पैदा कर दी। राखाल को वह बिना फटकारे न रह सका कि आखिर किस प्रकार वह उस विवाह का होना सहन कर सकेगा?

"परन्तु, भाई, क्या केवल मेरे कहने से विवाह रुक सकेगा? तुम ऐसा समझते हो!" राखाल ने कहा, "फिर अकेले रेणुका के पिता की ही बात नहीं है, घर में दूसरे लोग भी तो हैं।"

"रुकेगा क्यों नहीं? क्या लड़की के घर वाले भी लड़के के घर वालों के समान पागल हैं? क्या लड़की को आग में झोंकना है?"

"परन्तु हल्दी तो चढ़ चुकी।"

"तो क्या हुआ, लड़की के साथ अन्याय नहीं किया जा सकता।" महिला तारक की ओर बड़ी गम्भीरता से देख रही थी।

"मैं एक अपरिचित व्यक्ति हूँ। मुझे उसके घर वालों की ऐसी कटु आलोचना करने का अधिकार भी नहीं, परन्तु राखाल, मेरा मन कहता है कि तुम्हें अपनी सम्पूर्ण शक्ति यह विवाह रोकने में लगा देनी चाहिए। मैं कहता हूँ उसे मत होने दो मित्र!"

महिला ने कहा, "राजू! और कौन है वहाँ? केवल लड़की की सौतेली माँ है सो उसे इस विषय में बोलने का कोई अधिकार नहीं।"

राखाल चुप था।

महिला ने फिर कहा, "अच्छा राजू, तब तुम्हें बाग-बाजार जाना होगा। वहाँ जाकर लड़की के मामा को, जो कि उधर के कर्ता-धर्ता हैं, उन्हें

लड़की की माँ की कहानी सुना देना। हो सकता है कि काम पूरा हो जाय। यदि न हुआ तो मुझे कुछ और प्रयत्न करना पड़ेगा। मैं रात में ग्यारह बजे के पश्चात् आऊँगी, इस समय जाती हूँ।" इतना कहकर वह जाने लगी।

राखाल व्याकुल था। वह कहने लगा, "परन्तु इसके पश्चात् रेणुका का विवाह नहीं हो सकेगा माँ! भेद खुल जाने पर...।"

"न सही बेटा।" दृढ़ स्वर में माँ ने कहा।

राखाल ने अधिक बात बढ़ाना उचित न समझा। चरण छूकर पूर्ववत् प्रणाम किया। तारक ने भी उसका अनुकरण किया। द्वार तक जाकर माँ फिर अचानक घूम पड़ीं और तारक को सम्बोधित करके बोलीं, "तारक! अधिकार तो नहीं किन्तु राखाल के मित्र होने के नाते मैं अनुरोध करती हूँ कि तुम अभी दो दिन यहीं और ठहरो।"

तारक ने बड़े विस्मय के साथ ये शब्द सुने। अचानक कोई उत्तर न बन पड़ा और वह बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही बाहर चली गईं।

राखाल ने खिड़की से देखा कि वह पैदल ही जा रही थीं। गली के अन्त पर एक दरबान उनकी प्रतीक्षा में खड़ा था, वह उनके पीछे-पीछे चल दिया।

दो

तारक ने पूछा—"जाओगे नहीं?"

"ना। परन्तु तुम? आज ही बर्दवान जा रहे हो न?" राखाल ने कुर्ता उतार डाला।

"ना। तुम क्या करते हो, यह देखूंगा। अपनी इच्छा से न करोगे तो जबरन कराऊँगा।"

"चाय की केतली और एक बार चढ़ा दूं—क्यों?"

"चढ़ा दो।"

"कुछ नाश्ते के लिए बाजार जाकर ले आऊँ—क्यों?"

"स्वीकार है।"

"तो तुम केतली में पानी चढ़ा दो, मैं दुकान पर जाऊँ।"

वह धोती का पल्ला ओढ़कर, चट्टी पहनकर चल दिया। गली के मोड़ पर ही हलवाई की दुकान है—नकद पैसे नहीं देने होते—उधार मिल जाता है।

भोजन समाप्त हुआ।

सन्ध्या के पश्चात् लैंप जलाकर चाय की प्याली हाथ में लेकर दोनों मित्र टेबल के पास बैठे।

तारक ने प्रश्न किया, "अब क्या करोगे ?"

राखाल ने कहा, "मेरी अवस्था उस समय दस या ग्यारह वर्ष की होगी। मेरे बाबा चार-पाँच दिन पहले हैजे से मर गए थे। सबने बताया, 'बाबू लोगों की मँझली बेटी सविता बाबा के घर नवरात्र में दुर्गा-पूजा देखने आई है। तू जाकर उससे प्रार्थना कर।' बाबू लोगों का बूढ़ा गुमाश्ता मुझे साथ लेकर एक अन्तःपुर के भीतर उपस्थित हुआ। बाबू की मँझली लड़की दालान के आगे के चबूतरे पर एक किनारे बैठी सूप में तिल बीन रही थी।

गुमाश्ते ने जाकर कहा, 'मँझली बिटिया, यह ब्राह्मण का बालक तुम्हारा नाम सुनकर भिक्षा माँगने आया है। अचानक बाबा की मृत्यु हो गई है—तीनों कुलों में ऐसा कोई नहीं जो इसे संकट से पार लगाए।' उनकी आँखों में सुनकर आँसू भर आए। बोलीं, 'तुम्हारे क्या अपना कोई नहीं है ?'

मैंने कहा, 'जी, मौसी हैं लेकिन उन्हें मैंने कभी देखा नहीं।'

उन्होंने पूछा, 'श्राद्ध करने में कितने रुपये लगेंगे ?' यह मैंने सुन रखा था। मैंने कहा, 'पुरोहितजी कहते हैं, पचास रुपये लगेंगे।' वे सूप रखकर उठ गईं और एक बात भी नहीं पूछी। थोड़ी देर में लौटकर मेरे दुपट्टे के आँचल में दस-दस रुपये के पाँच नोट बाँध दिए। फिर पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है बेटा ?' मैंने कहा, 'साधारण नाम है राजू। ठीक नाम है राखाल राज।' बोलीं, 'तुम चलोगे बेटा, मेरे साथ मेरी ससुराल ? वहाँ अच्छा-सा स्कूल है, कॉलिज है, तुमको कोई कष्ट न होगा। चलोगे ?'

मुझे उत्तर नहीं देना पड़ा, गुमाश्ता महाशय जैसे उछल पड़े, बोले, 'जाएगा क्यों नहीं ? जाएगा—अभी जाएगा। इतना बड़ा भाग्य यह कहाँ पावेगा ? इससे बढ़कर असहाय इस गाँव में कोई नहीं है बिटिया। माँ दुर्गा

तुम्हें धन और दूध-पूत से सदा सुखी रखेंगी।' इतना कहकर बूढ़ा गुमाश्ता जोर से रोने लगा।"

तारक की आँखें भी सजल हो उठीं।

राखाल बोला, "मेरे पिता का श्राद्ध और महामाया दुर्गा की पूजा दोनों ही काम निबट गये। तेरस के दिन यात्रा करके, सदा के लिए गाँव छोड़कर, उनके स्वामी के घर में मैंने आश्रय लिया। वह दूसरी पत्नी थीं, इसी से सभी उन्हें नई-माँ कहते थे। मैं भी नई-माँ कहने लगा। सास-ससुर नहीं हैं, लेकिन सगे-सम्बन्धी, स्वजन-परिजन बहुत हैं। आर्थिक दशा अच्छी है, धनी भी कहें तो कह सकते हैं। इस घर की वह केवल गृहिणी ही नहीं, पूरी स्वामिनी हैं—वह जो कहती हैं वही होता है। स्वामी की अवस्था अधिक है, बाल सफेद हो चुके हैं। लेकिन उनका स्वभाव बच्चों का-सा सरल है। ऐसे मीठे स्वभाव का मनुष्य मैंने और कभी नहीं देखा। अपने लड़के जैसा प्यार और आदर दिया। गाँव में उनके बाग-बगीचा, धरती और खेती-बारी भी थी। दो-एक छोटे-मोटे तालुके भी थे और कलकत्ते में कोई एक व्यापार भी चल रहा था। लेकिन वह अधिकांश समय घर में रहते थे और तब लगभग आधा दिन उनका पूजा-घर में व्यतीत होता था।

मैं स्कूल में भर्ती हुआ। किताब-कापी-पैंसिल कागज-कलम आया, कुर्ता-धोती, जूता-मोजे कई जोड़े आए। घर में पढ़ाने के लिए मास्टर रखा गया। जैसे मैं इसी घर का जन्मा-जाया हूँ। यह बात सब जैसे भूल गए कि निराश्रय जानकर नई-माँ मुझे अपने साथ ले आई हैं।—तारक, इस जीवन में वे सुख के दिन अब फिर नहीं लौटेंगे। आज भी मैं चुपचाप लेटा-लेटा वही सब बातें विचारता हूँ।"

राखाल चुप हो गया और बहुत देर तक न जाने कैसा अनमना-सा हो रहा।

तारक ने कहा, "राखाल, न जाने क्यों मेरा हृदय धड़क रहा है। अच्छा, उसके बाद ?"

राखाल ने कहा, "उसके बाद इसी प्रकार बहुत दिन बीत गए। स्कूल में मैट्रिक पास करके कॉलिज में आई० ए० क्लास में भर्ती हुआ। एक दिन एकाएक भूचाल-सा आ गया—सब उलट-पुलटकर विश्व-ब्रह्माण्ड जैसे

तहस-नहस हो गया। सब तोड़-फोड़ से चूर-चूर हो गया—कहीं कुछ शेष न बचा।"

वह एक बार चुप हो गया।

फिर बोला, "इतने दिन मैंने किसी से कोई बात नहीं कही और कहता ही किससे? नहीं जानता, आज भी कहना उचित है कि नहीं—लेकिन छाती के भीतर जैसे एक तूफान-सा उठता रहता है···।"

तारक के मुख पर राखाल ने एक असीम कौतूहल देखा, किन्तु तारक ने कोई प्रश्न नहीं किया। क्षण-भर अपने मन की दुविधा से लड़कर अचानक उच्छ्वसित कण्ठ से राखाल बोला, "तारक, अपनी माँ को मैंने आँखों से नहीं देखा। माँ कहने से मुझे नई-माँ ही याद आती हैं। यही वह मेरी नई-माँ हैं।"

अब सचमुच ही उसका गला रुँध गया। दोनों आँखों में आँसू भर आए। उसके बाद बड़ी-बड़ी कई आँसुओं की बूँदें गिर पड़ीं।

उसने दो-तीन मिनट बाद आँखें पोंछकर आप ही शान्त होकर कहा, "वह तुमसे दो-तीन दिन रहने को कह गई हैं। शायद उन्हें तुम्हारी आवश्यकता है। बारह-तेरह साल पहले की बात कह रहा हूँ। उस दिन क्या घटना हुई थी, तुमको सुनाता हूँ। उसके पश्चात् रहना न रहना तुम्हारे पर निर्भर है।"

तारक चुप ही रहा।

राखाल बोला, "उन दिनों कलकत्ते से उन लोगों के एक आत्मीय प्रायः उनके घर आया करते थे। कभी दो-एक दिन और कभी सप्ताह, दो सप्ताह ठहरते थे। उनके साथ आता था तेल की मालिश करने खानसामा, तमाखू भरकर देने को नौकर, ट्रेन में चौकसी करने को दरबान—और कितने ही प्रकार के वेशुमार फल-मूल-मिष्ठान। तिथि-त्यौहार पर भेंट-उपहार का तो कोई पता ही न रहता था। उनके साथ इन नई-माँ का कोई दूर का या गाँव-घर का हँसी-मजाक का नाता था। केवल किसी सम्पर्क के हिसाब से ही नहीं, जान पड़ता है, शायद धन के हिसाब से भी इस घर में उनका आदर-सत्कार बहुत था। लेकिन घर की स्त्रियाँ धीरे-धीरे कुछ सन्देह-सा करने लगीं।

बात ब्रज बाबू के कानों में पहुँची। उस पर विश्वास करना तो दूर, उल्टे वह अप्रसन्न हो उठे। उनकी दूर के एक रिश्ते की फुफेरी बहन को अपनी ससुराल चले जाना पड़ा। सुना है, ऐसा ही हुआ करता है—यही संसार का साधारण नियम है, इसके सिवाय, अभी तो उनके मुँह से ही तुम सुन चुके हो कि ब्रज बाबू जैसे सरल स्वभाव के भले आदमी संसार में बिरले ही हैं। किसी कलंक को मन में स्थान देना ही उनके लिए कठिन है।

दिन बीतने लगे। बात दब गई, लेकिन विद्वेष-विष के बीज परवरिश पाने वाले दूर-सम्बन्ध के लोगों के एकान्त गृहकोण में उग आए। जिन्हें नई-माँ ने बड़े आदर और स्नेह से आश्रय दिया था, उन्हीं लोगों के मध्य। नई-माँ एक दिन केवल मुझे ही 'चलोगे बेटा मेरे पास?' कहकर नहीं बुला लाई थीं—और भी बहुतों को ले आई थीं विभिन्न स्थानों से। यह उनका स्वभाव ही था। इसी से फुफेरी बहन तो चली गई, किन्तु उसका बदला लेने को बुआजी रह गईं।"

तारक ने केवल गर्दन हिलाकर हाँ भरी।

राखाल बोला, "इस बीच षड्यन्त्र कितना गहरा और घातक हो उठा था, इसकी सूचना एक दिन अचानक गहरी रात में मुझे मिली। न जाने कैसे एक प्रकार के दबे गले के कर्कश कोलाहल ने मुझे जगा दिया। बाहर आया। देखा, सामने के कमरे के दरवाजे में बाहर से साँकल चढ़ी है। आँगन के बीच पांच-छः लालटेनें जमा हैं। बरामदे में एक किनारे पर सिर झुकाए ब्रज बाबू स्तब्ध बैठे हैं और उस कमरे के सामने नवीन बाबू—उनके चचेरे छोटे भाई—खड़े बन्द दरवाजे पर लगातार धक्के मारकर कड़ी आवाज में बार-बार कह रहे हैं, 'रमणी बाबू, दरवाजा खोलो, हम कमरे को देखेंगे। बाहर निकलो।'

ब्रज बाबू की कलकत्ते की आढ़त से यह नवीन बाबू बीस-पच्चीस हजार रुपये उड़ाकर कुछ दिनों से घर आ बैठे हैं।

घर की औरतें बरामदे के आस-पास खड़ी हैं। जान पड़ा, जैसे नौकर लोग पास ही कहीं आड़ में अपेक्षा कर रहे हैं। उनींदा होने के कारण पहले मामला कुछ समझ में नहीं आया, किन्तु क्षण-भर पश्चात् ही सब समझ गया। अभी कोई भयानक काण्ड घटित होगा, यह सोचकर भय से मेरा

शरीर पसीने में तर हो गया, आँखों के आगे अँधेरा छा गया। शायद मूर्छा आने से वहीं गिर पड़ता, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। दरवाजा खोलकर रमणी बाबू का हाथ पकड़े नई-माँ बाहर निकल आई। बोलीं, 'तुम कोई इनके हाथ मत लगाना। हम अभी इस घर से निकल जाते हैं।'

एक वज्रपात हो गया। यह क्या सचमुच ही इस घर की नई-माँ हैं ? किन्तु घर-भर के सब लोग उन लोगों का अपमान क्या करते, मानो स्वयं ही लज्जा से मर गए। जो जहाँ था, वहीं स्तब्ध होकर खड़ा रहा। नई-माँ और रमणी बाबू जब सदर द्वार पार कर गए, तब व्रज बाबू अचानक फफक-कर रो उठे। बोले, 'नई-बहू, तुम्हारी रेणु जो रह गई ! कल उसे मैं क्या कहकर समझाऊँगा ?'

नई-माँ मौन रहीं। धीरे-धीरे चली गईं। उस दिन रेणु तीन साल की थी और आज उसकी अवस्था सोलह साल की है। इन तेरह वर्षों के बाद आज एकाएक माँ दिखाई दी हैं लड़की को संकट से बचाने के लिए।"

अब तारक ने साँस छोड़कर कहा, "और इन तेरह वर्षों में माँ ने लड़की को आँखों की ओट नहीं किया और केवल लड़की को ही नहीं, खूब सम्भव है, तुम लोगों में से किसी को भी नहीं।"

राखाल ने कहा, "यही तो जान पड़ता है भाई। किन्तु क्या तुमने ऐसा मामला सुना है ?"

तारक ने कहा, "ना, नहीं सुना, लेकिन पढ़ा है। मैं इसमें एक अंग्रेजी के उपन्यास की झलक पाता हूँ। पर आशा करता हूँ इसका उपसंहार वैसा न हो।"

राखाल ने कहा, "जान पड़ता है, नई-माँ से अब तुम्हें घृणा हुई है तारक !"

तारक ने कहा, "घृणा उत्पन्न होना ही तो स्वाभाविक है राखाल।"

राखाल चुप रहा। यह उत्तर उसे अच्छा नहीं लगा, बल्कि इससे उसके मन पर जैसे कहीं चोट पहुँची। क्षण-भर बाद उसने कहा, "इसके बाद फिर गाँव में रहना न हो सका। व्रज बाबू ने कलकत्ते आकर फिर ब्याह किया और तभी से वे यहीं हैं।"

"और तुम ?"

राखाल ने कहा, "मैं भी उनके साथ आया। बुआजी ने मुझे निकाल देने की सिफारिश करके कहा, 'ब्रज भैया, वह अभागिनी ही तो इस बला को बटोर लाई थी, इसे भी दूर कर दो।'

मैं नई-माँ के स्नेह का पात्र होने के कारण बुआ की आँखों में खटकता था।

ब्रज बाबू शान्त प्रकृति के हैं, किन्तु बुआजी की बात सुनकर उनकी आँखों का कोना कुछ रूखा हो उठा। तो भी शान्त भाव से बोले, 'यही तो उसे रोग था बुआ। उसने यही तो बला नहीं बटोरी थी। केवल इसी बेचारे को भगा देने से हम लोगों को सुख मिल जाएगा?'

बुआ की बात बहुत पुरानी हो चुकी थी। बोलीं, 'तो क्या इसे सदा ही पालना-पोसना पड़ेगा? ना, ना, यह जहाँ का आदमी है, वहीं जाकर रहे, इसके मुँह से माँ-बाप बेटी की कीर्ति-कहानी सुनें, अपने वंश का थोड़ा-सा परिचय पावें।'

अबकी ब्रज बाबू जरा हँसे। बोले, 'वह अभी बच्चा है, सब ठीक-ठीक बता न सकेगा, उसके लिए बल्कि तुम और कोई व्यवस्था कर दो।'

बुआ अप्रसन्न होकर चली गईं। कह गईं, 'जो अच्छा समझो वह करो। मैं अब किसी के बीच में नहीं पड़ती।'

इस घर में नई-माँ के जाने के बाद बुआजी का प्रभाव कुछ बढ़ चला था। सभी जानते थे कि उन्हीं की बुद्धि से इतना बड़ा अनाचार पकड़ा गया। इतने दिनों की लक्ष्मी-श्री तो जाने ही को बैठी थी। नवीन बाबू के कारण जो व्यापार में हानि हुई, उसका मूल कारण भी यह गुप्त पाप ठहराया गया। नहीं तो, कहाँ, पहले तो कभी नवीन को ऐसी बुद्धि नहीं हुई।

बुआ ने यही कहना भी आरम्भ कर दिया था। कहती थीं, 'यह सब हुआ है। उनके चंचल होने पर तो ऐसा होना ही चाहिए। हुआ भी वही।'"

बहुत देर चुप रहकर तारक ने पूछा, "कलकत्ते आकर क्या तुम उन्हीं लोगों के घर में रहे?"

राखाल, "हाँ, लगभग दस साल तक।"

तारक, "फिर चले क्यों आए?"

राखाल ने कुछ इधर-उधर करके अन्त में कहा, "फिर सुविधा नहीं हुई।"

तारक, "इससे अधिक कुछ और बताना नहीं चाहते?"

राखाल ने फिर कुछ देर मौन रहकर कहा, "कहने से कोई लाभ नहीं है, लज्जा भी लगती है।"

तारक मौन बैठकर सोचने लगा। फिर बोला, "तुम्हारी नई-माँ जो इतना बड़ा एक भार सौंप गई हैं उसका क्या होगा? एक बार ब्रज बाबू के पास जाओगे?"

राखाल ने कहा, "वही बात सोच रहा हूँ। न हो, कल..."

तारक ने कहा, "कल? लेकिन वह जो कह गई हैं कि आज रात को ही आएँगी—तब उनसे क्या कहोगे?"

राखाल ने हँसकर सिर हिलाया।

तारक ने प्रश्न किया, "सिर हिलाने का अर्थ? क्या तुम कहना चाहते हो कि वह नहीं आएँगी?"

"यही तो जान पड़ता है। कम-से-कम इतनी रात को उनका आ सकना मुझे सम्भव नहीं लगता।"

इस बार तारक ने और अधिक गम्भीर होकर कहा, "मगर मुझे सम्भव जान पड़ता है। सम्भव न होता तो वह कभी कहतीं नहीं। मुझे विश्वास है कि वह आएँगी और ठीक ग्यारह बजे आएँगी, परन्तु तब तुम्हारे पास ये कोई उत्तर नहीं होगा।"

"क्यों?"

"तो क्या? उनकी इतनी बड़ी दुश्चिन्ता की चिन्ता न करके तुमने एक पग भी घर से आगे नहीं बढ़ाया, यह तुम किस मुँह से उनके सामने कहोगे? ना, यह न होगा राखाल, तुमको जाना होगा।"

कई क्षणों तक राखाल उसके मुँह की ओर देखता रहा। बाद में मन्द-मन्द बोला, "मेरे जाने से भी कुछ नहीं होगा तारक। मेरी बात उस घर का कोई आदमी नहीं सुनेगा।"

तारक ने कहा, "कारण?"

राखाल ने कहा, "कारण यह है कि घर के पक्ष में जैसे एक मामा

स्वामी है वैसे ही कन्या की ओर भी एक और मामा उपस्थित है। ब्रज बाबू के तीसरे ब्याह के बड़े साले। वास्तव में वर के मामा का कितना प्रभाव है, यह मैं नहीं जानता, किन्तु इन मामा के पराक्रम से वहुत अच्छी प्रकार परिचित हूँ। बचपन में बुआ की बड़ी सिफारिश मुझे इस घर से हटा नहीं सकी, किन्तु इन मामा मोशाय की आँख के इशारे का एक धक्का भी न सँभाल सका—मुझे पोटली हाथ में लेकर विदा होना पड़ा।"

उसने जरा हँसकर फिर कहना शुरू किया, "नहीं भाई तारक, मैं बहुत सीधा-सादा आदमी हूँ, लड़के पढ़ाता हूँ, भोजन बनाता-खाता हूँ। घर में आकर सो रहता हूँ। समय मिलने पर निबल-सबल का विचार किए बिना परिश्रमपूर्वक बड़े लोगों की इच्छाएँ पूरी करता हूँ, किसी प्रकार की आशा नहीं करता, वह सब भाग्यवानों के लिए है। अपने भाग्य को अच्छी तरह से ही जान रखा है, उसके लिए मन में दुःख भी नहीं है, सहने का अभ्यास हो गया है। दिन बुरे नहीं कट रहे हैं। इसीलिए अखाड़े के किनारे खड़े होकर मामा-मामा में कुश्ती कराकर उनके तेज को मैं नहीं सह पाऊँगा।"

तारक हँस पड़ा।

राखाल को वह जैसा समझता था, देखा, वह वैसा भोंदू नहीं है।

तारक ने पूछा, "दोनों ओर मामा हैं, इसीलिए दोनों में मल्ल-युद्ध क्यों छिड़ जाएगा ?"

राखाल ने कहा, "तो जरा स्पष्ट करता हूँ। इधर के मामा मोशाय ने मुझसे घर अवश्य छुड़ा दिया है, किन्तु वे उसी की माया-ममता अभी तक नहीं छुड़ा सके। इसीलिए वहाँ का थोड़ा-बहुत समाचार मेरे कानों तक पहुँच जाता है। सुना गया है, बहनोई की कन्या के ब्याह की चिन्ता ही साले के आराम में अधिक विघ्न डाल रही है। इस लड़के को खोज निकालना भी उन्हीं की कीर्ति है। अतएव इस मामले में मुझसे विशेष कुछ न होगा। सम्भवतः किसी के भी किये कुछ न होगा। वरिच्छा, तिलक, आशीर्वाद और लगन तक सब हो गया है, इसलिए यह विवाह अवश्य होगा।"

तारक ने कहा, "अर्थात् उधर के मामा को कन्या की माँ का किस्सा सुनाना ही होगा और फिर उस घटना का हाल लोगों के मुँह से चारों ओर फैलते देर न लगेगी। फिर उसका परिणाम यही होगा कि उस लड़की का

किसी अच्छे घर में ब्याह न हो सकेगा।"

राखाल ने कहा, "आशंका तो यही है कि अन्त में कुछ ऐसी बात होगी।"

तारक ने कहा, "लेकिन लड़की के बाबा तो आज भी जीवित हैं?"

राखाल ने कहा, "ना, बाबा जीवित नहीं हैं, केवल ब्रज बाबू जीवित हैं।"

क्षण-भर स्थिर रहकर तारक ने कहा, "राखाल, चलो न एक बार चलकर देख आवें, बाप एकदम मर गया है या इस आदमी में अब भी कुछ जान बाकी है।"

राखाल ने कहा, "तुम जाओगे?"

तारक ने कहा, "इसमें क्या है! कहना, यह वर के पड़ोसी हैं—बहुत कुछ जानते हैं।"

राखाल ने हँसकर कहा, "तुम्हारी बुद्धि भी अच्छी है! पहले तो यह बात तर्क में सच नहीं है, दूसरे जब तुम गोलमाल उत्तर दोगे, तब उन लोगों के मन में घोर सन्देह उत्पन्न होगा—वे समझेंगे, तुम मोहल्ले के आदमी हो, व्यक्तिगत शत्रुता के कारण इस ब्याह में रोड़ा अटकाने आए हो। इससे काम तो सिद्ध होगा ही नहीं, उलटा फल निकलेगा।"

"वही तो।" तारक ने मन-ही-मन और एक बार राखाल की सांसारिक बुद्धि की प्रशंसा की। कहा, "यह ठीक कहते हो। तर्क में हम लोग उखड़ जाएँगे। नई-माँ से हम लोगों को और भी अधिक समाचार ज्ञात कर लेना चाहिए था। अच्छा, एक मित्र के रूप में ही मेरा परिचय देना।"

"हाँ, परिचय देना पड़ा तो यही दूँगा।"

तारक ने कहा, "इस ब्याह को बन्द करने की चेष्टा में तुम्हारी सहायता करूँ—यही मेरी इच्छा है। और कुछ न कर सका तो इस मामा को ही एक बार आँख से देख आ सकूँगा और भाग्य प्रसन्न हुआ तो केवल ब्रज बाबू ही नहीं, उनकी तीसरी धर्मपत्नी के भी दर्शन हो जाएँगे।"

राखाल ने कहा, "यह सम्भव है।"

तारक ने पूछा, "यह महिला कैसी है राखाल?"

राखाल ने कहा, "खूब गोरा रंग, मोटी-ताजी देह, परिपुष्ट गठन—

खाते-पीते बंगाली के घर में कुछ अधिक अवस्था होने पर गृहिणियों जैसी।"

तारक ने कहा, "परन्तु स्त्री कैसी है?"

राखाल ने कहा, "स्त्री तो जान लो, बंगाली के घर की लड़की है। बंगाली घरों की औरत जैसी। कपड़े-गहनों पर गहरा अनुराग, उत्कट और अन्ध सन्तान-वत्सला, पराये दुःख में दुःखी होकर आँसू बहाना, दो आने दान करना और पल-भर में ही सब भूल जाना। स्वभाव बुरा नहीं है—अच्छा कहना भी कुछ अपराध न होगा। थोड़ी-बहुत क्षुद्रता, छोटी-छोटी उदारता, एक-आध…"

तारक ने बीच में कहा, "रुको-रुको। यह सब तुम क्या केवल ब्रज बाबू की स्त्री के विषय में कह रहे हो या सारी बंगाली स्त्रियों के बारे में?"

राखाल ने कहा, "दोनों का ही रे। सिर्फ उसका तात्पर्य समझना श्रोता की अभिरुचि के अनुसार होता है।"

तारक सचमुच विस्मित हुआ। बोला, "मैं नहीं जानता था कि स्त्रियों के सम्बन्ध में तुम्हारे मन में इतनी उपेक्षा का भाव है, बल्कि सोचता था कि…"

राखाल झटपट कह उठा, "ठीक ही सोचते थे भाई, ठीक ही सोचते थे। मैं जरा-सी भी उनकी उपेक्षा नहीं करता। उनके बुलाते ही दौड़ा जाता हूँ, न बुलाने पर बुरा नहीं मानता। दया करके वे काम करा लेती हैं, केवल इससे ही अपने को धन्य मानता हूँ। महिलाएँ अनुग्रह भी यथेष्ट करती हैं, उनकी कोई निन्दा करना संभव नहीं है।"

तारक ने कहा, "अनुग्रह जो करती हैं, उनका थोड़ा परिचय दो तो सुनूं?"

राखाल ने कहा, "इस बार तुमने कठिनाई में डाल दिया। तर्क करने से ही मैं घबरा उठता हूँ। इस अवस्था में मैंने बहुत कुछ देखा और सुना, साक्षात् परिचय भी कुछ कम नहीं है, किन्तु ऐसी बुरी स्मरणशक्ति है कि कुछ भी याद नहीं रहता। न उनका बाहर का चेहरा, न उनके भीतर का रूप। सामने खूब काम चलता है, किन्तु जरा आड़ में आते ही सब चेहरा लिप-पुतकर एकाकार हो जाता है—एक के साथ दूसरे का भेद नहीं कर पाता।"

तारक ने कहा, "हम गांव के प्राणी हैं। मोहल्ले के आत्मीय पड़ोसियों के घर की दो-चार महिलाओं के सिवा बाहर की किसी औरत को पहचानते भी नहीं। औरतों के बारे में हम लोगों की यही तो जानकारी है। किन्तु इस बड़े शहर की कितनी नई, कितनी अजीब···"

राखाल ने हाथ से रोककर कहा, "कुछ चिन्ता न करो तारक, मैं उपाय बतला दूंगा। देहाती कहकर तुम जिनकी अवज्ञा करते हो—अथवा मन-ही-मन जिनके विषय में भयभीत हो रहे हो, उन्हीं औरतों को शहर में लाकर पाउडर, रूज आदि जरा जोर से मलकर दो-एक महीने थोड़े-से चुने हुए नाटक-उपन्यास और उन्हीं के साथ दो-चार चलते गाने सिखा-पढ़ा दो—बस। अंग्रेजी नहीं जानतीं? न जानें। आरम्भ से अन्त तक सिखाना नहीं पड़ता, दस-बीस भव्य बातें या शब्द तो याद कर सकेंगी? बस, काम बन जाएगा। इसके पश्चात्···"

तारक ने खीझकर टोका, "इसके पश्चात् की अब आवश्यकता नहीं राखाल, रहने दो। अब समझ पा रहा हूँ कि तुम्हें क्यों चिन्ता नहीं है। इस लड़की का चाहे जिसके साथ ब्याह हो, उससे तुम्हारा कुछ नहीं आता-जाता। वास्तव में उन लोगों के साथ तुम्हें हमदर्दी नहीं है।"

राखाल ने हँसी के तौर पर प्रश्न किया—"हमदर्दी कैसे होगी, बता सकते हो?"

तारक ने कहा, "बता सकता हूँ। बिना विचारे मिलना-जुलना जरा कम करो। जो खो दिया है, वह शायद एक दिन फिर पा सकते हो—अच्छा, केवल इसी कारण नई-माँ के अनुरोध को लापरवाही से टाल सके?"

राखाल लगभग एक मिनट तक तारक के मुँह की ओर ताकता रहा। इसके पश्चात् उसकी परिहास की मुद्रा धीरे-धीरे बदल गई। उसने कहा, "अबकी तुमसे भूल हुई। किन्तु हमारे पहले की बात में शायद कुछ सत्य है, उन लोगों में से बहुतों का बहुत कुछ जान सकने में लाभ की अपेक्षा क्षति ही शायद अधिक होती है। अब से मैं तुम्हारी बात सुनूंगा—मानूंगा। किन्तु जिनके विषय में तुमसे कह रहा था, वे साधारण स्त्रियाँ हैं—हजार में नौ सौ निन्नानवे। नई-माँ उनमें नहीं हैं। कारण, हजार में एक जो शेष रही वही वह हैं। उनकी अवहेलना नहीं की जा सकती, चाहने पर भी नहीं।

तुम आज किस कारण बर्दवान नहीं जा पा रहे हो, इसे तुम नहीं जानते, किन्तु मैं जानता हूँ। किसकी इच्छा से तुम मुझे ठेल-ठालकर अभी मामा बाघ की माँद में भेजना चाहते हो, इसका कारण तुम्हारे निकट स्पष्ट नहीं किन्तु मैं उसे स्पष्ट देख पा रहा हूँ। उनके पिछले इतिहास को सुनकर अभी तुमने जो कहा था, तारक, कि ऐसी स्त्री को घृणा करना ही स्वाभाविक है— अपनी यह राय तुमको एक दिन बदलनी पड़ेगी। उससे काम न चलेगा।"

तारक मुँह पर हँसी लाकर व्यंग्य के स्वर में बोला, "काम न चलेगा तो तुमको सूचित करूँगा परन्तु तब तक अगर मैं यह कहूँ कि मैं अपनी बात दूसरे की अपेक्षा अधिक जानता हूँ तो अप्रसन्न न होओ राखाल। लेकिन इस तर्क से कोई लाभ नहीं है भाई– इसे जाने दो। किन्तु तुम्हारी दृष्टि में आज तक एक नारी भी श्रद्धा की पात्री होकर टिकी हुई है– यह बड़ी आशा की बात है। मगर वह हम लोगों की पहुँच के बाहर है राखाल। हम तुम्हारी इन एक को त्यागकर शेष नौ सौ निन्नानवे के ऊपर ही श्रद्धा बनाए रख सकें, तो उसी से हम जैसे साधारण मनुष्य धन्य हो जाएं।"

राखाल ने न तर्क किया और न उत्तर दिया। जान पड़ा कि वह सहसा कुछ उदास हो गया है।

तारक ने पूछा, "क्यों, चलोगे ?"

राखाल ने कहा, "हाँ।"

"जाकर क्या कहोगे ?"

"जो कुछ सत्य है वही कहूँगा—विश्वस्त सूत्र से सूचना पाई गई है— आदि-आदि।"

"यह ठीक है।"

दोनों मित्र खड़े हुए। राखाल ने दरवाजे में ताला बन्द करके जोड़े हुए हाथ माथे पर लगाकर दो बार भगवती दुर्गा का नाम स्मरण किया। इसके बाद दोनों ब्रज बाबू के घर की ओर चल पड़े।

तारक ने हँसकर कहा, "आज कोई काम सिद्ध न होगा।"

तीन

दूसरा दिन !

दोपहर ढलने के बाद दोनों मित्र चाय की मेज पर आमने-सामने जा बैंठे। राखाल ने चाय की केंतली में एक चम्मच चीनी डालकर चलाया जिससे कि चाय रंग छोड़ दे।

"नाम का प्रभाव देखा, राखाल !" तारक ने बात को शुरू करते हुए कहा, "दुर्गा-माता से व्यर्थ ही तुमने अविश्वास किया, इसीलिए तो कल जाना निष्फल रहा। यदि अविश्वास न करते तो जाने का कुछ फल अवश्य मिलता।"

मकान पर जमींदार साहब के अनुपस्थित होने से कोई काम सफल नहीं हुआ। वह कल कहीं दावत में गए थे और मामाजी की तवीयत खराब होने के कारण संध्या से ही पलंग पर लेट चुके थे।

"राखाल, तुम हमें अभी भूले नहीं।" घर के भीतर जाने पर जमींदार साहब की नई पत्नी ने कहा। रेणुका भी चलते समय ओट से बोली, "इतने दिन तक क्या दादा हमें भूल ही गए थे ?"

राखाल ने कोई उत्तर न देकर और केवल इतना भर कह दिया, "अपने वाबूजी से कह देना कि मैं कल संध्या को किसी बहुत आवश्यक काम से फिर उनसे मिलने के लिए आऊँगा। भूलना नहीं।"

"बहुत अच्छा।" रेणुका बोली, "लेकिन आप नौकरों से भी तो कहते जाइए।"

जमींदार साहब के खास नौकर से भी राखाल ने कह दिया। उन्हें अपने घर पर लौटने में देर हो गई थी इसीलिए ताले में एक परचा लगाकर नई-माँ पहले ही लौट चुकी थीं। परचे में दूसरे दिन संध्या को पाँच बजे फिर आने की सूचना दी गई थी। उसी पाँच बजे की प्रतीक्षा में दोनों मित्र बैठे थे।

तारक ने चाय छानने के लिए कहा, फिर बोला, "अभी बीस मिनट बाक़ी हैं, उनके आने से पहले ही मेज साफ कर देनी चाहिए।"

"क्यों ?" राखाल बोला, "लोग चाय भी पीते हैं क्या यह बात वे नहीं जानतीं ?"

"राखाल, तर्क की आवश्यकता नहीं है। लोग कितनी ही बातें करते हैं, लेकिन फिर भी बहुत-सी छिपाकर करते हैं। जानवरों को इन बातों के छिपाने की आवश्यकता नहीं पड़ती और फिर सफाई तो अच्छी ही होती है। देर भी तो कुछ नहीं लगेगी ?" तारक ने ऐश-ट्रे और सिगरेट की डिब्बी उठाकर पूछा, "क्या इन्हें भी उन्हें दिखाया जा सकता है ?"

"देख लेने दो मित्र ! वह अपराधी को पहचानती हैं, तुम्हें भयभीत नहीं होना चाहिए।"

तारक व्यंग्य को समझ गया। बोला, "यही आशा है, लेकिन फिर भी वे मुझे समझने में भूल कर सकती हैं, इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है ? पर मैं नहीं चाहता कि वे उस व्यक्ति को गलत समझें जिसका पालन-पोषण उन्होंने अपने हाथों से किया है।"

राखाल नाराज नहीं हुआ। मुस्कराता हुआ चाय छानने में लगा रहा।

तारक चाय पी रहा था। जब रहा न गया तो कहने लगा, "भाई, इस प्रकार चुप रहने से काम नहीं चलेगा !"

"क्या करूँ तारक ? नौ सौ निन्नानवे का धक्का उनके आने से पहले सँभाल रहा हूँ।" राखाल हँसकर बोला।

इस व्यंग्य से तारक के हृदय पर आघात लगा परन्तु वह चुपचाप चाय पीता रहा। चाय समाप्त हो जाने पर मेज साफ कर दी गई। इसी समय घड़ी ने ठीक पाँच बजाये और सूर्य ने भी आगे बढ़ना आरम्भ कर दिया, लेकिन नई-माँ अब भी नहीं आई थीं। दोनों अधीर हो रहे थे। सारा घर मानो इस समय सूना प्रतीत हो रहा था। ऐसे समय तक तारक ने धीरे से कहा, "तुम्हारी नई-माँ कोई साधारण स्त्री नहीं हैं; यह बात सच है राखाल।"

राखाल चुप था।

"मैंने इस प्रकार की नारी की कथा पुस्तकों में पढ़ी है। जो स्त्रियाँ देखी हैं वे साधारणतः सती, सद्विचारवाली हैं, लेकिन यह तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे···" अभी पूरी बात समाप्त भी न होने पाई थी कि दरवाजे से

आवाज आई, "राजू बेटा, चली आऊँ ?"

अचानक दोनों ही खड़े हो गए। राखाल शीघ्रता से द्वार की ओर गया और प्रणाम करके बड़े आदर-भाव से नई-माँ को अन्दर ले आया। तारक ने भी राखाल की ही भाँति आदरपूर्वक नमस्कार किया।

जब सब यथास्थान बैठ गए तो राखाल बोला, "कल का वहाँ जाना तो व्यर्थ ही रहा माँ, क्योंकि जमींदार साहब वहाँ नहीं थे। मामाजी की तबीयत अच्छी न थी और इधर आपको परेशान होकर लौट जाना पड़ा। लेकिन इसका दोषी तारक है, क्योंकि इसी ने दुर्गा माता को अप्रसन्न किया था।" राखाल ने सम्पूर्ण घटना खोलकर नई-माँ को सुनाई।

"ऐसी बातों पर तुम विश्वास करते हो तारक ?" नई-माँ ने हँसकर पूछा।

"संभव है कि आज विश्वास न हो परन्तु यह दशा तो विश्वास करने के कारण ही हुई है।"

"वहाँ कोई मिला नहीं ?" नई-माँ ने हँसकर पूछा।

"कोई भला क्यों न मिलता ? घर की स्वामिनी ने विस्मय से कहा, 'राखाल, तुम हमें अभी भूले नहीं !' रेणुका ने भी लौटते समय ठीक उसी प्रकार के शब्द कहे, लेकिन सामने आकर नहीं, छुपकर। कल संध्या को जमींदार साहब से मिलने के लिए कह आया हूँ एक आवश्यक काम के लिए और मुझे विश्वास है कि रेणुका इस विचार को जमींदार साहब के पास अवश्य भेज देगी।" राखाल ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"इसलिए तुम्हें आज फिर जाना है।"

"कुछ समय बाद जाएँगे, अभी आपकी प्रतीक्षा थी।"

"सब लोग कुशल से हैं न ?"

"हाँ।"

नई-माँ मौन थीं।

"रेणुका अब देखने में कैसी लगती है ?" कुछ ठहरकर नई-माँ ने पूछा। राखाल पहले शान्त था। फिर कृत्रिम रोष के साथ बोला, "माँ, तुम्हारी यह बात तो बिल्कुल व्यर्थ-सी हो रही है। क्या आप अनुमान से नहीं बता सकतीं कि नई-माँ की बेटी देखने में कैसी लगती है ? उस पर पिता का

प्रभाव है—यही बात है न माँ।" पुत्री के विषय में बातें करते हुए माँ का हृदय द्रवित हो उठा। पल-भर चुप रहकर बोलीं, "राजू, तुम्हारे जाने का समय हो गया होगा?"

"अभी थोड़ी देर है माँ!"

कुछ बातों के बाद तारक चुप हो गया। वह नई-माँ और राजू की बातें सुन रहा था। जिस रेणुका का विवाह-सम्बन्ध यह लोग खत्म करना चाहते थे, तारक उस रेणुका के विषय में अवश्य कुछ जानना चाहता था, लेकिन जानने की कोई विशेष उत्कण्ठा उसमें हो, ऐसा न था। अभी राखाल द्वारा दिए गए उसके साधारण परिचय ने तारक को एक चकाचौंध कर देने वाले रूप-प्रकाश में लाकर खड़ा कर दिया। वह उसी के विचार में निमग्न था और तब उसने कुछ विस्मित-सा होकर नई-माँ की ओर देखा। इस समय नई-माँ की आयु लगभग पैंतीस-छत्तीस वर्ष की होगी। रूप का निखार पूर्ण उभार पर नहीं था। सामने के दो ऊँचे दाँत स्पष्ट दिखाई देते हैं। रंग स्वर्ण और चम्पा की समता करता है। अंग-प्रत्यंगों की गठन मक्खन के पुतले से भी कोमलतम थी। आँखें बड़ी नहीं हैं, नाक तोते जैसी नहीं है परन्तु इकहरे शरीर पर सौन्दर्य जैसे खूब फबता है। इस नारी-शरीर का प्रत्येक अंग मर्यादा के साथ पूर्ण रूप से विकसित था। इन सबसे भी अधिक 'उनका' मधुर स्वर था जो अनायास ही श्रोता को वश में कर लेता था।

"तुम्हारा हृदय क्या कहता है राजू? क्या इस विवाह को रोक सकोगे?"

"यह बात तो निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती माँ!"

"क्या जमींदार साहब कुछ सुनेंगे भी नहीं? विचारेंगे भी नहीं?"

"उनकी आँखें और कान नहीं रहे माँ!" राखाल बोला, "इस समय मामाजी की आँखें उनकी आँखें हैं और घरवाली के कान उनके कान और मेरे विचार से यह सम्बन्ध उन्हीं ने ही तय किया है।"

"आखिर जमींदार साहब क्या करते हैं?"

"वही जो सदा किया करते हैं, हरगोविन्द की पूजा, और यह रोग तो आजकल और भी बढ़ गया है। पूजा की कोठरी में ही दिन समाप्त हो जाता है, दुकान पर जाने की तो चिन्ता ही नहीं।"

"मामाजी के हाथ में व्यापार है। घर का प्रबन्ध जमींदार साहब की सास करती हैं?"

"ये सब मुझसे क्यों पूछती हो? आप तो सभी कुछ जानती हैं। आज हम वहाँ जाएँगे, लेकिन परिणाम तो आपको मालूम ही है!"

नई-माँ ने एक गहरी साँस ली और हृदय मसोसकर चुप हो गईं। अचानक द्वार के बाहर एक शब्द सुनाई दिया। किसी बच्चे से कोई पूछ रहा था कि राजू बाबू का क्या यही घर है?

बच्चे ने उत्तर दिया, "यहाँ तो राखाल राज रहते हैं।"

"हाँ-हाँ! मैं उन्हीं का घर पूछ रहा हूँ।" फिर एक सज्जन ने द्वार खोला और झाँककर कहा, "क्या राजू बेटा है? है तो?" राखाल पर दृष्टि पड़ते ही सज्जन मुस्कराकर अन्दर आ गए। स्नेहसिक्त स्वर में बोल उठे, "सोच रहा था कि तुम्हारा मकान मिलेगा या नहीं।" अचानक उनकी दृष्टि अलमारी के पास बैठी महिला पर गई। कुछ चकित-से होकर वे पीछे हटे और द्वार के पास आकर हठात् बोले, "नई-बहू!" और फिर राखाल पर दृष्टि डाली। एक विचित्र दृश्य क्षण-भर के लिए नेत्रों में झूल गया।

राखाल का मुख इस समय सफेद था। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ पाषाण-वत् खड़ा था। एक अज्ञात भय की आशंका ने उसे घेर लिया था। नवा-गन्तुक ने क्रमशः तीनों व्यक्तियों पर दृष्टि डाली और फिर उसी शान्त स्वर से कहने लगे, "क्या कुछ षड्यन्त्र कर रहे थे? शराबियों के अड्डे पर पुलिस का सिपाही आने से जैसी दशा होती है उसी प्रकार घबराने की क्या बात है नई-बहू?"

"जी हाँ, मैं नई-बहू ही हूँ।" कुछ सामने को आते हुए कहा।

"अच्छी तो हो, फिर बैठो न!" कहते हुए कुर्सी पर बैठ गए, "नई-बहू! जरा हमारे राजू की ओर तो देखो, यह सोचता होगा कि मेरा तुम्हें पहचानना ही घोर संग्राम का निमन्त्रण है। लगता होगा अब यहाँ पर कोई भी वस्तु टूट-फूट से नहीं बचेगी।"

तारक, राखाल और नई-माँ तीनों के मुँह पर इन शब्दों को सुनकर मुस्कान की रेखा दौड़ गई।

तारक जान गया कि यही जमींदार साहब हैं। इस समय उसका मन

आनन्द और आश्चर्य से परिपूर्ण था। जमींदार साहब ने नई-बहू से बैठने के लिए आग्रह किया। नई-बहू के बैठने के पश्चात् उन्होंने कहना प्रारम्भ किया, "परसों रेणुका का विवाह है। लड़का स्वस्थ और सुन्दर है। अभी पढ़ रहा है। परिवार भी जाना-पहचाना है, धन-सम्पत्ति किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है। कलकत्ते में उनके चार मकान हैं। जब मन चाहे बेटी और दामाद से मिल सकते हैं। यह गोविन्दजी की ही कृपा है नई-बहू, कि इतना सुन्दर वर मिल गया, अन्यथा मुझमें इतनी सामर्थ्य कहाँ थी कि···।" फिर उन्होंने भगवान् की स्मृति में दोनों हाथ जोड़े। पुत्री के सुख की कल्पना से जमींदार साहब का हृदय आनन्द-विभोर हो रहा था।

सब शान्त बैठे हुए थे।

जमींदार साहब के सुख-स्वप्न के इस मोहजाल को तोड़ने की शक्ति तीनों में से किसी में भी नहीं थी। वे फिर कहने लगे, "अपने राखाल को लेने के लिए तो हमें स्वयं ही आना होगा, केवल निमन्त्रण से काम नहीं चलेगा। राजू के अतिरिक्त हमारे यहाँ कर्ता-धर्ता का भार सँभालना किसके वश का है। कल संध्या को लौटने पर रेणुका से पता लगा कि तुम वहाँ किसी आवश्यक काम से गए थे, सूचना पाते ही मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया कि तुम्हारी ही गली में आकर पुरानी भूलों को समाप्त कर दूंगा। इसीलिए दोपहर को ही घर से निकल पड़ा और गोविन्द की कृपा से एक ही नहीं, सब काम सिद्ध हो गए। पता नहीं आज किस भाग्यशाली का मुख देखकर निकला था।"

राखाल अधिक चुप नहीं रह सका। बोल उठा, "जिस समय आपने घर छोड़ा, उस समय मामाजी वहीं थे। क्या आपको याद है?"

"क्यों, क्या बात है?" जमींदार साहब ने पूछा।

"बात केवल यही है कि वे भाग्य के बलवान हैं। घर से चलते समय यदि उनके मुख पर दृष्टि पड़ जाए तो सम्भव है कि···।"

"हाँ-हाँ, वे ही सामने आए थे।" जमींदार साहब हँस पड़े।

नई-माँ ने चुपके से राखाल की ओर दृष्टि डाली और फिर दूसरी ओर फेर ली।

जमींदार साहब ने कहा, "राजू! यह तुम्हारी बात कुछ जँची नहीं।

नाते से तुम्हारी नई-माँ के भी वे भाई ही होते हैं। बहिन के लिए भाई की बुराई सहन करना कठिन है। शायद मन-ही-मन तुम्हारी नई-माँ अप्रसन्न हो रही हैं।" राखाल खिलखिलाकर हँस पड़ा और साथ ही जमींदार साहब भी।

"मैंने ठीक ही तो कहा, अप्रसन्न होने की बात ही है।" वह बोले।

तारक अब अपने को चुप न रख सका और आखिर कह ही उठा, "कदाचित् घर से चलते समय आज आपने दुर्गा माता का स्मरण नहीं किया होगा।"

जमींदार साहब इन शब्दों के रहस्य को न जान पाए। बोले, "भाई, अपने नित्य-कर्म के अनुसार मैंने तो गोविन्द का स्मरण किया था और अब भी उसी का स्मरण कर रहा हूँ।"

"इसीलिए आपको अपने कार्य में सफलता मिली। यदि दुर्गा माँ का नाम लेकर चले होते तो निश्चय ही कार्य सिद्ध होना कठिन था।"

अब भी कुछ न समझ पाए जमींदार साहब। तब राखाल ने तारक का परिचय देते हुए पिछले दिन की समस्त घटना उनके सामने रखी। कल वे दुर्गा माँ का स्मरण करके गए थे इसलिए भेंट न हो सकी। कदाचित् इसका मूल कारण दुर्गा माँ का प्रभाव ही था। तारक के जीवन में इस नाम ने पहले भी कभी इसी प्रकार का प्रभाव दिखाया था और इसीलिए वह इस नाम से कुछ चिढ़ने लगा था।

जमींदार साहब पूरी कहानी सुनकर हँसे और फिर गम्भीर होकर बोले, "हो सकता है बेटा ! ऐसा अवश्य हो सकता है। इसमें सन्देह नहीं। 'नाम और द्रव्य' की महिमा संसार में अनेक व्यक्ति जानते हैं। मैंने जीवन में इसकी परीक्षा की है। 'भुनी मटर' के नाम से मुझ पर विपत्ति आ जाती है।"

राखाल उत्कण्ठित स्वर में बोला, "यह किस प्रकार बाबूजी ?"

"इसके लिए पूरी कहानी सुनानी होगी। शैशवावस्था में मेरा नाम 'बिलाई' था और भुनी मटर मुझे बहुत प्रिय थी। मुझे उसका फल मिला। मेरी रिश्ते की दादी मुझसे कहा करती थी—

'बेटा ! भुनी मटर यदि खाओगे।
ताला तोड़ लुगाई भागे, पता कहीं नहीं पाओगे।'

अब क्या तुम नहीं देख रहे हो कि दादी का कथन कितना सत्य निकला? बचपन की भुनी मटर ने बुढ़ापे में मेरी क्या दुर्दशा नहीं की? क्या मेरा सर्वनाश नहीं हो गया? धन के दोष और गुणों का यह जीता-जागता उदाहरण है। इसी प्रकार नाम का भी प्रभाव होता है।"

तारक और राखाल के मुख लज्जा से नीचे झुक गए।

नई-माँ ने दबी आवाज से गम्भीर स्वर में कहा, "बच्चों के सम्मुख क्या तुम्हें ऐसी बातें कहनी चाहिए?"

"क्यों, बच्चों को होशियार करना मेरा कर्तव्य है। कहीं ये भी भुनी मटर न खाने लगें।"

"तब फिर आप इन्हें होशियार कर दीजिए, मैं जाती..."

"नई-बहू! सदा हठ और क्रोध करने का ही तो तुममें दोष है। सत्य बात मुझे कभी भी नहीं कहने देतीं। मैं समझता था कि वास्तविक दोषी को जानकर तुम्हें प्रसन्नता होगी, लेकिन यहाँ विपरीत देख रहा हूँ।"

नई-माँ ने दोनों हाथ जोड़ दिए और राजू से बोलीं, "बेटा, कल तुम जिस काम से गए थे उसे इनसे कहो।"

राखाल बगलें झाँक रहा था, लेकिन नई-माँ के सामने अन्त में कहना ही पड़ा, "बाबूजी, रेणुका का विवाह जहाँ आपने ठीक किया है वहाँ नहीं होगा।"

ये शब्द सुनते ही जमींदार साहब के मुख की मुस्कान एकदम गायब हो गई। वे सावधानी से बोले, "क्यों? क्या बात है बेटा?"

और राखाल ने स्पष्ट रूप से कारण खोलकर समझा दिया।

"तुम्हें इसकी सूचना किसने दी?"

"नई-माँ ने।"

"और इनको किसने सूचना दी?"

"यह आप इन्हीं से पूछ सकते हैं।" यह कहकर वह चुप हो गया।

"क्या यह बात सच है, नई-बहू?" वे कुछ देर मौन रहकर बोले।

"हाँ, सच है।" कहकर नई-बहू ने सिर हिलाकर संकेत किया।

"परन्तु अब क्या किया जाए? लड़की दिखाई जा चुकी है। हल्दी चढ़ गई है और परसों तो विवाह है। एक दिन में दूसरा वर कहाँ मिलेगा?"

"यह वर आपने नहीं खोजा। जिसने खोजा है उसको दूसरा वर खोजने की आज्ञा दीजिए।" नई-माँ गम्भीरतापूर्वक बोलीं।

"इसमें सन्देह है कि वे लोग सुनेंगे और फिर मैंने आज्ञा देना नहीं सीखा—इसी कारण सब मनमानी करते हैं। वह सब तो अपने भी नहीं हैं, पराये हैं, तुम अपनी हो, लेकिन क्या कभी मेरे कहने पर ध्यान दिया?" जमींदार साहब गम्भीरतापूर्वक कह रहे थे। गत जीवन की इस दुःखभरी कहानी में छुपी हुई शिकायत थी, जिसे इन दोनों व्यक्तियों के अलावा अनुभव करने की शक्ति और किसी में न थी। नई-माँ ने मौन होकर लज्जा से मुख नीचा कर लिया। जमींदार साहब मन-ही-मन विचारों के जाल में उलझे हुए कुछ देर चुप बैठे रहे और फिर 'असम्भव' शब्द उनके मुख से निकल पड़ा।

राजू ने मृदु स्वर में पूछा, "असम्भव क्यों?"

"क्योंकि कुछ हो नहीं सकेगा अतः असम्भव नहीं तो और क्या? नई-बहू नहीं जानतीं और जानकर करेंगी भी क्या? लेकिन तुमसे तो कुछ छिपा नहीं है।" उनके शब्दों में निराशा का स्वर मिला हुआ था।

नई-माँ ने शान्त वातावरण को गम्भीर वचनों से भंग करते हुए कहा, "नई-बहू नहीं जानती तो न सही, आप तो जानते हैं। रेणुका की माँ मर चुकी लेकिन पिता जीवित हैं। पिता के नये साले साहब रेणुका को पागल के हाथ में सौंपना चाहते हैं, क्या नई पत्नी और नये साले के सामने पितृत्व शिथिल हो चुका है और उसे रोका भी नहीं जा सकता?" नई-माँ के मुख पर आवेश, घृणा और उग्रता की भावनाएँ साकार हो रही थीं। जमींदार साहब को तुरन्त नई-बहू के स्वाभिमान का स्मरण हो आया। यह वही नई-बहू हैं, जो मनमानी करने के लिए जीवन की समस्त सुख-सुविधाओं को ठुकरा सकती हैं। राखाल को पहचानने में देर न लगी कि यह उसकी वही नई-माँ हैं जो उसे आश्रय देकर अपनी ससुराल में लाई थीं। जहाँ अभी कुछ क्षण पहले हास्य बिखर रहा था वहीं वेदना और लज्जा का साम्राज्य छा गया।

राखाल खड़ा हो गया और नई-माँ के मना करने पर भी यह कहता हुआ कि माँ, आपने पान नहीं खाया, मैं अभी लेकर आता हूँ, तारक को

साथ ले घर से बाहर निकल गया।

एकान्त में दो प्राणी एक-दूसरे के सामने कुछ संकुचित भाव से बैठे थे। सूर्यलोक के प्रकाश को दो बादलों के समान रोकने वाले दो व्यक्तियों के चले जाने से वहाँ स्वतन्त्र प्रकाश फैला और कुहरा समाप्त हुआ। स्त्री और पुरुष के निकटतम सम्बन्ध में भी इसी प्रकार लज्जा और गांभीर्य का भाव पाया जा सकता है, यह आज इन दो मूर्तियों ने स्पष्ट कर दिया। जमींदार साहब समझ गए कि उनकी परिहासात्मक बातें समय के अनुकूल नहीं थीं। अपनी 'भुनी मटर' वाली बात उन दो बच्चों के सामने कहने पर उन्हें मन-ही-मन पश्चात्ताप हुआ। अपनी रसिकता का प्रदर्शन इस मौन और लज्जा से परिप्लावित नारी के सम्मुख करना उन्हें मन-ही-मन खलने लगा और उन्होंने अपने मन को इसके लिए कई बार धिक्कारा।

इन दो वर्षों ने भटकी हुई आत्माओं को जगा दिया था, परन्तु अभी तक दोनों मौन थे। उनके लौट आने पर राखाल के पान लाने का बहाना करके यह एकान्त समय का ठीक उपयोग नहीं हो सकेगा—शायद इसीलिए नई-बहू ने कहना शुरू किया, "क्या आप मुझे क्षमा कर देंगे?"

"नई-बहू! तुम्हारी समझ से क्या तुम क्षमा की जा सकती हो?"

"तुम कर सकते हो। शायद संसार में और कोई न कर सके।"

उनके नयन सजल हो गए। कुछ देर मौन रहकर बोले, "यदि मेरे स्थान पर तुम होतीं तो क्या क्षमा कर देतीं?"

"मैं होती तो अवश्य कर देती, क्योंकि इस धरती पर कोई ऐसी स्त्री नहीं जिसे अपने स्वामी का अपराध क्षमा न करना पड़ा हो। लेकिन यहाँ यह हेलना तुमसे नहीं की जा रही है। भाग्यवश मुझे ऐसा स्वामी मिला जिसके विषय में न पाप की भावना की जा सकती है और न कलंक की, इस बात का उत्तर मैं तुम्हें नहीं दे सकूँगी।"

"परन्तु मेरी क्षमा का तुम क्या करोगी?"

"जब तक यह शरीर इन प्राणों को सँभाले हुए है तब तक उस क्षमा को भी सुरक्षित रखेगा। परन्तु क्या आपने मुझे भुला दिया है?" अचानक वह कह उठीं।

"इस विषय में तुम्हारा हृदय क्या कहता है? बोलो!" कुछ देर के

लिए दोनों चुप रहे। नई-बहू से उत्तर न पाकर स्वयं जमींदार साहब ही बोले, "क्षमा की याचना मत करो नई-बहू ! क्योंकि क्षमा करने पर मेरे अभिमान को ठेस लगेगी। यह मैं नहीं कर पाऊँगा। हाँ, इतना विश्वास रखो कि मैंने तुम्हें कभी अभिशाप भी नहीं दिया और न दे ही सकूँगा। तुम विश्वास कर सकती हो ? बोलो नई-बहू !"

"अवश्य करती हूँ।" नई-बहू नत-मस्तक हो गईं।

"इससे तो मेरा कष्ट इससे कुछ कम अवश्य होगा। उस दिन सब मुझे अन्धा-मूर्ख बतला रहे थे—कहते थे, दिखलाने पर भी यह देख नहीं सकता, प्रमाणों पर विश्वास नहीं करता—ऐसे व्यक्ति की इसी प्रकार दुर्दशा होनी चाहिए। लेकिन ना-ना ! क्या इस दुर्दशा से अपने को अन्धा मान लेता ? क्या मैंने कोई अपराध किया ? मुझे भाई ने, बन्धु-बान्धव और सभी आत्मीय जनों ने धोखा देकर ठगा, नौकर-चाकर, दास-दासी, मित्र और परिचित सभी ने हड़पना चाहा। उस सर्वनाश के समय में मैं तुम्हें ब्याह करके लाया। तुमने आते ही उस अव्यवस्था को एकदम समाप्त करके घर को फिर धन-धान्य से भर दिया, मैंने उन पर अविश्वास किया, इसलिए अन्धा कहलाया और जिन्होंने षड्यन्त्र करके बाहर के आदमियों को मिलाकर तुम्हें नीचा दिखलाया और घर से निकाल दिया वे बन गये आँखों वाले। मेरी वर्तमान दुर्गति का मूल कारण उनकी शिकायतें और बेहूदगियों को ध्यानपूर्वक न सुनना है। मेरे कष्टपूर्ण जीवन की यही कहानी है।"

नई-बहू न जाने कब से उनके मुख पर अपलक दृष्टि जमाये यह सब सुन रही थीं कि सहसा बात रुकने पर उन्होंने अचानक मुख नीचा कर लिया। वह चुप थीं। उन्होंने फिर कहना शुरू किया, "तुम मेरी केवल पत्नी-मात्र नहीं थीं, सम्पूर्ण परिवार की पालन करने वाली गृहलक्ष्मी थीं। तुम्हारा स्थान मेरे सब मित्रों और आत्मीयों में सर्वोपरि था—मेरे ऊपर तुमसे अधिक श्रद्धा-भक्ति रखने वाला कभी कोई उत्पन्न नहीं हुआ। तुम मेरी मंगल-कामनाओं की संरक्षिका थीं। किन्तु मैं एक बात का उत्तर आज तक नहीं पा सका, नई-बहू ! आज भाग्यवश तुम्हारे दर्शन हो सके, तुम चाहो तो उत्तर दे सकोगी। कहो तो, आखिर तुम्हें उस दिन क्या हो गया था ? इतना अपनत्व होने पर भी क्या वास्तव में तुम मुझे प्यार नहीं कर पाई थीं ?

तुम्हें बिना समझे-बूझे कभी कोई काम करते मैंने नहीं देखा। तुम्हारा उत्तर शायद आज भी मेरे व्यथित हृदय को कुछ आश्वस्त कर सके नई-बहू, कहो!"

नई-बहू ने केवल इतना ही कहा, "आज नहीं।"

"फिर कब उत्तर दोगी? यदि भेंट न हुई तो क्या पत्र द्वारा भेजोगी?"

"ना, मुँह से भी नहीं कह सकूँगी और न पत्र द्वारा ही।" कहकर नई-बहू फिर चुप हो गईं।

"तब क्या यह भेद सर्वथा मेरे हृदय में काँटे की तरह चुभता रहेगा?"

"जब मैं जान जाऊँगी तब तुम भी जान जाओगे।"

"लेकिन यह तो पहेली बन गई।"

"बन जाने दीजिए। आज आपने मुझे आशीर्वाद दिया। इसका अर्थ है कि एक दिन मैं आपको अवश्य ही बतला सकूँगी।" इसी समय द्वार के पास से राखाल का शब्द आया, "हमें बहुत देर हो गई" और इन शब्दों के साथ ही वह अन्दर घुस आया।

पान का डिब्बा नई-बहू के सामने रखते हुए बोला, "बड़ी ही सावधानी से लाया हूँ माँ! किसी ने छुआ नहीं है, निःसंकोच होकर खाइए।"

नई-बहू ने जमींदार साहब के सामने रखने का इशारा किया। राखाल ने सिर के संकेत से मना किया। वह समझकर बोले, "मैंने तेरह वर्षों से पान खाना छोड़ दिया है।" पान यों ही मेज पर रखे रहे। तारक पीछे आकर चुपचाप खड़ा हो गया। वह अपने घर जाना चाहते हुए भी नहीं जा पा रहा था। शायद यह बात राखाल को खटकी भी हो, परन्तु शब्दों में कोई प्रदर्शन नहीं हुआ।

फिर जमींदार साहब बोले, "क्या तुमने अपनी सोने की जंजीर भट्टाचार्य की लड़की को शादी में देने का वचन दिया था? शादी तो हो गई और संकोचवश अभी तक उसने जिक्र भी नहीं किया था, लेकिन इस बार जब दुर्गापूजा पर वह आई तो उसने उसकी माँ से पूछा, 'क्या वह जंजीर उसे दे दी जाय?' "

'हाँ, यह वचन मैंने अवश्य दिया था।"

"दूसरी बात यह है कि तुम्हारा जो रुपया व्यापार में लगा था वह अब

मूल और ब्याज मिलाकर पचास हजार होता है। क्या वह निकालकर तुम्हारे पास भिजवा दूँ?"

"निकालिए मत उसे और बढ़ने दीजिए।"

"गत वर्ष व्यापार में हानि रही नई-बहू। इसलिए मैं डरता हूँ कि कहीं रुपया घाटे में न चला जाय।" उन्होंने बताया।

"आपका विचार तो ठीक ही है। वहाँ से आप रमण को अलग करके मृणाल को भेज दीजिए। रुपया नहीं डूबेगा।" कुछ विचार कर नई-बहू बोलीं।

ब्रज बाबू के नेत्र सजल हो रहे थे। धीरे-धीरे कहने लगे, "मैं बूढ़ा हो गया। अब गाड़ी खींचे नहीं खिचती। कभी सोचता हूँ कि सब कुछ छोड़कर भगवान् का भजन करूँ..."

बीच में ही नई-बहू बोल पड़ीं, "यह अभी नहीं होगा।"

ब्रज बाबू चुपचाप थे और बहुत देर इसी प्रकार बैठे रहे। फिर अचानक कह उठे, "गाँव की सम्पत्ति में से कितना भाग तुम ठीक समझती हो कि भैया के पुत्रों को दे दिया जाए?"

"सब भूमि उन्हें दे दीजिए, उनके पास और है ही क्या?"

"सब?"

"क्यों, इसमें बुरा ही क्या है?"

"यही होगा, तुम भूली नहीं होगी कि भैया की बड़ी लड़की को कुछ देने का वचन एक बार दिया था। वह मर चुकी। उसकी एक लड़की है जिसकी दशा बहुत दयनीय है। उसके लिए क्या बोलती हो?"

"सोनपुर की आय एक हजार से अधिक है, उसी में से सौ रुपया महीना उसके लिए निश्चित कर दीजिए। ठीक है न?"

"ठीक, ऐसे ही होगा।"

कुछ समय ऐसे ही बीता।

"नई-बहू! एक बात और है, तुम्हारे आभूषण जो बक्स में बन्द पड़े हैं, बनने के पश्चात् एक दिन भी नहीं पहने गए, क्या उन्हें तुम्हारे पास भिजवा दूँ?"

चुप होकर सिर नीचा कर लिया नई-बहू ने मानो इस कथन का वह

कुछ अर्थ समझ ही नहीं पाईं। उनकी आँखें भर आईं और उनमें से टप-टप आँसू गिरने लगे।

ब्रज बाबू को अपनी भूल अनुभव हुई और वे बात बदलकर बोले, "चलो, रहने दो नई-बहू, तुम्हारी रेणुका उन जेवरों को पहना करेगी।" घड़ी में देखा तो सन्ध्या का समय हो गया। "अच्छा, तो मैं अब चलूं।" वह कह उठे।

राखाल जानता था कि चाहे जो कुछ भी क्यों न हो, बाबूजी अपनी संन्ध्या, भजन और गोविन्द-पूजा का समय नहीं टाल सकते। नई-बहू को इस बात का पता था कि उनके निराश्रित जीवन में यह पूजा-पाठ ही एक-मात्र आश्रय रह गया था।

नई-बहू ने नेत्र पोंछकर कहा, "तो फिर रेणुका की शादी का प्रश्न यों ही रह गया?"

"नई-बहू, तुम जो नहीं चाहतीं वह नहीं होगा।"

नई-बहू को सन्तोष हुआ—'बेटी की रक्षा हुई।'

"लेकिन शादी कहीं-न-कहीं करनी होगी। सम्पन्न और अच्छा लड़का होना चाहिए। बेटा राजू! अनेक परिवारों से तुम्हारा मेल है, तुम अवश्य कोई कुलीन लड़का ढूंढ़ सकोगे।" राखाल फिर भी मौन ही बैठा रहा।

नई-बहू कहने लगीं, "आखिर इसमें इतनी जल्दी की क्या बात है?"

"नई-बहू, लोकाचार तो निभाना ही होगा। शीघ्र ही कहीं-न-कहीं शादी करनी पड़ेगी। देरी होने पर अमंगल का भय है।" उन्होंने आशंका प्रकट की।

"यदि योग्य वर न मिला तो?"

"उसे खोजना होगा।"

"लेकिन न मिलने पर क्या पागल के बदले बन्दर के हाथों लड़की को सौंपा जाएगा?"

"यह तो लड़की का भाग्य है।"

"इससे तो यही अच्छा है कि हाथ-पैर बाँधकर, जैसे आप कह रहे थे, लड़की को किसी नदी में फेंक दीजिए।"

व्यर्थ के वाद-विवाद को रोकने के लिए राखाल बीच में ही बोल उठा,

"मेरे विचार से मामाजी इस विषय में अपनी बखेड़ाबाजी फैलाएँगे। आप का क्या विचार है बाबूजी ?"

"उसके स्वभाव से तो तुम परिचित ही हो राजू ! सरलता से मानना उसके लिए कठिन है।" ब्रज बाबू एक हल्की-सी हँसी लेकर बोले।

राखाल इस बात को जानता था इसलिए चुप रहा। लेकिन नई-बहू कुछ क्रोधित होकर कह उठीं, "रेणुका आपकी है, जहाँ आप चाहेंगे विवाह करेंगे, इसमें हेमन्त बाबू टाँग अड़ाने वाले कौन होते हैं ? और यदि वह टाँग अड़ाएँगे तो आपको चिन्ता करने की क्या बात है ?"

दबी जुबान से निर्बल और निरुत्साहपूर्ण उत्तर था ब्रज बाबू का।

नई-बहू भाँपकर बोलीं, "आपके कोई लड़का नहीं, सिर्फ दो लड़कियाँ हैं। कलकत्ता जैसे शहर में उनके लिए वरों की कोई कमी नहीं। यह बात दूसरी है कि कुछ दिनों रुकना पड़ जाय। हल्दी चढ़ गई, दिखावा हो चुका, केवल इन्हीं कारणों से पागल और नालायक लड़कों के हाथों में लड़कियों को नहीं दिया जा सकता। हेमन्त बाबू को कोई अधिकार नहीं कि वह इसमें रुकावट दें।"

पति ने उदासीन, मलीन और शिथिल-से स्वर में 'हाँ' भर कहा।

अब राखाल ने बात स्पष्ट की, "माँ ! जो बातें आपने कहीं वे न्याय की कसौटी पर ठीक उतरती हैं लेकिन आप मामाजी के स्वभाव से अनभिज्ञ हैं। कलकत्ता-भर खोजने पर उन्हें रेणुका के लिए पगला दामाद मिल गया है—इनके कहने से मामाजी सम्बन्ध समाप्त करने वाले नहीं हैं।"

"फिर क्या करेंगे ? जरा मैं भी तो सुनूँ ?" बीच में ही आवेग के साथ नई-माँ ने कहा।

राखाल चुप ही रहा।

"चुप क्यों हो राजू ? मैं आज्ञा देता हूँ, बता डालो।" ब्रज बाबू कह उठे।

राखाल ने कहना शुरू किया, "वह विचित्र आदमी हैं, माँ।"

ब्रज बाबू कह उठे, "मौका पड़ने पर मार-पीट भी कर सकता है।"

नई-बहू का मुँह तमतमा उठा। बोलीं, "किसको ? क्या बाबूजी को ?"

"जी हाँ, बाबूजी को भी वह एक बार धक्का देकर गिरा चुके हैं। लगभग पन्द्रह-सोलह दिन तक बाबूजी पलंग पर पड़े रहे।"

नई-माँ के नयन ज्वाला के समान लपटें निकाल रहे थे। वह बड़े वेग से कहने लगीं, "और इतना करने के पश्चात् भी वह कृतघ्न उसी घर में खाता-पीता और रहता है !"

"केवल अपने-आप ही नहीं, अपनी माँ को—बाबूजी की सास को—भी लेते आए हैं। उनके और कुटुम्बी सब मर चुके हैं, नहीं तो शायद वह भी आकर इसी घर में जम गए होते। अब उन्हें इस घर से हटाना कठिन है माँ ! उनकी जड़ें गहरी जम चुकी हैं। मुझे अपना आश्रय का हाथ देकर आप उस घर में लाई थीं और अपना समझकर पाला था, लेकिन उनकी कुटिल दृष्टि का आघात मैं सहन न कर सका, आखिर भागना ही पड़ा। रेणुका के विवाह के विषय में बाबूजी क्या कुछ कर सकेंगे यह इस समय जान लेना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।"

नई-बहू आश्चर्य और क्रोध से लाल पड़ गईं। उनकी आँखों से ज्वाला की चिनगारी निकल रही थीं।

राखाल ने फिर बाबूजी की ओर इशारा करके कहा, "आजकल मामा जी घर के स्वामी हैं और उनकी माता स्वामिनी। उनकी क्रोधाग्नि में अकेले बाबूजी को डालते मेरा हृदय काँप रहा है और इधर पागल वर से रेणुका की रक्षा का प्रश्न है। पति और पुत्री दोनों ही आपत्ति के गहरे समुद्र में गोते लगा रहे हैं, माँ ! कहीं पर किनारा नहीं दिखलाई देता। इस विपत्ति को देख मन चाहता है कि सिर को पटक-पटककर फोड़ डालूँ।"

नई-माँ निरुत्तर होकर सामने पड़ी मेज पर सिर रखकर चुप और शिथिल हो गईं।

वातावरण शान्त था और जाने कितनी देर तक रहता कि द्वार पर आहट हुई। नौकर ने आकर नई-बहू की तरफ देख करके कहा, "माँ !" वह घबराया हुआ था।

नई-माँ ने सचेत होकर कहा, "तू है !"

"मैं ड्राइवर को साथ लाया हूँ, शीघ्रता कीजिए। बाबूजी बहुत अप्रसन्न हो रहे हैं।" बात साधारण थी लेकिन इतने अशिष्ट ढंग से कही गई थी कि ब्रज बाबू ने लजाकर मुँह एक ओर फेर लिया।

"माँ, जल्दी कीजिए, अन्यथा अनर्थ हो जायेगा।" [illegible] नौकर को

सहन नहीं हो रहा था। उसका उतावलापन व्यर्थ की शंकाओं को भी जन्म दे रहा था। इस बात को भला वेचारा क्या जाने? "जल्दी चलने के लिए मैं गाड़ी लाया हूँ।" उसने फिर कहा।

"क्यों, क्या बात है?"

नौकर को उत्तर देने में संकोच हुआ, क्योंकि स्पष्ट बात बतलाने के लिए उसे मना कर दिया गया था। वह असमंजस में बगलें झाँक रहा था।

"बाबू ने मुझे किसलिए बुलाया है?" माँ ने पूछा।

"मार्ग में सब कुछ बतला दूँगा माँ! आप जल्दी कीजिए।"

नई-बहू ने अधिक विवाद करना पसन्द नहीं किया और बोलीं, "लीजिए, अब मुझे चलना ही होगा। मैं जा रही हूँ।"

"जा रही हो?" धीमे से निराशा के स्वर में बाबूजी बोले।

"हाँ! आपने मुझे बुलाया नहीं था इसलिए रोकने का अधिकार भी आपको नहीं है। मुझे जाना ही होगा। एक वार विचार कर कहिए, नई-बहू को, जिसे न कभी कुछ आपने बतलाया ही है और न जिसको कभी कुछ कहा ही है, क्या उसके अन्तर को पहचाना जा सकता है? बोलिए बड़े बाबू!"

शांत मुद्रा में केवल नई-बहू के शब्दों को सुन एकटक होकर जमींदार साहब उनका मुख देखने लगे।

नई-बहू फिर कहने लगीं, "मेरी क्षमा की भिक्षा आपने अस्वीकार कर दी। क्षमा लेकर क्या करती, यह मैं जानती हूँ, लेकिन आपका इस प्रकार उपेक्षा करना कहाँ तक ठीक था। मैंने जीवन-भर आपसे किसी बात की याचना नहीं की, मैंने इसमें लज्जा का अनुभव किया और साथ ही अभिमान का भी, और कोई चाहे मुझसे कुछ भी कहे, लेकिन आपके लिए इस तरह कहना ठीक नहीं।"

बड़े बाबू के हृदय में उथल-पुथल मच गई। एक पुरानी घटना की स्मृति उनके नेत्रों में चित्रित हो उठी—रेणुका के जन्म के बाद नई-बहू अस्वस्थ थीं और किसी बहुत ही आवश्यक काम से उन्हें ढाका जाना था। "मुझे सोता हुआ छोड़कर चले मत जाइएगा" यह शब्द उसी मधुर कण्ठ के थे जिनका उल्लंघन नहीं हो सका, हो नहीं सकता था—बड़ी भारी हानि

होने पर भी वहाँ नहीं गए और मित्रों में 'स्त्री-दास' की उपाधि ग्रहण की। लेकिन आज...

इन सभी बातों को समझने में नौकर असमर्थ था अतः नई-बहू को देर करते देख घबराहट में कह उठा, "आपका एक किरायेदार अफीम खाकर मर रहा है, माँ ! इसीलिए दौड़कर बुलाने आया हूँ।"

"अफीम कौन खा गया रे?" नई-माँ ने घबराकर पूछा।

"नीचे वाले बाबू की स्त्री।"

"और नीचे वाले बाबू हैं कहाँ?"

"वे तो सात-आठ दिन से गुम हैं। सुना है उनकी नौकरी छूट गई थी, इसीलिए घर छोड़कर कहीं भाग गए।"

"और तुम्हारे बाबू क्या कर रहे हैं? क्या उसे अस्पताल भिजवा दिया?"

"अभी कहाँ माँ ! वह तो पुलिस के भय से दुकान पर चले गए। आपके किराएदार हैं, आपको ही उनका कुछ प्रबन्ध करना होगा। बहू के बचने की आशा नहीं दिखाई पड़ती।"

"माँ, मैं आपके साथ चलूँ? आवश्यकता पड़ सकती है।" राखाल ने खड़े होकर कहा।

"हाँ। चलो बेटा !"

नई-माँ ने जाते समय पति के चरण छुए और चरण-धूलि मस्तक पर लगाई। सभी घर से बाहर आ गए और राखाल ने ताला लगा दिया।

चार

राखाल नई-माँ के बिना बुलाए ही उनके पास जा रहा है।

रमणी बाबू भली-भाँति राखाल को जानते-पहचानते थे। तेरह वर्ष बीत गए हैं और दोनों ही ओर बहुत कुछ परिवर्तन हो गया, लेकिन राखाल को न पहचानने का भी कोई कारण नहीं है।

राखाल गाड़ी के भीतर बैठकर सोचने लगा—शायद वह दुकान न

गए हों, शायद जाकर लौट आए हों, शायद घर न रहने के अपराध में मेरे सामने ही वह नई-माँ का अपमान कर बैठें—तब मेरे लिए लज्जा और दुःख से माँ संतप्त हो उठेंगी। इसी प्रकार की अनेक चिन्ताओं से वह नई-माँ के पास बैठकर भी अस्थिर हो उठा। वह स्पष्ट देखने लगा कि उसके इस अचिन्तित आविर्भाव से रमणी बाबू के मन में सन्देह उत्पन्न होगा और ब्याह के विषय को यदि नई-माँ ने गुप्त रखने का ही विचार कर रखा हो तब वह निःसन्देह ही व्यर्थ हो जाएगा। कारण, सत्य और मिथ्या अभियोग को दूर करने के लिए उन पर अन्त में सच बात प्रकट करनी ही होगी।

ड्राइवर के पास वह गँवार नौकर बैठा हुआ था।

स्वामी के भय से उसकी घबराई हुई रुखाई और उत्तर में नई-माँ की वेदना से भरी लज्जित भाव की बातें राखाल को याद आ गईं। उसी की पुनरावृत्ति स्वयं स्वामी के मुख से अब क्या रूप धारण करेगी—यह सोचकर वह व्याकुल हो उठा—उसके लिए बैठा रहना असम्भव हो गया। उसने कहा, "नई-माँ, गाड़ी रोकने के लिए कहिए, मैं उतर जाऊँ।"

नई-माँ ने विस्मित होकर कहा, "क्यों बेटा, क्या कहीं कोई बहुत आवश्यक कार्य है?"

राखाल ने कहा, "ना, काम तो कुछ वैसा नहीं है—लेकिन मैं कहता हूँ आज रहने दिया जाए।"

नई-माँ ने कहा, "लेकिन यदि लड़की को बचाया जा सकता है तो उसके लिए आज ही कुछ करना है, और दिन कुछ नहीं।"

ना कहना कठिन था। राखाल ने संकोच से विपन्न होकर अन्त में धीरे से कहा, "माँ, मैं सोचता हूँ, रमणी बाबू कहीं कुछ गलत न सोच लें।"

नई-माँ हँस दीं। बोलीं, "ओह, यह बात है! परन्तु क्या यह सोचकर कि कोई आदमी कुछ सोचेगा, लड़की को मरने दिया जाए? बेटा! बड़े होकर तुमको शायद यही बुद्धि मिली है? इसके सिवा, सुन तो चुके हो कि वह घर में नहीं हैं—पुलिस के हंगामे से घबराकर भाग गए हैं। शायद दो-तीन दिन इधर मुँह ही न करेंगे।"

राखाल आश्वस्त नहीं हुआ। विश्वास भी नहीं कर सका और प्रतिवाद भी। तभी गाड़ी दरवाजे पर आ पहुँची।

उसने देखा, उसका अनुमान सत्य ही है। एक प्रौढ़ अवस्था के भद्र पुरुष ऊपर के बरामदे में खम्भे की आड़ में लगे प्रतीक्षा कर रहे थे—वह शीघ्रता से नीचे उतर आए। राखाल ने मन में सोचा, अब खैर नहीं।

उनमें घबराहट प्रकट हो रही थी। उन्होंने कहा, "आ गईं ? सुनो तो, जीवन की घरवाली ने कैसा अनर्थ…?"

बात पूरी नहीं हुई, एकाएक राखाल पर दृष्टि पड़ते ही चुप हो गए।

नई-माँ ने कहा, "राजू को नहीं पहचान पाए ?"

क्षणभर ध्यान से देखकर वह कह उठे, "ओह ! राजू ! हमारे राखाल ! क्यों न पहचान पाऊँगा ? निश्चय ही पहचान लिया।"

राखाल ने पहले ही के समान झुककर प्रणाम किया।

रमणी बाबू ने राखाल का हाथ पकड़ लिया। बोले, "इतने दिन हो गए, एक बार सूरत भी नहीं दिखाई। तुम भी खूब हो। लेकिन देखो, इस स्त्री ने कैसा अनर्थ कर डाला। अब पुलिस घर-भर के लोगों को परेशान कर डालेगी।" फिर दुश्चिन्ता से एक लम्बी सांस छोड़कर बोले, "सदा कहा नई-बहू से कि जिस-तिसको किराए पर न रखो। लोग कहते हैं—मरी गऊ से सूनी गौशाला भली। लो, अब सँभालो। एक बात भी अगर कभी मेरी सुनी हो।"

राखाल ने कहा, "अस्पताल भेजने की व्यवस्था आपने क्यों नहीं की ?"

"अस्पताल ? खूब ! तब क्या उसे छुड़ाया जा सकेगा ? अरे भाई, यह आत्महत्या है !"

राखाल ने कहा, "लेकिन उसे बचाने का प्रयत्न तो करना चाहिए। नहीं तो आत्महत्या का रूप धारण कर लेगी।"

रमणी बाबू ने घबराकर कहा, "कुछ कर डालना तो ठीक न होगा। सलाह-परामर्श करने की भी तो आवश्यकता है, पुलिस का मामला है।"

नई-माँ ने कहा, "तो फिर चलो, किसी अच्छे अटर्नी के ऑफिस में चलकर पहले सलाह ले ली जाए।"

रमणी बाबू जल उठे। बोले, "हँसी करने से ही तो काम नहीं होता नई-बहू। मेरी बात सुनतीं तो आज यह संकट न आता।"

ये सब उलाहने अर्थहीन उच्छ्वास के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं—यह नये आदमी राखाल की भी समझ में आ गए। नई-माँ ने उत्तर नहीं दिया, हँसकर केवल राखाल से कहा, "चलो तो बेटा, देखें चलकर, क्या किया जा सकता है।" फिर रमणी बाबू को लक्ष्य करके कहा, "तुम ऊपर जाकर बैठो, मँझले बाबू। लड़के को लेकर जो कुछ कर सकती हूँ वही करूँगी। केवल यही करो कि घबराकर लोगों को परेशान न करो।"

नीचे के तल्ले में तीन-चार परिवार किराये पर रहते हैं। प्रत्येक के पास दो कोठरी हैं। बरामदे में एक भाग तख्तों से घेरकर रसोईघर की एक लाइन बनाई गई है। उसमें ये लोग रसोई बनाते हैं और भोजन करते हैं। पानी के नल और पखाने पर सबका समान अधिकार है। सभी किरायेदार दफ्तरों के क्लर्क हैं। किराया काफी होने के कारण, महीने के अन्त में मकान बदल डालने का रिवाज यहाँ नहीं है। सभी किराएदार प्राय: स्थायी रूप से रह रहे हैं। केवल जीवन चक्रवर्ती नया किराएदार था। इस घर में उसे रहते शायद दो साल से अधिक नहीं हुए। उसी की घरवाली ने अफीम खाकर यह झंझट खड़ा कर दिया है। इस बहू के अपने कोई बाल-बच्चा नहीं था, इसलिए सभी किराएदारों के बाल-बच्चों का भार उसके ही ऊपर था। उन्हें नहलाना-धुलाना, सुलाना, उनके फटे कुर्ते-कपड़े आदि सीना—यह सब वही करती थी। गृहिणियों का हाथ खाली न होने पर जीवन की घरवाली को ही पुकारा जाता था। कारण, यह कामकाजी नहीं थी। फिर उसे काम ही कौन था। इतनी थोड़ी आयु में सुस्ती या आलस्य जरा भी नहीं।

इस बहू के सम्बन्ध में सब किराएदारों का यही सर्वसम्मत अभिमत था। यह चाहे जो हो, शांत प्रकृति के कारण सभी उससे प्रेम करते थे, स्नेह करते थे। लेकिन पाँच-छः महीने से उसका पति बेकार था और वह भी उसका आज पाँच-सात दिन से पता नहीं है, यह खबर आज ही उन लोगों ने सुन पाई, जब आज वह बेचारी मरने को है। फिर भी, किसी को यह विश्वास नहीं हो रहा था कि जीवन की बहू अफीम खा सकती है।

नई-माँ जब राखाल को लेकर उसकी कोठरी में पहुँचीं, उस समय वहाँ कोई भी न था। जान पड़ता है पुलिस के हंगामे के भय से सभी छिपे हुए

थे। कोठरी गरीबी की साक्षात् प्रतिमूर्ति थी। एक दीवाल के पास दो छोटे-छोटे पानी के बर्तन रखे थे और दूसरी दीवाल के पास एक टीन का ट्रंक। सस्ते मूल्य के एक तख्त पर पुराने-फटे, मैले बिछौने के ऊपर वह लेटी थी। उस समय तक होश में थी। एक मर्द को देखकर उसने शिथिल हाथ से आँचल जरा सिर पर आगे खींचने की चेष्टा की।

नई-माँ ने बिछौने पर एक किनारे बैठकर आर्द्र कण्ठ से कहा, "यह काम क्यों किया बेटी—मुझे सब बात बताई क्यों नहीं ?"

फिर हाथ से उसके आँसू पोंछकर बोलीं, "सच-सच बताओ तो बेटी, कितनी अफीम तुमने खाई ? और कब खाई ?"

आस-पास की कई औरतें हिम्मत करके कोठरी में आ गईं। एक अधेड़ स्त्री ने कहा, "पैसा तो अधिक पास था नहीं, इसलिए इसने जरा-सी खाई है और जान पड़ता है, तीसरे पहर खाई है। मुझे जब मालूम हुआ, उस समय भी यह बात कर रही थी।"

राखाल ने उसकी नाड़ी देखी। हाथ से पलकें उठाकर परीक्षा की, फिर कहा, "जान पड़ता है, भय की बात नहीं है नई-माँ। मैं एक गाड़ी ले आता हूँ, अस्पताल ले जाऊँगा।"

उसने सिर हिलाकर आपत्ति जताई।

राखाल ने कहा, "इस प्रकार मरने से लाभ क्या है, बताइए तो ? कभी यह सुना नहीं कि आत्महत्या के समान कोई पाप नहीं है ?" जो स्त्री कह रही थी कि घर में डॉक्टर को बुलाकर चिकित्सा की चेष्टा करना उचित है।

उसके उत्तर में राखाल ने नई-माँ को दिखाकर कहा, "यह जब आ गई हैं तब रुपयों के लिए कोई चिन्ता नहीं है—एक के स्थान पर दस डॉक्टर लाकर उपस्थित कर सकता हूँ। लेकिन उससे सुविधा नहीं होगी नई-माँ। अस्पताल में ले जाकर यदि इनके प्राण बचाये जा सके तो पुलिस के हाथ से इनके शरीर को भी बचाया जा सकेगा, यह भरोसा मैं आप लोगों को दे सकता हूँ।"

नई-माँ ने प्रसन्न होकर कहा, "यही करो बेटा। गाड़ी मेरी खड़ी ही है, तुम ले जाओ।"

उनके आदेश से एक दासी उस स्त्री को अस्पताल पहुँचाने के लिए राजी हुई। नई-माँ ने खर्च-वर्च के लिए राखाल के हाथ में कुछ रुपये रख दिए।

संध्या बीत गई है।

रात्रि के शुरू अन्धकार में राखाल ने अर्धचेतन उस अपरिचित नारी को अपने जोर से गाड़ी में डालकर अस्पताल की यात्रा की। मार्ग में गैस के उज्ज्वल प्रकाश में उस मरणपथ की यात्री नारी का चेहरा बीच-बीच में दिखाई पड़ जाने से राखाल को जान पड़ने लगा जैसे ठीक ऐसा उसने कभी नहीं देखा। उसने अपने जीवन में बहुत औरतों को देखा है। अनेक प्रकार की छोटी-बड़ी-जवान-अधेड़। तरह-तरह के चेहरे, तरह-तरह के डील-डौल। इकहरे, दोहरे, तीहरे, चौहरे बदन की—दुबली-पतली, मोटी-ताजी, लम्बी-ठिगनी, काली-गोरी—बड़े-बड़े बालों वाली और झड़ते हुए छोटे-छोटे बालों वाली—गोल और लम्बे चेहरे की—अनेक आत्मीयता और परिचय की घनिष्ठता से उसकी जानकारी काफी है। इस अवस्था में ही इन सबके बारे में देखने की उसकी साध मिट गई है। ठीक वितृष्णा रही, एक दबी हुई अवहेलना कहीं पर उसके मन के एक कोने में अत्यन्त गुप्त रूप से जमा हो रही थी। कल नई-माँ को देखकर उसमें पहला धक्का लगा था। तेरह साल पहले की बात को प्रायः वह भूल चुका था, किन्तु वही नई-माँ यौवन के दूसरे छोर पर पैर रखकर कल जब उसके सामने आई थीं तब कृतज्ञ चित्त से अपना संशोधन करके यही बात उसने मन-ही-मन कही थी—नारी के सच्चे रूप का दर्शन कितनी बड़ी दुर्लभ वस्तु है, इस बात को जगत् के अधिकांश लोग जानते ही नहीं। आज गाड़ी के भीतर प्रकाश और अन्धकार की सन्धि में बार-बार इस मरणोन्मुख स्त्री को देखकर उसी बात को उसने एक बार मन-ही-मन स्मरण किया।

उसकी अवस्था उन्नीस-बीस वर्ष की ही होगी। आज साज-सिंगार और आडम्बरहीन दरिद्र भद्र घर की औरत है। अनशन और आधे पेट भोजन से उसके पीले पड़े हुए मुख पर मृत्यु की छाया पड़ी है, किन्तु राखाल की मुग्ध दृष्टि में जान पड़ा कि मृत्यु ने जैसे इस नारी को रूप के उस पार पहुँचा दिया है। किन्तु यह देह की अक्षुण्ण सुषमा से है या भीतर की नीरव

महिमा से, राखाल भली-भाँति समझ न सका। अस्पताल में अपनी शक्ति से भी अधिक उसके लिए करने का संकल्प किया, किन्तु इस दुःख-चेष्टा की विफलता की चिन्ता से करुणा के मारे उसकी आँखों में आँसू भर आए।

एकाएक दासी के कन्धे के ऊपर से रोगिणी का सिर लुढ़कते देखकर राखाल ने हड़बड़ाकर उसे सँभालने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि सँभल गया।

कितने ही बड़े घरों की औरतों का इस अपरिचिता की तुलना में उस समय उसे ध्यान आने लगा। वहाँ रूप की लोलुपता से कैसी उग्र अनावृत-क्षुधा रहती है। रूप की दीनता को ढकने के लिए कितने विचित्र आयोजन किए जाते हैं। कितने महँगे प्रसाधन होते हैं। उनमें कितना अपव्यय होता है। उसने बराबर अपनी आँखों से उन नारियों को परस्पर ईर्ष्या से कातर होकर पीठ-पीछे बुराई करते देखा है—उनकी जलन का अनुभव किया है।

उसी समाज में यह एक नारी है जिसके शरीर पर न कोई आभूषण है और न कोई सिंगार। यह कुण्ठित श्री।

वह सोचने लगा। क्या जाने, कन्या के ब्याह की चिन्ता से व्याकुल किस गरीब भिखारी माता-पिता की यह बेटी है। किस अभागे कायर के हाथ में उन्होंने इसे सौंपा था। क्या जाने, कितने अनादरों के बाद इस निर्वाक् कन्या ने आज धैर्य खो दिया, तो भी जिस संसार ने उसे कुछ नहीं दिया, उसे भिक्षापात्र हाथ में लेकर अपना दुःख जताना नहीं चाहा। जितने दिन हो सका, मुँह में ताला लगाकर उसकी सेवा करती रही। शायद वह शक्ति समाप्त हो गई—इसलिए क्या आज इस अपमान से, वेदना से, अभिमान से अपने उसी विधाता के आगे शिकायत करने चली है, जिसने अपने रूप का बर्तन खाली करके, सारा रूप देकर इसे इस संसार में भेजा।

कल्पना टूट गई। राखाल ने चौंककर देखा, गाड़ी अस्पताल के आँगन में पहुँच चुकी है। वह स्ट्रेचर के लिए दौड़ा, मगर उस नारी ने मना कर दिया। बची हुई सारी शक्ति को प्राणपण से सचेत करके उसने क्षीण स्वर से कहा, "मुझे उठाकर न ले चलो, मैं आप ही जा सकूँगी।"

वह साथ की औरत के कंधे का सहारा लेकर लड़खड़ाती किसी प्रकार आगे बढ़ी।

अस्पताल में उस नारी की जान कैसे बची, नियम का झगड़ा किस तरह मिटा, राखाल ने क्या किया, क्या दिया-लिया, किससे क्या कहा, इन सब बातों की विस्तार से वर्णन करने की आवश्यकता नहीं।

चार-पाँच दिन के बाद राखाल ने कहा, "भाग्य में जो दुःख-कष्ट लिखा था, वह भोग लिया। अब घर चलिए।"

शान्त काली आँखें फैलाकर वह नारी चुपचाप राखाल की ओर ताकती रही।

राखाल ने कहा, "यहाँ के शिक्षित, सुसभ्य सम्प्रदाय के कायदे-कानून से आपका नाम मिसेज चकरबुर्टी (चक्रवर्ती) हो गया, किन्तु मैं तो आपका यह अपमान कर न सकूँगा। साथ ही मुश्किल यह है कि कुछ-न-कुछ कहकर पुकारना भी तो चाहिए?"

उसने एकदम सहज स्वर में कहा, "क्यों, मेरा नाम तो शारदा है। लेकिन मैं कितनी छोटी हूँ, 'आप' कहने से मुझे बड़ी लज्जा लगती है।"

राखाल ने हँसकर कहा, "लज्जा की तो बात ही है। मैं अवस्था में कितना बड़ा हूँ। अच्छा, तो चलने का प्रस्ताव मुझे इस प्रकार करना होगा—शारदा, अब तुम घर चलो।"

शारदा ने पूछा, "मैं आपको क्या कहकर बुलाऊँगी? नाम तो लिया नहीं जा सकता।"

राखाल ने कहा, "नाम न लिया जा सकने पर भी इसका एक उपाय है। मेरा नाम है राखाल—राखाल राज। इसी से बचपन में नई-माँ मुझे राजू कहकर पुकारती थीं। इसके साथ बाबू और जोड़ देने से अनायास पुकारा जा सकता है।"

शारदा ने सिर हिलाकर कहा, "वह तो एक बात हुई। हमारे देश में ब्राह्मण को देवता कहते हैं। मैं भी आपको देवता कहकर पुकारूँगी।"

"अरे! कहती क्या हो? शारदा, ब्राह्मणत्व तो मुझमें रत्ती-भर भी नहीं है।"

"भले ही न हो, लेकिन देवत्व तो सोलह आने है। फिर ब्राह्मण के भले-बुरेपन का हम लोग विचार नहीं करते। करना भी न चाहिए।"

उत्तर सुनकर, खासकर कहने के ढंग को देखकर राखाल मन-ही-मन

कुछ विस्मित हुआ। शारदा गंवई गाँव के गरीब ब्राह्मण की लड़की है, इसलिए पहले राखाल ने उसे जितना अशिक्षित और गँवार ठहरा रखा था, इस समय ठीक वैसी ही नहीं समझ सका। एक और बात उसके कानों में खटकी। देहात में शूद्र ही साधारणतः ब्राह्मण को देवता कहकर सम्बोधन करते हैं—उसके अपने गाँव में भी यह चलन है। किन्तु ब्राह्मण की कन्या के मुख से इस सम्बोधन की बात उसे न जाने कैसी लगी। हाँ, इस स्थान पर यदि कोई विशेष अर्थ इस लड़की के मन में हो तो वह अलग बात है।

राखाल ने कहा, "अच्छा, यही कहकर पुकारो। लेकिन अब घर चलो। ये तो अब तुमको यहाँ रखेंगे नहीं।"

शारदा सिर झुकाए चुप रही।

राखाल ने क्षण-भर बाद फिर कहा, "क्या कहती हो शारदा? घर चलो।"

अबकी शारदा ने सिर उठाकर देखा।

धीरे से बोली, "मैं घर का किराया कहाँ से दूंगी? तीन-चार महीने का पिछला किराया शेष है—हम वह भी तो नहीं दे सकते।"

राखाल ने हँसकर कहा, "इसके लिए कोई चिन्ता नहीं है।"

शारदा ने विस्मय के साथ कहा, "चिन्ता क्यों नहीं है?"

'तुम्हारे लिए चिन्ता का कारण इसलिए नहीं है कि घर का किराया तुम्हारे पति देंगे। लज्जा के कारण से और पास पैसा न होने से कहीं छिपे हुए होंगे, जल्दी ही लौट आवेंगे—शायद लौट भी आए हों। हम जाते ही उन्हें देख पाएँगे।"

"ना, वह नहीं आए।"

"ना भी आए हों तो अब निश्चय ही आएँगे।"

शारदा ने कहा, "ना, वह न आएँगे।"

"नहीं आएँगे? तुमको अकेली छोड़कर हमेशा के लिए भाग जाएँगे? ऐसा भी कहीं हो सकता है? निश्चय ही आएँगे।"

"ना।"

"ना? यह तुमने कैसे जाना?"

"मैं जानती हूँ।"

उसके स्वर के भारीपन के सामने कुछ कहने-सुनने या तर्क करने को नहीं रह गया। राखाल स्तब्ध भाव से कुछ देर बैठा रहा, फिर बोला, "तो फिर चाहे अपने ससुर के घर और नहीं तो बाप के घर चलो। मैं वहाँ भेजने की व्यवस्था कर दूंगा।"

शारदा चुपचाप सिर झुकाए बैठी रही।

राखाल ने घड़ी-भर अपेक्षा करके कहा, "कहाँ जाओगी, ससुराल ?"

शारदा ने गर्दन हिलाकर बताया, "ना।"

"तो फिर क्या बाबा के घर जाना चाहती हो ?"

उसने फिर वैसे ही गर्दन हिला दी।

राखाल अधीर हो उठा। बोला, "यह तो बड़ी कठिनाई है। यहाँ की वाड़ी पर भी न जाओगी, ससुराल भी न जाओगी और बाप के घर भी नहीं जाना चाहती हो। हमेशा अस्पताल में तो रहने का नियम नहीं है शारदा !"

प्रश्न समाप्त करते ही उसने देखा कि उस लड़की के घुटनों के पास की धोती आँसुओं से भीग गई है और इसी कारण वह मुँह से कुछ न कहकर अब तक गर्दन हिलाकर ही प्रश्नों का उत्तर दे रही थी।

"यह क्या शारदा, रोती क्यों हो ? मैंने कटु तो कुछ कहा नहीं।"

उसने जल्दी से आँसू पोंछ डाले, लेकिन तुरन्त ही कुछ बोल न सकी, रुँधे हुए गले को साफ करने में कुछ देर लगी। फिर कहा, "मुझसे अब कुछ सोचा नहीं जाता—मुझे मरने भी किसी ने नहीं दिया।"

राखाल मन-ही-मन असहिष्णु हो उठा था। पर इस अन्तिम बात को सुनकर खीझ उठा। यह अभियोग जैसे उसी पर था। स्वर को संयत रख-कर उसने कहा; "मनुष्य एक ही बार बाधा दे सकता है शारदा, बार-बार नहीं दे सकता। जो मरना ही चाहता है उसे किसी प्रकार बचाकर रखा नहीं जा सकता और यदि सोचना ही चाहती हो तो उसके लिए भी बहुत समय पाओगी। अब घर चलो, गाड़ी बुला लाकर तुमको पहुँचा आऊँ। मुझे और भी बहुत काम हैं।"

राखाल के व्यंग्य का उसने अनुभव किया या नहीं, कुछ समझ न पड़ा। उसने राखाल के मुँह की ओर देखकर कहा, "मैं किराया जो न दे सकूँगी देवता !"

"न दे सको, ना देना।"

"आप क्या माँ से कह देंगे ?"

राखाल ने कहा,"ना। बचपन में, माँ-बाप के मरने पर, तुम्हारे समान असहाय होकर मैं भी एक दिन उनके पास भीख माँगने गया। जानती हो, क्या भिक्षा दी ? जितने का प्रयोजन था और जो मैंने माँगा, सर्वस्व। उसके बाद हाथ पकड़कर अपनी ससुराल ले आईं—अन्न देकर, वस्त्र देकर, विद्या-दान करके मुझे इतना बड़ा किया। आज दूसरे की ओर से दया की प्रार्थना करने उनके पास जाऊँगा ? ना, यह नहीं करूँगा। जो करना उचित है, वह आप ही करेंगी—किसी को तुम्हारी सिफारिश नहीं करनी होगी।"

शारदा ने पल-भर चुप रहकर पूछा, "आपको तो कभी मैंने इस घर में नहीं देखा ?"

राखाल ने पूछा, "तुम कितने दिन से इस घर में हो ?"

"लगभग दो साल से।"

राखाल ने कहा, "इस बीच मुझे आने का सुयोग नहीं मिला।"

शारदा कुछ देर स्थिर बैठी रही। बोली, "कलकत्ते में इतने आदमी नौकरी करते हैं, मुझे क्या कहीं दासी का काम नहीं मिल सकता ?"

राखाल ने कहा, "मिल सकता है। लेकिन तुम्हारी अवस्था अभी कम है—तुम पर उपद्रव हो सकता है। अच्छा, तुम्हारे घर का किराया कितना है ?"

शारदा ने कहा, "पहले छः रुपये थे; लेकिन अब सिर्फ तीन रुपये देने पड़ते हैं।"

राखाल ने पूछा, "सहसा कम क्यों हो गया ? मकान वालों का तो यह स्वभाव नहीं है ?"

शारदा ने कहा, "मुझे नहीं मालूम। जान पड़ता है, उन्होंने कभी माँ से अपने दुःख-कष्ट की बात कही होगी।"

राखाल जैसे उछल पड़ा। बोला, "तब देखो। मैं कहता हूँ, तुम्हारे लिए कुछ चिन्ता की बात नहीं है, तुम चलो।—अच्छा, तुम्हारे खाने-पहनने में महीने में क्या खर्च होता है ?"

शारदा ने बिना सोचे ही कह दिया, "शायद और भी तीन-चार रुपये लगेंगे।"

राखाल हँसा। बोला, "लगता है, तुमने एक ही समय खाने की बात सोच रखी है, लेकिन एक समय भी इतने में पूरा नहीं पड़ेगा। अच्छा, तुम क्या लिखना-पढ़ना नहीं जानतीं ?"

शारदा ने कहा, "जानती हूँ। मेरे हाथ की लिखावट भी खूब मोहक और स्पष्ट है।"

राखाल प्रसन्न हो उठा। बोला, "तब तो कोई चिन्ता नहीं है। तुमको मैं लिखा हुआ ला दूंगा। तुम यदि उसकी नकल कर दोगी तो मैं तुमको पन्द्रह-बीस रुपये आराम से दिला सकूंगा। लेकिन खूब यत्न करके अच्छा लिखना होगा—खूब स्पष्ट, गलती न हो। क्यों, कर सकोगी ?"

शारदा ने इसके उत्तर में सिर हिलाया, किन्तु आनन्द से उसका सारा चेहरा चमक उठा। एक बार राखाल देखकर चौंक उठा। अँधेरे कमरे के भीतर अचानक बिजली की रोशनी में जैसे उसने इस लड़की के अद्‌भुत रूप की एक अत्यन्त अद्‌भुत झाँकी देखी।

राखाल ने कहा, "जाऊँ, अब गाड़ी बुला लाऊँ न ?"

शारदा ने कहा, "हाँ, जाइए। अब मुझे कोई चिन्ता नहीं है। लगता है, मैं इस संसार से नहीं जा सकी, भगवान् ने मुझे लौटा दिया।"

राखाल गाड़ी लेने गया। मार्ग में सोचता हुआ गया—शारदा ने मुझ पर विश्वास किया है। एक ओर इतने रुपये हैं और दूसरी ओर ऐसा कुछ भी उसे न स्मरण हुआ जिसे वह तुलना में रखता।

घर पर पहुँचकर राखाल ने नई-माँ की खोज में ऊपर जाकर सुना कि वह घर में नहीं हैं। कब और कहाँ गई हैं यह दासी नहीं बता सकी। केवल इतना ही कह सकी कि घर की मोटर गैरेज में ही खड़ी है। अतएव उन्होंने मार्ग में कोई टैक्सी या किराये की गाड़ी ले ली है या पैदल ही गई हैं।

राखाल ने उद्विग्न होकर पूछा, "साथ कौन गया है ?"

दासी ने कहा, "कोई नहीं। दरबानजी को मैंने बाहर बैठे देखा है।"

"और रमणी बाबू ?"

दासी ने कहा, "हमारे बाबू ? वह तो रोज नहीं आते। आते भी हैं तो नौ-दस बजे।"

राखाल ने पूछा, "रोज नहीं आते, इसका मतलब ? नहीं आते तो रहते कहाँ हैं ?"

दासी जरा होंठ-से-होंठ दबाकर हँसी। बोली, "क्यों, उनके क्या घर-बार नहीं है ?"

राखाल ने फिर दूसरा प्रश्न नहीं किया। मन-ही-मन समझ लिया कि वास्तविक मामला इन लोगों से छिपा नहीं है। नीचे आकर देखा, आसपास की औरतें शारदा के चारों ओर भीड़ लगाये हुए हैं और बच्चों के झुण्ड, जो तब तक सोये नहीं थे, उनके आनन्द-कोलाहल से वहाँ एक बाजार-सा लगा हुआ है।

राखाल को देखकर सभी औरतें खिसक गईं। जिस अधेड़ औरत के पास शारदा के घर की चाबी थी वह आकर ताला खोल गई।

राखाल ने पूछा, "तुम्हारे स्वामी की कोई सूचना नहीं मिली क्या ?"

शारदा ने कहा, "ना।"

"ना !"

"आश्चर्य इसमें कैसा ?"

"कहती क्या हो शारदा ? इससे बढ़कर भी क्या कोई आश्चर्य हो सकता है ?"

शारदा ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। बोली, "मैं लालटेन जलाऊँ, आप मेरी कोठरी में आकर बैठिए। तब तक मैं माँ को प्रणाम कर आऊँ।"

राखाल ने कहा, "माँ घर में नहीं हैं।"

शारदा ने कहा, "नहीं हैं ? शायद कहीं गई हैं। काली घाट गई होंगी या दक्षिणेश्वर। ऐसे ही अक्सर जाया करती हैं। लेकिन अभी लौटेंगी। मैं लालटेन जला दूँ—हाथ-मुँह धोने को पानी ला दूँ। जरा बैठिए, मेरे घर में आपके चरणों की धूल पड़े।"

राखाल ने हँसकर कहा, "चरणों की धूल पड़नी बाकी थोड़े ही रही शारदा, वह तो पहले ही पड़ गई है।"

शारदा ने कहा, "यह जानती हूँ। लेकिन वह पड़ी थी जब मैं अचेत

थी। आज मेरी चेतना में पड़े, मैं आँख से देखूँ।"

राखाल को कुछ कहने के लिए न सूझा। बात कुछ ऐसी नहीं कि जो अचिन्तनीय हो। अचम्भे से अवाक् होने की भी बात नहीं। यह गाँव की लड़की चाहे कितनी अल्पशिक्षित क्यों न हो, जिसने उसे मौत के मुँह से बचाया है और जीने का मार्ग दिखा दिया है उसके प्रति उसके कृतज्ञ मन के भीतर ऐसी एक करुण प्रार्थना का उठना अत्यन्त स्वाभाविक है किन्तु इस बात के लिए तो नहीं, कहने की सुन्दर विशेषता या ढंग से राखाल को अत्यन्त विस्मय हुआ। साथ ही, पल-भर में बहुत-सी परिचित रमणियों के चेहरे और बहुत-से परिचित कण्ठ-स्वर उसे स्मरण हो आए।

थोड़ी देर बाद उसने कहा, "अच्छा, लालटेन जलाओ। किन्तु आज मुझे काम है—कल या परसों मैं फिर आऊँगा।"

लालटेन जलने पर क्षण-भर के लिए वह भीतर आकर तख्त पर बैठा; पॉकेट से कुछ रुपये निकालकर वहाँ रख दिए। फिर कहा, "यह तुम्हारे पारिश्रमिक का कुछ पेशगी है शारदा।"

शारदा ने कहा, "किन्तु मुझसे जब आपका काम चल जाए तभी तो। पहले शायद काम कुछ खराब होगा, लेकिन मैं निश्चय ही सीख लूँगी। देखिएगा मेरे हाथ का लिखा? ले आऊँ कलम-दवात?" यह कहकर ही वह उठने लगी, किन्तु राखाल ने व्यस्त होकर रोक दिया। बोला, "ना-ना, अभी रहने दो। मैं जानता हूँ, तुम्हारे हाथ की लिखावट अच्छी है, मेरा काम भली प्रकार चल जाएगा।"

शारदा जरा-सी मुस्करा दी। पूछा, "आपके घर में कौन-कौन हैं देवता?"

राखाल ने उत्तर दिया, "मेरा घर यहाँ नहीं है। यहाँ तो मेरा डेरा है और अकेला रहता हूँ।"

"उन लोगों को यहाँ क्यों नहीं लाते?"

राखाल कठिनाई में पड़ गया। यह प्रश्न बहुतों ने किया है, उत्तर देने में हमेशा लज्जा हुई है। शारदा से भी उसने कह दिया, "शहर में लाकर रखना क्या सरल है?"

सरल नहीं है, यह बात शारदा स्वयं ही जानती है। शायद उसे भी

कोई देहात की बात याद आ गई। जरा चुप रहकर उसने पूछा, "तो फिर यहाँ कौन आपका काम-काज कर देता है?"

राखाल ने कहा, "नौकरानी है।"

"भोजन कौन बनाता है, महाराज?"

राखाल ने हँसकर कहा, "तब तो हो चुका। एक साधारण आदमी का खाना बनाने के लिए एक समूचा महाराज? मैं आप ही बना लेता हूँ। कुकर का नाम कभी तुमने सुना है? उसमें आप ही पक जाता है, केवल रसोई का सामान सँजोकर रख देने की आवश्यकता होती है।"

शारदा ने कहा, "मैं जानती हूँ। खाना तैयार होने पर खा-पी चुकने के पश्चात् वह बर्तन आदि माँज-धोकर रख जाती है।"

"हाँ, ठीक यही बात है।"

"और क्या-क्या काम वह करती है?"

राखाल ने कहा, "जो जरूरी होता है, सब कर देती है। मैं उसको नानी कहता हूँ। मुझे किसी काम के लिए चिन्ता नहीं करनी पड़ती। अच्छा बताओ, आज तुम्हारे खाने-पीने का क्या होगा? घर में सामान तो कुछ है नहीं, दूकान से लाकर दे जाऊँ?"

शारदा ने कहा, "ना। आज मेरा सब पड़ोसियों के यहाँ न्योता है। लेकिन आपको तो जाकर रसोई बनवानी होगी?"

राखाल ने कहा, "ना। मुझे कुछ न करना होगा। जो कुछ करना है, सब उसने कर रखा होगा।"

"अच्छा मान लो, वह बीमार पड़ गई हो तो?"

राखाल ने कहा, "ना, बीमार नहीं पड़ सकती। उसके बूढ़े हाड़ खूब मजबूत हैं। तुम लोगों के समान खटिया नहीं पकड़ लेती।"

शारदा ने कहा, "लेकिन दैवसंयोग की बात तो कोई कह नहीं सकता—बीमार पड़ भी सकती है—तब?"

राखाल ने हँसकर कहा, "तो भी चिन्ता नहीं है। मेरे डेरे के पास ही हलवाई की दूकान है। वह मुझे प्यार करता है, कष्ट नहीं होने देता।"

शारदा ने कहा, "आप स्वयं ही उस दिन अस्पताल में कह रहे थे, आपको स्मरण नहीं है। बहुत देर से आपने कुछ खाया-पिया नहीं। चाय

बना लाऊँ। जरा देर बैठिएगा।"

राखाल ने कहा, "किन्तु चाय की व्यवस्था तो तुम्हारे घर में नहीं है। कहाँ पाओगी?"

शारदा, "वह मैं खुद कर लूँगी।" कहकर तेजी के साथ उठने लगी। राखाल ने उसे रोककर कहा, "यह समय मेरे चाय पीने का नहीं है शारदा, मुझे कुसमय सहन नहीं होती।"

शारदा ने कहा, "तो कुछ खाने को ला दूँ·· लाऊँ···? बहुत देर से कुछ खाया नहीं, निश्चय ही आपको भूख लगी है।"

राखाल ने कहा, "लेकिन ला कौन देगा? तुम्हारे तो कोई आदमी नहीं।"

"है क्यों नहीं? हारू मेरी बात बहुत सुनता है। उससे कहते ही वह दौड़ा जाएगा।" वह फिर व्यस्त होकर उठ रही थी, किन्तु अबकी भी राखाल ने मना कर दिया।

शारदा ने हठ अवश्य नहीं की, लेकिन उदास हो गई। उसके विषाद-मलिन मुख को देखकर राखाल को फिर उन्हीं सब खूब जाने-पहचाने स्त्रियों के चेहरे स्मरण हो आए। इन औरतों के बीच उसका बहुत आना-जाना था, उसका बहुत जाना-सुना था, बहुत सभ्यता और भद्रता का देना-पावना था, किन्तु इस चीज को वह जैसे बहुत दिन हुए भूल गया है। उसे अपनी माता की स्मृति बहुत धुँधली है। वह जब बहुत ही छोटा था, तभी उसकी माता का स्वर्गवास हो गया था। एक खंडहर जैसे टूटे-फूटे घर के बरामदे में बेड़े से घिरा हुआ छोटा-सा रसोईघर है, उसमें चौड़ी लाल किनारी की धोती पहने कोई जैसे रसोई बना रही है—शायद वह सब-कुछ राखाल की कल्पना ही है—किन्तु वह उसकी माँ है, उन्हीं माँ के बहुत ही अस्पष्ट मुख का चित्र आज एकाएक जैसे उसे आँखों के आगे दिखाई पड़ने लगा। मन में भीतर न जाने कैसा होने लगा।

वह चटपट उठ खड़ा हुआ। बोला—"कुछ सोच न करना शारदा, आज मैं जाता हूँ। फिर जिस दिन समय मिलेगा, मैं स्वयं माँगकर तुम्हारी चाय पियूँगा, तुम्हारा जलपान करूँगा।"

शारदा ने गले में दुपट्टा डालकर प्रणाम किया, फिर कहा, "मुझे

लिखने का काम कब ला दीजिएगा ?"

"इसी बीच एक दिन दे जाऊँगा।"

"अच्छा।"

वह कुछ और कहने के लिए इधर-उधर कर रही है, ऐसा अनुमान करके राखाल ने पूछा, "तुम और कुछ कहना चाहती हो ?"

शारदा ने धीरे से कहा, "पहले-पहल शायद मुझसे लिखने में बहुत-सी गलतियाँ होंगी, लेकिन आप अप्रसन्न न हों। अप्रसन्न होकर मुझे छोड़ दीजिएगा तो मेरे खड़े होने के लिए और कोई स्थान नहीं है।"

उसके भयभीत स्वर की इस करुण प्रार्थना से विचलित होकर राखाल ने कहा, "मैं अप्रसन्न न होऊंगा किन्तु तुम सीख लेने की चेष्टा करो।"

इसके उत्तर में शारदा ने सिर हिलाकर सहमति प्रकट की। वह चुप-चाप खड़ी रही।

लौटते समय राखाल पैदल ही चला। ट्रामगाड़ी में बहुत लोगों के बीच बैठने को आज उसका जी किसी प्रकार न हुआ।

वह गरीब आदमी है। विद्या की बड़ी पूंजी भी नहीं है, आत्मीय स्वजन भी कोई नहीं हैं, तो भी वह जो इस शहर में बहुत प्रतिष्ठित परिवारों में एक प्रमुख प्राणी हो गया था, सो केवल अपने गुणों से। उसमें स्नेह का, सहृदयता का अभाव न था, अनुकम्पा भी बहुत थी, किन्तु भीतर छिपी हुई एक अनिर्दिष्ट उपेक्षा की ऐसी बाधा थी, जिसके कारण इस शारदा की अपेक्षा कोई किसी दिन उसे अपने पास नहीं खींच सका। कारण, वह था केवल राखाल, इससे अधिक नहीं। वह लड़कों-बच्चों को पढ़ाता है, मैस में रहता है। इस बात को चाहे कहीं कोई न भी जानता हो, किन्तु उसके डेरे के पते पर बारात में शामिल होने के निमंत्रण-पत्र डाक से अनेक आते हैं। प्रीतिभोज के निमंत्रण में भी उसका नाम छूटने नहीं पाता और न जाने पर उस दिन न हो, दो दिन बाद भी यह बात उन लोगों को स्मरण में आती है। काम-काज के घर में उसकी अनुपस्थिति वास्तव में बहुत खलती है। जीवन में उसने अनेक ब्याहों में बिचवानी का काम किया है, अनेक लड़के और लड़कियाँ ढूंढ़ दी हैं, छाँट दी हैं। इसमें उसने बहुत परिश्रम किया। हर्ष से भरे हुए माता-पिताओं ने साधुवाद से उससे कहा है कि राखाल बड़ा अच्छा

आदमी है, राखाल बड़ा परोपकारी है। कृतज्ञता का पुरस्कार इसी प्रकार हमेशा समाप्त होता गया है। इसके लिए उसका कोई विशेष अभियोग हो, यह बात भी न थी। केवल, कभी शायद नौकरी की निष्फल आशा के दिन बीच-बीच में याद आ जाते थे, लेकिन वह ऐसा था ही क्या।

आज फिर भीड़ के बीच चलते-चलते बार-बार वही सारी बहुपरिचित स्त्रियाँ याद आने लगीं। उनका पहनावा-पोशाक, हाव-भाव, आलाप-आलोचना, पढ़ना-लिखना, हँसना-रोना, इसी प्रकार न जाने क्या-क्या। प्रकट-अप्रकट कितनी ही चंचल प्रणय की कहानियाँ, मिलन-बिछोह के आँसुओं से भीगे विवरण।

किन्तु राखाल ? बेचारा बड़ा भला आदमी है, बड़ा परोपकारी है। लड़के पढ़ाता है, मैस में रहता है।

और आज शारदा ने क्या कहा ? कहा, "देवता, मुझसे बहुत भूलें होंगी, यदि तुम त्याग दोगे तो फिर मेरे लिए कहीं खड़े होने को जगह नहीं है।"

शायद सचमुच नहीं है। अथवा…? एकाएक उसे बड़ी हँसी आई, अपने मन में खिलखिलाकर हँस पड़ा, राखाल बड़ा अच्छा आदमी है, राखाल बड़ा परोपकारी है।

एक व्यक्ति ने, जो उसके पास से गुजर रहा था, अवाक् होकर उसकी ओर देखा और फिर वह भी हँस पड़ा। राखाल लज्जित होकर एक गली में से तेजी के साथ आगे बढ़ गया।

पाँच

राखाल जब घर पहुँचा तो उसे दो पत्र मिले। एक पत्र ब्रजबिहारी बाबू का था जिसमें उन्होंने लिखा था कि रेणुका का विवाह स्थगित कर दिया गया है। यह खबर नई-बहू के पास पहुँचा दो। शनिवार के दिन वह स्वयं आकर सब विवरण विस्तार से बताएँगे। इस समय अधिक कार्य के कारण नहीं आ सकते। वे राखाल के घर आएँगे।

दूसरा पत्र उसके स्वामी का था जिनके बच्चों को वह पढ़ाया करता

था। उनके भतीजे का विवाह है। विवाह दिल्ली में अचानक ही तय हो गया है। कार्य में व्यस्तता के कारण इतनी दूर इस समय वह जा नहीं सकते। राखाल के सिवाय और कोई विश्वासी तथा योग्य व्यक्ति भी उनके पास नहीं है अतः राखाल को ही समधी की हैसियत से दिल्ली जाना होगा। इसी रविवार को यात्रा का शुभ दिन है अतः तुरन्त ही आकर राखाल मिले। राखाल को यह सन्तोष हुआ कि इन दिनों में बच्चों की पढ़ाई में होने वाले हर्ज की कोई बात उन्होंने नहीं लिखी।

दोनों ही पत्र अच्छे हैं। विवाह स्थगित का अर्थ ठीक न समझकर भी वह इसी से प्रसन्न था कि चलो पागल के साथ तो विवाह नहीं हुआ, दूसरी बात है दिल्ली जाने की। बहुत अच्छी है। दिल्ली के प्राचीन युग की बहुत-सी वस्तुएँ देखने के योग्य हैं। लोगों से सुना हुआ है तथा पुस्तकों में भी पढ़ा है। अब वह स्वयं ही जाकर आँखों से इन सब वस्तुओं को देख लेगा।

दूसरा दिन!

सवेरे ही पत्र लेकर राखाल नई-माँ से मिलने गया। उन्होंने हँसते हुए चेहरे से बताया कि यह सूचना वह पहले ही सुन चुकी हैं, किन्तु विस्तृत विवरण की अपेक्षा में वह अधीर हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस ब्याह को रोकने में एक प्रबल बाधा थी, तथापि शांत, दुर्बल प्रकृति के ब्रज बाबू अकेले किस प्रकार इतनी बड़ी बाधा को हटाकर सफल हो सके, वह सच-मुच एक विस्मय की बात है।

राखाल ने कहा, "रेणु ने निश्चय ही अपने बाप का साथ दिया होगा नई-माँ, नहीं तो यह ब्याह किसी प्रकार रुक नहीं सकता था।"

नई-माँ ने धीरे से कहा, "उसे तो मैं जानती नहीं बेटा कि उसका कैसा स्वभाव है। तुम कहते हो, वह हो भी सकता है।"

राखाल ने जोर देकर कहा, "लेकिन मैं तो जानता हूँ। तुम देख लेना माँ, मेरा अनुमान ही ठीक है। स्वयं उसके सिवा हेमन्त बाबू को कोई नहीं रोक सकता था।"

नई-माँ से विदा होकर राखाल नीचे शारदा के घर की ओर घूम गया। देखा, इसी बीच में वह लड़कों से कागज-कलम माँगकर एकाग्र मन से लिखने का अभ्यास कर रही है। राखाल को देखते ही चौंकी। लिखने का

सब सामान छिपाने की चेष्टा उसने नहीं की, बल्कि यथोचित मर्यादा के साथ उसे तख्त पर बिठाकर उसने कहा, "देखो तो देवता, इससे क्या आपका काम चल जाएगा ?"

राखाल ने नहीं सोचा था कि शारदा के अक्षर इतने अच्छे और स्पष्ट हैं। उसने प्रसन्न होकर निरन्तर प्रशंसा करके कहा, "यह तो मेरी अपनी लिखावट से भी अच्छा है शारदा ! हम लोगों का खूब काम चल जाएगा। तुम यत्न करके लिखना-पढ़ना सीखो। तुम्हारे खाने-पहनने की चिन्ता नहीं रहेगी। शायद तुम स्वयं ही कितने लोगों को खिलाने-पहनाने का भार उठा लोगी।"

शारदा का चेहरा आनन्द से चमक उठा। राखाल दो-एक मिनट चुपचाप उसकी ओर देखता रहा, फिर पॉकेट से एक दस रुपये का नोट निकालकर बोला, "यह रुपये तुम अपने पास रखो शारदा, यह तुम्हारे ही हैं। मैं एक मित्र के ब्याह में दिल्ली जा रहा हूँ, लौटने में शायद दस-बारह दिन का विलम्ब होगा। लौटकर तुम्हें लिखने को ला दूंगा, है न ठीक ? कुछ चिन्ता न करना।"

शारदा ने कहा, "इस समय मुझे रुपयों की कोई आवश्यकता नहीं है देवता। जो आप दे गए थे, वही अब तक खर्च नहीं हुए।"

राखाल ने कहा, "कोई हानि नहीं, ये रुपये भी आप ही वसूल हो जाएंगे। यदि एकाएक कोई आवश्यकता पड़ गई तो किससे माँगोगी, बताओ किन्तु मेरे लिए कुछ चिन्ता न करना। जितना जल्दी हो सकेगा, मैं शाला जाऊँगा। आते ही तुम्हें लिखने को दे जाऊंगा।"

शारदा से विदा होकर राखाल अपने स्वामी के घर पहुँचा। वहाँ घर के मालिक और मालकिन में गहरे विवाद के पश्चात् यह तय हुआ कि पूरे दल-बल के साथ बारात लेकर उसे रविवार को रात की गाड़ी से ही यात्रा करनी होगी। मालकिन ने कह दिया, "राखाल, तुम्हारा कोई बंधु-बान्धव या इष्ट-मित्र यदि जाना चाहे तो प्रसन्नता से ले जाना, सब व्यय कन्यापक्ष का है। याद रखना, इस ओर के तुम्हीं कर्ता-धर्ता हो, रुपया-पैसा, गहना-गाँठा, चीज-वस्तु, सबका उत्तरदायित्व तुम्हारा ही है।"

सबसे पहले राखाल को तारक याद आया। वह होशियार व्यक्ति है।

उसे साथ लेना होगा, बिना खर्चे के, यह सुयोग नष्ट न किया जाएगा। केवल एक ही आशंका थी, इस आदमी की किसी एक तरफ झुक पड़ने वाली नैतिक बुद्धि की। वहाँ किसी मामले में उचित-अनुचित प्रश्न उठ पड़ने पर उसको प्रसन्न करना कठिन होगा। किन्तु इस बात का ध्यान ही न आया कि तारक इसी बीच मास्टर होकर बर्दवान चला जा सकता है। कारण, उसने सोचा कि तारक उसके लौट आने की अपेक्षा भले ही न कर सके, एक चिट्ठी भी उसके नाम लिखकर न रख जाएगा, ऐसा तो हो ही नहीं सकता।

रविवार को अभी तीन दिन बाकी हैं, इस बीच तारक आकर भेंट करेगा ही। न हो, कल एक बार समय निकालकर वह स्वयं ही तारक के मैस में जाकर यह सूचना दे आएगा। घर में आकर राखाल काम में लग गया। वह रईस व्यक्ति है। कई दिनों की अवहेलना से, ध्यान न देने से, घर में बहुत-सी विश्रृंखलता आ गई है। जाने के पहले यह सब ठीक कर डालना चाहिए। अंग्रेजी दूकान से एक अच्छा-सा विलायती ट्रंक खरीदना है, जिससे विदेश में ताला खोलकर कोई कुछ चुरा न सके। समधी की मर्यादा के अनुसार उसके पहनने योग्य कुर्ता-धोती आदि क्या-क्या अलमारी में है, यह भी देखने की आवश्यकता है। यदि कोई कपड़ा न हो तो वह भी बनवा लेने की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि तारक नहीं है, तो योगेश बाबू से भी एक बार कहना होगा। उन्हें पश्चिम जाने की इच्छा बहुत दिनों से है, केवल पास पैसा न होने से ही वह उसे पूरा नहीं कर सके। ऑफिस के बड़े बाबू से खुशामद करके यदि दस-बारह दिन की छुट्टी मंजूर करा दी जाए तो योगेश बाबू जन्म-भर कृतज्ञ रहेंगे। मालिक के घर में भी कम-से-कम एक बार तो जाना चाहिए। नहीं तो छोटी-मोटी भूल-चूक कैसे मालूम होगी? एक बार सब बातों की आलोचना होनी चाहिए, क्योंकि विदेश का सारा उत्तरदायित्व अकेले उसी पर है।

इस थोड़े समय में इतना सब काम वह कैसे पूरा कर सकेगा, यह सोच-कर भी ठीक न कर सका। शनिवार को तीसरे पहर का समय तो केवल नई-माँ और ब्रज बाबू के लिए ही रखना होगा, उस दिन तो शायद कुछ भी न होगा। इसी बीच में याद करके पोस्ट ऑफिस के सेविंग बैंक से कुछ

रुपये भी निकालने होंगे, क्योंकि अपनी पूँजी न लेकर विदेश जाने से संकट में पड़ा जा सकता है। काम की अधिकता और तकादे से राखाल की आँखों के आगे जैसे अन्धकार दिखाई देने लगा। किन्तु उसका एक कान हर घड़ी दरवाजे की ओर ही लगा रहता। तारक के दरवाजे की जंजीर खटखटाने और पुकारने की प्रतीक्षा में, मगर उसकी सूरत नहीं दिखाई दी। इधर बृहस्पतिवार बीत गया, शुक्रवार आ गया। दोपहर को वह पोस्ट ऑफिस में रुपये निकालने गया। कुछ अधिक रुपये निकालने होंगे। मन में था कि यदि तारक कह बैठे कि उसके पास बाहर जाने योग्य कपड़े नहीं हैं तो किसी प्रकार यह अतिरिक्त रुपया उसके हाथ में थमा दिया जाएगा। इसमें मुश्किल पड़ेगी क्योंकि तारक न उधार लेता है, न दान लेना चाहता है, न उपहार। एक आशा है, राखाल के जोर-जबर्दस्ती करने पर वह हार मान लेता है। समय नष्ट नहीं किया जा सकता। पोस्ट ऑफिस से एक टैक्सी लेनी होगी। तारक अवश्य जरा अप्रसन्न होगा।

रुपये निकालने में बहुत देर लगी। खीझ से मुँह बनाए राखाल बाहर निकलकर किराए की गाड़ी तय कर रहा था, इसी बीच मुहल्ले के डाकिए ने उसके हाथ में एक चिट्ठी दी। तारक ने लिखी थी। खोलकर देखा, तारक ने बर्दवान जिले के एक गाँव से वही हैडमास्टर की जगह पाने की सूचना दी है और आने के पहले भेंट नहीं कर सका, इसके लिए दुःख प्रकट किया है। नई-माँ और ब्रज बाबू को प्रणाम लिखा है। अन्त में यह भी आशा की है कि बिना कहे चले आने के अपराध लेकर स्वयं उपस्थित होगा। चिट्ठी जेब में रखकर राखाल ने एक साँस छोड़ते हुए कहा, "अच्छा हुआ, टैक्सी का किराया बच गया।"

दूसरा दिन !

तीसरे पहर राखाल नए खरीदे हुए ट्रंक में कपड़े आदि सँभालकर रख रहा था, क्योंकि दस-बारह दिन लगेंगे। तभी नई-माँ आ गईं।

राखाल ने प्रणाम करके बैठने के लिए कुर्सी बढ़ा दी। उन्होंने बैठकर पूछा, "शायद कल रात को ही तुम लोगों को जाना होगा ?"

राखाल ने कहा, "हाँ माँ, कल ही सबको लेकर रवाना होना है।"

"लौटने में शायद आठ-दस दिन लग जाएँगे ?"

"हाँ माँ, आठ-दस दिन लगेंगे।"

नई-माँ ने क्षण-भर मौन रहकर पूछा, "क्या बजा है राजू?"

राखाल ने दीवाल की घड़ी की ओर देखकर कहा, "पाँच बज गए। मैं डर रहा था कि शायद आज आपको ही आने में देर होगी, किन्तु आज बाबा ने ही देर कर दी।"

नई-माँ ने कहा, "देर हो तो कोई हानि नहीं, वह आए तो सही—तभी मैं निश्चिन्त हो सकूँगी।"

राखाल ने हँसकर कहा, "जब उस पागल के साथ ब्याह बन्द हो गया है, तब चिन्ता की तो अब कोई बात नहीं है माँ। बाबा यदि न आ सके तो भी कोई हानि नहीं है।"

नई-माँ ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं बेटा, केवल रेणु के ब्याह की ही बात नहीं है, तुम्हारे काका बाबू के लिए भी तो चिन्ता है। मैं यही सोचती रहती कि इस अकेले निरीह, शान्त मनुष्य ने इसके लिए न जाने कितनी लांछना और कितना उत्पीड़न सहन किया होगा।" कहते-कहते उनकी आँखों में आँसू भर आए।

राखाल मन-ही-मन मामा बाबू हेमन्तकुमार के चक्की के पाट जैसे भारी चेहरे को स्मरण करके चुप हो रहा। वह ब्याह रोकने का काम सहज में सम्पन्न नहीं हुआ, यह निश्चय है।

नई-माँ कहने लगीं, "उन्होंने केवल इतना ही पत्र में लिखा है कि ब्याह बन्द हो गया। किन्तु यह तो अब भी नहीं मालूम हुआ कि कुछ दिनों के लिए टल गया है या हमेशा के लिए।"

राखाल कह उठा, "हमेशा के लिए माँ, हमेशा के लिए। इन पागलों के पल्ले आपकी रेणु कभी नहीं पड़ेगी, आप निश्चिन्त होइए।"

नई-माँ ने कहा, "भगवान् ऐसा ही करे। किन्तु उन दुर्बल मनुष्य की बात सोचकर मेरे मन को किसी प्रकार चैन नहीं पड़ रहा है राजू। दिन-रात कितनी चिन्ता, कितने प्रकार का भय होता है, यह मैं किससे कहूं?"

राखाल ने कहा, "किन्तु वह क्या आपको बहुत ही दुर्बल प्रकृति के व्यक्ति जान पड़ते हैं माँ?"

मलिन हँसी हँसकर नई-माँ ने कहा, "दुर्बल प्रकृति के तो वह हमेशा

से हैं राजू ! इसमें क्या कुछ सन्देह है ?"

राखाल ने कहा, "दुर्बल मनुष्य क्या इतना आघात चुपचाप सह सकता है माँ ? बाबा ने इधर जीवन में कितनी व्यथाएँ सही हैं, इसे आप नहीं जानतीं, किन्तु मैं जानता हूँ। यह लीजिए, वे आ रहे हैं।"

खुली खिड़की के भीतर से उसने व्रज बाबू को आते देख लिया था। उसने शीघ्र उठकर दरवाजा खोल दिया। वह जब भीतर बढ़े तब वह एक ओर हटकर खड़ा हो गया। नई-माँ ने पास आकर, गले में आँचल डालकर प्रणाम करके पैरों की धूल माथे से लगाई और फिर उठकर खड़ी हो गईं।

व्रज बाबू कुर्सी खींचकर बैठने के बाद बोले, "रेणुका का ब्याह मैंने उस घर में नहीं किया, सुना है तुमने, नई-बहू ?"

"हाँ, सुना है। जान पड़ता है, बहुत झगड़ा हुआ ?"

"वह तो होगा ही नई-बहू।"

"आप सीधे-सादे व्यक्ति हैं। किसी से विरोध नहीं रखते। मुझे बड़ी चिन्ता थी कि यह ब्याह कैसे बन्द कराएँगे।"

व्रज बाबू ने कहा, "यह सच है कि मैं शान्ति को ही पसन्द करता हूँ, विरोध करने को किसी प्रकार जी नहीं चाहता। तुम्हारी लड़की है, बाधा देना तुम्हारे हाथ में नहीं है—तुम्हीं उसमें बोल नहीं सकतीं इसलिए सारा भार मुझ पर आ पड़ा। मुझे अकेले ही वह भार उठाना पड़ा। जानती हो नई-बहू, उस दिन क्या विचार बार-बार मेरे मन में आया ? मेरे मन में आया कि आज यदि तुम घर में रहतीं तो सारा बोझ तुम पर डालकर मैं किले के मैदान की किसी बेंच पर सोकर रात बिता देता और उन लोगों से मन-ही-मन कहा—आज वह यदि यहाँ होती तो तुम लोग समझते कि अत्याचार करने की भी एक सीमा है—सब पर सब-कुछ नहीं चलाया जा सकता।"

सविता चुपचाप बैठी रहीं।

उस दिन का हाल पूछकर जानने का साहस उन्हें नहीं हुआ। राखाल भी वैसे ही निर्वाक्, निस्तब्ध बैठा रहा। व्रज बाबू ने स्वयं अपनी ओर से इससे अधिक खोलकर नहीं कहा।

दो-तीन मिनट चुप रहने के बाद राखाल ने कहा, "बाबा ! आज आप

बहुत थके हुए-से दिखाई देते हैं।"

ब्रज बाबू ने कहा, "इसका कारण भी यथेष्ट है राजू ! इधर छः-सात दिन व्यवसाय के कागज-पत्र देखने और जाँचने में बहुत परिश्रम करना पड़ा है।"

राखाल ने डरकर पूछा, "सब कुशल तो है बाबा !"

ब्रज बाबू ने कहा, "कुशल बिल्कुल ही नहीं है।"

फिर सविता को लक्ष्य करके बोले, "तुम्हारे वे रुपये मैंने कोई एक साल पहले व्यवसाय से निकालकर बैंक में जमा कर दिए थे। सोचा था, मेरे अपने व्यापार में लगे रहने की अपेक्षा बैंक में रहने से भय की सम्भावना कम है। अब देखता हूँ, मैंने ठीक ही सोचा था। अब उन्हीं रुपयों का भरोसा है नई-बहू, अब उन्हें लिए बिना काम नहीं चलेगा।"

सविता ने अब फिर सिर उठाकर उनकी ओर देखा, बोलीं, "न लेने से क्या उनके नष्ट होने की सम्भावना है ?"

ब्रज बाबू ने कहा, "है क्यों नहीं नई-बहू—कुछ कहा तो नहीं जा सकता।"

सविता चुप हो रहीं।

ब्रज बाबू ने कहा, "क्या कहती हो नई-बहू, तुम तो चुप हो गईं ?"

सविता दो-तीन मिनट चुप रहकर बोलीं, "मैं और क्या कहूँ मँझले बाबू। रुपये तुमने ही दिए थे, तुम्हारे काम में यदि जाएँ तो अच्छा है। लेकिन मेरा तो और कुछ नहीं है।"

ब्रज बाबू जैसे चौंक उठे। जरा देर बाद धीरे से बोले, "ठीक कहती हो नई-बहू, यह दुःसाहस मुझसे नहीं हो सकता। तुम्हारे रुपये मैं तुमको लौटा दूंगा—कल एक बार आओगी ?"

"अगर आने को कहो तो आऊँगी।"

"और तुम्हारे गहने ?"

"तुम क्या नाराज होकर कह रहे हो मँझले बाबू ?"

ब्रज बाबू एकाएक उत्तर नहीं दे सके। उनकी आँखों की दृष्टि वेदना से मलिन हो उठी। बोले, "नई-बहू, जिसकी वस्तु है उसे लौटा देना चाहता हूँ। नाराज होकर ऐसी बात आज तुम भी सोच सकीं ?"

सविता सिर झुकाये चुप रहीं।

व्रज बाबू बोले, "मैं जरा भी नाराज नहीं हूँ नई-बहू, सरल मन से ही लौटा देना चाहता हूँ। तुम्हारी चीज तुम्हारे ही पास रहे—यह बोझ लादे फिरने की शक्ति अब मुझमें नहीं है।"

अब भी सविता वैसे ही चुप रहीं, कुछ उत्तर न दे सकीं।

साँझ हो रही थी।

व्रज बाबू उठते हुए बोले, "अच्छा, तो अभी चलता हूँ। कल इसी समय आना। मेरे इस अनुरोध की उपेक्षा न करना नई-बहू।"

उन्हें प्रणाम करके राखाल ने कहा, "मैं एक मित्र का ब्याह कराने कल रात की गाड़ी से दिल्ली जा रहा हूँ बाबा! लौटने में शायद आठ-दस दिन की देर होगी।"

व्रज बाबू ने कहा, "लौटने में देर होने दो, लेकिन मैं पूछता हूँ कि क्या तुम दूसरों के ब्याह कराते फिरोगे, आप नहीं करोगे?"

राखाल ने हँसकर कहा, "मुझे कोई अपनी लड़की दें, ऐसे अभागे इस संसार में कौन हैं बाबा?"

व्रज बाबू भी हँसे। बोले, "हैं राजू! जिन्होंने मुझे अपनी बेटी दी थी, वे आज भी संसार से गए नहीं। तुमको बेटी देने का दुर्भाग्य उनके दुर्भाग्य की अपेक्षा अधिक नहीं है। तुम्हें विश्वास न हो तो अपनी नई-माँ को आड़ में ले जाकर पूछ लो, वह मेरे कहे का समर्थन करेंगी। अच्छा, चलता हूँ नई-बहू, कल फिर भेंट होगी।"

सविता ने पास आकर पैरों की धूल माथे से लगाकर प्रणाम किया। व्रज बाबू स्पष्ट स्वर में शायद आशीर्वाद देते-देते ही घर के बाहर हो गए।

दूसरे दिन ठीक उसी समय व्रज बाबू आकर उपस्थित हुए। उनके हाथ में सील-मोहर किया हुआ एक टीन का छोटा बक्स था। सविता पहले ही आ गई थीं। व्रज बाबू ने वह बक्स उनके सामने टेबल पर रख दिया और कहा, "यह इतने दिन से बैंक में ही रखा था। इसके भीतर तुम्हारे सभी गहने मौजूद हैं और यह लो अपने बावन हजार रुपये का चैक। आज मैंने छुट्टी पाई नई-बहू; यह बोझ लादे फिरने की मेरी बारी समाप्त हुई।"

सविता ने कहा, "लेकिन तुमने जो कहा था कि ये सब गहने तुम्हारी रेणु पहनेगी ?"

ब्रज बाबू ने कहा, "गहने तो मेरे नहीं हैं नई-बहू, गहने तुम्हारे हैं। यदि वह दिन कभी आए तो तुम्हीं उसे पहना देना ।"

राखाल बार-बार घड़ी की ओर ताक रहा था।

ब्रज बाबू ने इसे लक्ष्य करके कहा, "जान पड़ता है तुम्हारे जाने का समय हो गया राजू ?"

राखाल ने शीश झुकाकर कहा, "उस घर से सारे सदस्यों को लेकर स्टेशन जाना होगा न !"

ब्रज बाबू ने कहा, "तो मैं अब जाऊँ। पर लौटो तब एक बार जरूर मुझसे मिलना राजू।" यह कहकर वह उठ खड़े हुए।

एकाएक जैसे उन्हें स्मरण हो आया। उन्होंने कहा, "आज तुम्हारी नई-माँ को अकेले नहीं जाना चाहिए। कोई पहुँचा…"

राखाल ने कहा, "अकेली नहीं हैं बाबा ! नई-माँ का दरबान उनकी मोटर लिए मोड़ पर खड़ा है।"

ब्रज बाबू ने कहा, "ओह—है ? अच्छा, अच्छा ! अच्छा, तो जाता हूँ नई-वहू।"

सविता ने कल की तरह प्रणाम किया। पैरों की धूल माथे से लगाई, फिर धीरे से कहा, "अब फिर कब दर्शन मिलेंगे मँझले बाबू ?"

ब्रज बाबू ने कहा, "जिस दिन कहला भेजोगी। कोई काम है नई-बहू ?"

"ना, काम तो कुछ नहीं है।"

ब्रज बाबू ने हँसकर कहा, "केवल यों ही देखना चाहती हो ?"

इस प्रश्न का उत्तर क्या दें ! सविता गर्दन झुकाये बैठी रहीं।

ब्रज बाबू ने कहा, "मैं कहता हूँ, इन सब बातों की जरूरत नहीं है नई-बहू। मेरे लिए अब तुम अपने मन में कोई सोच न रखो। जो भाग्य में लिखा था, हुआ—गोविन्दजी ने उसका एक प्रकार से विचार भी कर दिया है। आशीर्वाद करता हूँ, तुम लोग सुखी होओ। मुझ पर अविश्वास न करो नई-बहू, मैं सच ही कह रहा हूँ।"

सविता वैसे ही सिर झुकाए खड़ी रहीं।

राखाल को ध्यान आया कि अब और विलम्ब करना ठीक नहीं। बिना विलम्ब के गाड़ी बुलाकर उस पर ट्रंक आदि लादना होगा और यही कहते-कहते वह व्यस्त भाव से बाहर निकल गया।

सविता ने सिर उठाकर देखा, उनकी दोनों आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी।

ब्रज बाबू उनकी ओर जरा खिसककर खड़े हुए। बोले, "अपनी रेणु को क्या एक बार देखना चाहती हो नई-बहू?"

"ना मँझले बाबू, वह प्रार्थना मैं नहीं करती।"

"तो रोती क्यों हो?"

"जो माँगूंगी वह दोगे? बोलो।"

ब्रज बाबू इसका उत्तर नहीं दे सके, केवल सविता के मुँह की ओर ताकते रहे।

सविता ने कहा, "न जाने अभी और कितने दिन जीना है मँझले बाबू, मैं क्या लेकर जीऊँगी?"

ब्रज बाबू इस जिज्ञासा का भी उत्तर नहीं दे सके। सोचते रहे। इसी समय बाहर राखाल की आवाज सुनाई पड़ी।

सविता ने चटपट आँचल से आँखें पोंछ डालीं और दूसरे ही क्षण दरवाजा ठेलकर राखाल ने भीतर प्रवेश किया।

उसने कहा, "नई-माँ, आपका ड्राइवर पूछ रहा है कि अब चलने में कितनी देर है? चलिए, यह भारी बक्स आपकी गाड़ी में रख आऊँ।"

नई-माँ ने कहा, "राजू मुझे किसी-न-किसी प्रकार जल्दी से विदा कर देना चाहता है, तभी जैसे इसे चैन पड़ेगी। मानो इसके लिए एक बला हूँ।"

राखाल ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया, "माँ के मुख से यह शिकायत अच्छी नहीं लगती नई-माँ। लीजिए, आपके राजू का दिल्ली जाना अब न होगा। बचपन की तरह फिर एक बार मैंने माँ की गोद में आश्रय लिया। यहाँ से अब जाने न दूंगा माँ, लड़के के घर में आपको चाहे कितना ही दुःख क्यों न हो।"

सविता लज्जा से जैसे मर-मर-सी गईं।

राखाल ने भी यह बात कहने के साथ ही अपनी भूल समझ ली थी। ब्रज बाबू ने उधर लक्ष्य भी नहीं किया। बोले, "देर हो गई है नई-बहू! तुम्हारा गहनों का बक्स राजू गाड़ी तक पहुँचा आए। मैं तब तक उसका घर देखता रहूँगा।"

उन्होंने आप ही वह बक्स उठाकर राजू के हाथ में दे दिया।

सविता के प्रश्न का उत्तर मन-का-मन में रह गया। राखाल नई-माँ के पीछे-पीछे मौन-मौन चला जा रहा था।

छः

दस दिन बाद!

राखाल विवाह-कार्य सम्पन्न कराके दिल्ली से राजी-खुशी लौट आया। राखाल की कार्य-कुशलता से सभी लोग प्रसन्न हुए। दिल्ली में राखाल की योग्यता का प्रभाव चारों ओर फैल गया था। कन्या-पक्ष के जितने भी सम्बन्धी वहाँ थे, सब उसकी योग्यता और सज्जनता से प्रभावित हुए।

कुछ तो इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने अपनी कन्याओं की शादी के प्रस्ताव भी राखाल के सम्मुख कर दिए और उसे कई लड़कियाँ भी दिखलाईं। मध्यम वर्ग के साधारण घरानों की लड़कियों की न जाने किन-किन असुविधाओं के कारण अभी तक शादी नहीं हो पाई थी। राखाल ने भी यही उत्तर सबको दिया था कि वह कलकत्ते जाकर अपने बाबा और नई-माँ से राय लेकर उन लोगों को पत्र लिखेगा।

रमेश राखाल के काम को चार चाँद लगाने वाले थे। बिना पैसे व्यय किए जब उन्होंने दिल्ली, हस्तिनापुर, कुतुबमीनार, लालकिला इत्यादि की सैर कर ली—तब कुछ तो प्रतिदान देना ही चाहिए था। अपनी वाक्पटुता से उन्होंने राखाल के महान् व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव दिल्ली-निवासियों के हृदयों पर अंकित कर दिया। यदि कोई प्रश्न करता, "राखाल बाबू ने

अभी तक शादी क्यों नहीं की ?"

"उनकी इच्छा। हम जैसे साधारण व्यक्तियों से उनकी क्या बराबरी?" वह गम्भीरता से उत्तर देते।

तब कन्याओं के पिता संकोच से पूछते,"राखाल बाबू क्या करते हैं ?" वह तुरन्त मुस्कराकर उत्तर देते, "काम करने की उन्हें कोई खास आवश्यकता ही नहीं है," और वे सब इस वाक्य का अर्थ अपने-अपने दृष्टिकोण से लगाते थे।

कलकत्ते के बड़े-बड़े आदमियों की बातें राखाल बड़ी निर्भीकता से करता था। अनेक घर की लड़कियों के नाम उसे याद थे। नवीन बैरिस्टर और आई० सी० एसों० को वह आधे नाम से सम्बोधित करता था। उन नामों को सुनकर साधारण नौकरी-पेशे वाले बंगाली आश्चर्यचकित रह जाते थे।

राखाल विवाह-विरोध ऊपर से न करके मन से करता है। उसे विवाह से भय लगता है। वह अपनी आर्थिक अवस्था को जानता है। वह यह भी जानता है कि उस जैसे व्यक्ति के लिए जिसके कलकत्ते में अनेकों परिचित, मित्र और बन्धु हों, गृहस्थी चलाना साधारण काम नहीं। जिस वातावरण में आज वह ससम्मान रहता है वहीं पर उसे दूसरों की दृष्टि में हीन होकर जीवन व्यतीत करना होगा। फिर भी कभी-कभी उसे एकाकीपन खटकने लगता है। बसन्त के सुहाने समय में जब वह शहनाई की तान किसी शादी के अवसर पर सुनता था तो उसका हृदय व्याकुल हो उठता था। विवाहों के निमन्त्रण उसके हृदय में गुदगुदी पैदा कर देते थे। समाचार-पत्र में जब वह किसी स्त्री की आत्महत्या का समाचार पढ़ता था तो उस स्त्री का मुर्झाया हुआ मुख उसकी आँखों में साकार हो जाता था। उसका मन कहने लगता, बंगालियों में कन्याओं की कितनी अधिकता और वरों का कितना अभाव है ! इन साधारण व्यक्तियों के बीच केवल वही एक ऐसा व्यक्ति है जिस पर संसार की दृष्टि नहीं जाती। शायद उसे वरमाला पहनाने वाली नारी ने संसार में जन्म ही नहीं लिया। ऐसे विचार क्षणिक होते हैं। मोह-भंग होते ही वह अपनी वास्तविक स्थिति को समझकर मुस्करा देता है और एक आनन्द का अनुभव करता है। बच्चों को शिक्षा

देता और साहित्यिक गोष्ठियों में भाग लेता है। निमन्त्रण मिलने पर विवाहोत्सवों को अपनी उपस्थिति से सुशोभित करने में भी नहीं चूकता। कितने ही नव-दम्पतियों के हाथों बीतता जा रहा है। दिल्ली-यात्रा ने आज प्रथम बार राखाल के मन में एक परिवर्तन कर दिया। इस यात्रा से उसे ज्ञात हुआ कि दुनिया केवल कलकत्ता में ही समाप्त नहीं है, वाहर भी हैं और वहाँ भी सभ्य बंगाली रहते हैं। और ऐसे माता-पिताओं की भी कमी नहीं है जो सहर्ष उसे अपनी कन्या दे सकते हैं।

कलकत्ते की सम्पर्क में आने वाली लड़कियों की अपेक्षा दिल्ली की भी लड़की को पत्नी वनाने में उसे लज्जा आ सकती है। पर इस यात्रा के इस नवीन ज्ञान ने उसके अपने अन्तर में पर्याप्त बल दिया।

इस विचार ने कि वह कभी संसार का कोई दायित्व नहीं ले सकेगा, राखाल को दुर्बल बना दिया। आत्म-विश्वास को खोकर वह निर्बलता अनुभव करने लगता था। वह सोचता था कि स्त्री, बच्चे—इन सबसे कितनी आफतें हैं। मकान, भोजन, कपड़े, पढ़ाई-लिखाई, बीमारी और न जाने क्या-क्या झंझटें गृहस्थी की हैं। वह कैसे इन सब आवश्यकताओं को पूरा कर सकेगा?

शारदा ने सर्वप्रथम इस भावना को ठेस पहुँचाई। जिस दिन असीम समुद्र के बीच आश्चर्यहीन शारदा ने उसका सहारा लिया, उस दिन उसने अपना हाथ बढ़ाकर उसका समस्त भार अपने ऊपर ले लिया था। उसकी वात पर उसने विश्वास किया, घर लौट आई और मरना नहीं चाहा। इस यात्रा ने उस विचार को पूर्णतः समाप्त-सा ही कर दिया।

उसने मन में निश्चय कर लिया है कि न वह किसी प्रकार असमर्थ ही है और न दुर्बल ही। संसार के सब व्यक्तियों की भाँति वह भी अपने मन में सब-कुछ करने की सामर्थ्य रखता है। इस नयी विचारधारा से प्रफुल्लित होकर वह शारदा से मिलने गया। वहाँ ताला लगा हुआ था। सामने एक वच्चा खेल रहा था। उससे पता चला कि शारदा ऊपर है। रात को वहाँ दावत है। राखाल ने ऊपर पहुँचकर देखा कि एक उत्सव हो रहा था। बड़े ठाट-बाट से भोजन का प्रबन्ध हो रहा था।

रमण बाबू अकारण ही कुछ परेशान-से लगते थे और सवितादेवी

धोती लपेटे अपने कमरे में दावत की व्यवस्था कर रही थीं।

रमण बाबू राखाल को देखते ही कह उठे, "लो! राजू आ गया, नई-बहू!"

सविता वहाँ आ गईं। रमण बाबू आनन्द की साँस लेकर बोले, "लो भाई, सँभालो राजू, मेरी तो जान बची।"

सविता बोलीं, "आप कमरे में जाकर सो जाइए, हम सब कर लेंगे।"

शारदा मुँह छिपाकर मुस्कराई, राखाल से पूछा, "कब आए?"

"कल।"

"तब आपने कल ही दर्शन क्यों नहीं दिए?"

"समय नहीं मिला—लौटने पर ढेर सारा काम इकट्ठा हो जाता है!"

राखाल ने रमण बाबू को नमस्कार किया तथा सविता के पैर छुए और पूछा, "माँ! क्या मैं भी इस समारोह का कारण जान सकता हूँ?"

"ऐसे ही है बेटा!" सविता ने मुस्कराते हुए कहा।

"भला इस बात पर कौन विश्वास कर सकता है?" कहकर रमण बाबू राखाल की ओर मुख करके बोले, "नई-बहू ने आधे मूल्य पर एक बड़ी सम्पत्ति मोल ली है। यह उसी की दावत हो रही है। हमारे सिंगापुर वाले भागीदार यहाँ आए हैं—मि० शैलेन्द्र। क्या कभी सुना है नाम? आज संध्या को उनसे आपका यहीं पर परिचय होगा। करोड़पति हैं। और भी कई व्यक्तियों से परिचय होगा। गाने-बजाने की महफिल होगी। मालती का मुग्ध करने वाला संगीत होगा। वह कलकत्ते की सबसे अच्छी गाने वाली है। उसका संगीत तुम्हें मन्त्र-मुग्ध बना देगा।"

रमण बाबू को सविता ने चुप कराने की चेष्टा की पर वे बोले, "कहने क्यों नहीं देतीं? इससे छिपाने की क्या बात है?" फिर राखाल की ओर देख करके बोले, "भाई राजू! तुम्हारी नई-माँ भाग्य की बलवान हैं। जब गाँव में रहती थीं तो न जाने किस अनाड़ी को बहुत-सा रुपया उधार दे आई थीं। उसके चुकता होने की कोई भी आशा नहीं थी कि अचानक सब वसूल हो गया। भय के कारण वह स्वयं यहाँ आकर गिन गया। रुपया पूरा होने से दस हजार की कमी हुई तो मेरी खुशामद की गई, 'बाबूजी, इतनी कृपा आप करिए।' मैंने कहा, 'हुजूर के लिए मैं क्या नहीं कर सकता—तन;

मन, धन, सब-कुछ हुजूर का ही तो है।' " इतना कहकर वह व्यंग्य से इस प्रकार हँसे कि राखाल ने लज्जा से मुँह दूसरी ओर घुमा लिया।

रमण बाबू हँसते हुए चले गए।

सविता राखाल से बोलीं, "विलम्ब हो गया। नहाकर थोड़ा-सा नाश्ता कर लो राजू! संध्या को तुम्हें दौड़-धूप करनी है। कितने काम फैले पड़े हैं।"

"मैं काम से डरना नहीं जानता माँ! लेकिन मैं एक बार घर जरूर जाऊँगा।"

"कल सुवह चले जाना।"

"ना माँ!" नम्रता से राखाल बोला।

"तव फिर किस समय तक लौट आओगे?"

"आऊँगा तो अवश्य ही, लेकिन किस समय, यही नहीं बता सकता।"

"क्या तारक आजकल वाहर गया हुआ है?"

"हैडमास्टरी के लिए वह वर्दवान चला गया है, लेकिन यदि वह यहाँ होता तव भी शायद न आता।"

सविता राखाल का तात्पर्य समझ रही थीं। उसे प्रसन्न करने के लिए बोलीं, "उस पर क्रोध करने की आवश्यकता नहीं है राजू! यह उसका स्वभाव है।" माँ की टीका से राखाल प्रसन्न होने की अपेक्षा चिढ़कर बोला —"मैं क्रोध नहीं कर रहा हूँ माँ! मूर्ख पर क्रोध ही क्या किया जाय?" इतना कहकर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह चल दिया।

सीढ़ी से उतरते हुए मन में विचारा—यह रुपया अदा कर जाने वाला व्यक्ति कौन था? शायद रमण बाबू यह नहीं जानते। फिर भी राखाल उस उदार और धर्मात्मा व्यक्ति के प्रति इस प्रकार के व्यंग्यात्मक और अपशब्द कहने वाले व्यक्ति को मन से क्षमा नहीं कर सकता था। आश्चर्य की बात तो यह थी कि सविता ने यह सब सुनकर एक शब्द भी मुख से नहीं बोला —यानी उनके लिए कोई विशेष बात ही नहीं थी। यह भी सच था कि यह व्यंग्य सविता को ही सम्बोधित करके किया गया था। इसी सत्य ने उसके मन की वेदना को बहुत कुछ हल्का कर दिया और वह क्रोधित नहीं हुआ।

अन्त में बोला, "ठीक ही तो है। वह इसी योग्य है। मेरा इस प्रकार

जलना और क्रोध करना व्यर्थ ही है।"

वह ट्राम से बड़े बाजार में उतरा। सामने वाली गली से मुड़कर ब्रज बाबू के मकान के सामने जा पहुँचा। द्वार पर ताला बन्द था और लिखा था, 'मकान किराये के लिए खाली है'—राखाल की आँखों के नीचे अँधेरा छा गया। उसे लगा मानो वह भूल से किसी और मकान के सामने चला आया है।

कुछ देर सुन्न की भाँति इधर-उधर देखा और फिर आगे बढ़कर नुक्कड़ वाले दूकानदार के पास पहुँचा। पुराना दूकानदार था। गली के सभी घरों में उसके यहाँ से सौदा जाता था। पूछा, "क्यों! ब्रज बाबू के मकान पर यह कैसा नोटिस लगा हुआ है?"

"आप क्या इसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते राजू बाबू?" दूकानदार ने पूछा।

"नहीं लालाजी, मुझे तो कुछ भी पता नहीं। बाहर गया हुआ था, आज ही लौटा हूँ।"

"उन्होंने अपना अधिकार समाप्त करने के लिए यह मकान बेच डाला।"

"मकान बेच दिया! फिर वह लोग रहते कहाँ हैं?"

"बहूरानी तो बिटिया को लेकर अपने भाई के घर चली गईं और ब्रज बाबू रेणुका के साथ किराये के मकान में रहने लगे।"

"क्या तुम वह किराये वाला मकान जानते हो लालाजी?"

"अरे! जानता क्यों नहीं?" कहकर उसने हाथ के इशारे से बतलाया, "उधर जाकर उस गली में मुड़ जाना, मकान का पन्द्रह नम्बर है।"

सात

घर खोज ही लिया।

राखाल ने द्वार खटखटाया।

दासी ने आकर द्वार खोला। राखाल को देखा तो नेत्रों में आँसू भर गए।

राखाल ने पूछा, "क्यों, ब्रज बाबू कहाँ हैं ?"

"उधर खाना बना रहे हैं।" दासी ने उत्तर दिया।

"क्यों, क्या महाराज नहीं है ?"

"ना।"

"कोई नौकर भी नहीं रहा ?"

"केवल एक माधव है, वह भी दवा लेने गया है।"

"दवा किसके लिए ?"

"रेणुका को चार दिन से ज्वर आ रहा है।"

आँगन में काफी सील थी। घर का सामान अस्त-व्यस्त पड़ा था। सीढ़ी बिल्कुल ही टूटी हालत में थी। बरामदे के एक कोने में लोहे की अँगीठी के पास ब्रज बाबू बैठे पसीने में नहा रहे थे। खाना बन चुका था। आग पर साबूदाना रखा था।

ब्रज बाबू के हाथ कई स्थान से जल गए थे। भात के जलने की गन्ध घर-भर में फैली हुई थी। तरकारी भी कुछ कम पकी रह गई थी।

राखाल को देखते ही झिझक दूर करने के लिए ब्रज बाबू उठ खड़े हुए।

दासी की ओर देखकर बोले, "देख रहे हो राखाल इसकी करतूत ! अँगीठी में इतने कोयले भर दिए हैं कि आग बाहर निकली पड़ रही है। मैं क्या अनुमान कर सकता हूँ इसका ? भात जाने कैसा हो गया—शायद जल गया।"

"जल जाने दीजिए। बारह बज रहे हैं। मैं दूसरे चावल चढ़ाये देता हूँ। आप पूजा-पाठ कीजिए। और रेणुका कहाँ है ?" कहता हुआ वह पास के कमरे में चला गया। वहाँ रेणुका ज्वर में अचेत पड़ी थी।

राजू को देखकर उसके नयनों से पानी बह चला।

राखाल ने किसी प्रकार अपने को सँभालते हुए कहा, "रोने की क्या बात है पगली ! बुखार तो सबको आ जाता है। दो दिन में उतर जाएगा। फिर मैं तो अभी जीवित हूँ। क्यों चिन्ता करती हो ? उठो, मुँह-हाथ धोकर कपड़े बदल डालो।"

रेणुका ने सिर उठाया। राखाल ने दासी को पुकारकर साबूदाना लाने के लिए कहा।

दासी वहाँ आ गई तो राखाल ने कहा, "भात जल गया है, उससे काम नहीं चलेगा। तुम अपने लिए, मेरे लिए, माधव और बाबूजी—चार आदमियों के लिए चावल साफ करके धो लो। मैं नहाकर आता हूँ। कुछ शाक-भाजी है?"

"हाँ।" दासी ने कहा।

"तब उसे भी जल्दी से कतरकर तैयार कर दो। वह भी बन जाएगी।"

राखाल ने तार पर पड़ी हुई गीली धोती उतारी और नल की ओर यह कहता हुआ जल्दी से लपका, "बाबा, पूजा के लिए जल्दी कीजिए—और रेणुका, जब तक नहाकर आऊँ तुम साबूदाना खा लेना। माधव अगर आ जाए तो···।"

निराशा और सन्नाटे-भरे घर में एकदम प्रसन्नता और उल्लास का वातावरण छा गया। चहल-पहल दिखलाई देने लगी।

राखाल ने गुसलखाने में जाकर एकदम द्वार बन्द कर लिए और अध-गीले फर्श पर बैठ गया। उसका सिर उसके हाथों में था और आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। आज वह उसी प्रकार रो रहा था, जिस प्रकार बचपन में हैजे से अपने पिता की मौत के बाद रोया था। हृदय के उमड़ते भार को हल्का करने के लिए कुछ देर तक रोता ही रहा। फिर कुछ विचार कर एकदम शान्त हो गया और नहाने के बाद धोती बदलकर बाहर चला आया। जब वह बाहर आया तो हृदय हल्का और होंठों पर स्वाभाविक मुस्कराहट थी।

राखाल खाना अच्छा बना लेता था। अपने लिए उसे प्रतिदिन बनाना पड़ता था। देखते-ही-देखते खाना बनकर तैयार हो गया। साथ ही भगवान् की पूजा, भोग और आरती ने भी अधिक समय नहीं लिया। सबको खाना खिलाने और खाने में तीन बज चुके थे।

इसी बीच रेणुका भी उठकर बैठ गई थी। जब कहे बिना नहीं रहा गया तो बोली, "राजू दादा! तुमने तो हमको भी हरा दिया। स्त्रियाँ भी इतनी जल्दी भोजन नहीं बना सकतीं। किसी बड़ी भाग्यवाली का विवाह होगा तुमसे। लेकिन दादा! क्या तुम सचमुच विवाह करोगे ही नहीं?"

"विवाह कैसे हो सकता है रेणुका! इतनी बड़ी सौभाग्यवाली मिले

तभी तो !" राखाल हँसकर बोला।

"ना, यह नहीं होगा दादा ! मैं पिताजी से कहकर तुम्हारा विवाह अवश्य कराऊँगी।"

"अच्छा, करा देना, लेकिन पहले इस खटिया से तो सम्बन्ध तोड़ो। डॉक्टर साहब ने क्या कहा ? ज्वर न उतरने का क्या कारण बताया ?"

दासी बीच ही में बोल उठी, "आज डॉक्टर साहब नहीं आए। पहले ही दिन आए थे। वही दवा दी जा रही है।"

राखाल चुप। उसे शंकाकुल देखकर रेणुका ने कहा, "प्रतिदिन दवा का बदलना भी तो ठीक नहीं है दादा ! डॉक्टर को रोज बुलाकर फीस देने से क्या बीमारी चली जाएगी ? आप लोग देखिएगा, मैं इसी दवा से स्वस्थ हो जाऊँगी।"

राखाल को समझने में देर न लगी कि स्वाभिमानिनी पुत्री ऐसी कठिन परिस्थिति में भी अपने पिता के दस-पाँच रुपये अपने लिए व्यर्थ व्यय करना नहीं चाहती। फिर राखाल जाने के लिए खड़ा हो गया।

"तुम जा रहे हो, राजू दादा ?" रेणुका ने प्रश्न किया।

"हाँ रेणुका, अब मुझे जाना है। कल सुबह फिर आऊँगा।"

"भूलोगे तो नहीं ?"

"ना-ना, और हाँ, जब तक मैं न आऊँ बाबूजी को रसोई में मत जाने देना।"

रेणुका कुछ मुँह-सा बनाकर बोली, "दादा ! कल यदि मुझे ज्वर नहीं आया तो मैं खाना बनाऊँगी।"

"ना, बिल्कुल ना।" दासी की ओर मुँह करते हुए राखाल बोला, "तुम ध्यान रखना कि मेरे आने तक कोई रसोईघर में न घुस सके।" इतना कह-कर राखाल घर से बाहर हो गया।

डॉक्टर साहब का घर उसी गली में था। ऊपर घर था और नीचे दूकान। मार्ग में राखाल ने उनसे मिलकर पूछा, "क्यों डॉक्टर साहब, रेणुका को कैसा ज्वर है कि उतरता ही नहीं ?"

"ज्वर साधारण है लेकिन आज तक नहीं उतरा इसलिए दो-तीन दिन बाद ही निश्चय होगा कि किस प्रकार का ज्वर है।" ये इस घर के पुराने

डॉक्टर हैं। तत्पश्चात् और बातें छिड़ीं। अचानक व्रज बाबू पर पड़ने वाली विपत्ति पर डॉक्टर ने दुःख प्रकट किया। उन्हें आश्चर्य हुआ। फिर बोले, "अब तुम आ ही गए हो राखाल, अतः कोई चिन्ता की बात नहीं। मैं कल रेणुका को देखने जाऊंगा।"

"अवश्य ही जाइएगा डॉक्टर साहब, हमारे पास आपको बुला ले जाने वाला कोई आदमी नहीं है।"

"बुलाने की कोई आवश्यकता नहीं है राखाल, मैं स्वयं ही जाऊँगा।"

राखाल अपने घर आकर सो रहा। मन टूट गया है।

व्रज बाबू की दुर्दशा कितनी बड़ी है और सर्वनाश का परिणाम कैसा, सोच-विचार करने का अवकाश उसे नहीं मिला है। निर्जन कमरे में उसकी दोनों आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। इसका अन्त कहाँ है और दुःख के दिन में वह क्या कर सकता है, बहुत सोचने पर निश्चय न कर सका। किस तरह इतनी जल्दी ऐसी घटना हो गई, यह कल्पनातीत था। उस पर रेणुका बीमार पड़ी है। मुहल्ले में टाइफाइड ज्वर फैल रहा है, यह समाचार वह जानता था। डॉक्टर के कथन ने भी ऐसे सन्देह को उभारा है। उपदेश देने वाला कोई आदमी नहीं, सुश्रूषा करने वाला कोई नहीं है, चिकित्सा करने के लिए रुपया-पैसा भी शायद पास नहीं है। इस निरीह-निर्विरोधी मनुष्य के विषय में शुरू से अन्त तक सोचकर उसके मन में संसार में धर्मविषयक बुद्धि, भगवत-भक्ति, साधुता सभी पर मानो घृणा उत्पन्न हो गई।

वह सोच रहा था, दिल्ली से लौटने पर तरह-तरह के अपव्यय से मेरा अपना हाथ भी खाली है, डाकखाने में जो कुछ मामूली बचा है उस पर तो एक दिन भी निर्भर नहीं रहा जा सकता। फिर भी, यह रेणुका मेरे ही साथ रहकर तो सयानी हुई थी। किन्तु वह बात छोड़ो। उसी की चिकित्सा के लिए उसी के पास जाकर मैं किस प्रकार हाथ फैलाऊँगा! यदि उसके पास भी रुपये न रहे? वह जानता है जिसके यहाँ हूँ वे लोग अत्यन्त कंजूस हैं, गहरे मित्र भी अनेक हैं, लेकिन उनके पास आवेदन करना निष्फल है।

एकाएक नई-माँ सविता की याद आ गई। लेकिन दीपशिखा जलते ही बुझने लगी। वहाँ दो घड़ी खड़े होने की कल्पना ने भी उसे कुण्ठित कर दिया। कारण पूछने पर वह कहेगा ही क्या और कैसे? यह मार्ग नहीं है, कोई दूसरा

मार्ग भी उसकी दृष्टि में नहीं पड़ा। केवल कह देने से तो काम चलेगा नहीं, रास्ता तो उसे मिलना चाहिए। दासी ने आकर खाने के लिए कहा तो उसने मना करके कहा, "दूसरे स्थान से निमन्त्रण आया है। अक्सर ऐसा ही रहता है।"

दासी के जाने पर उसने भी द्वार पर ताला बन्द कर दिया। राखाल रईस आदमी है। वेशभूषा की साधारण गन्दगी भी उससे सही नहीं जाती, लेकिन आज वह बात उसे याद ही नहीं पड़ी। जिस दशा में था उसी दशा में बाहर निकल पड़ा।

जिस समय वह नई-माँ के घर पहुँचा उस समय सन्ध्या हो चुकी थी। सामने कुछ मोटरें खड़ी थीं, वृहत् अट्टालिका बहुसंख्यक विद्युत् दीपकों के प्रकाश से समुज्ज्वल हो रही थी, दुमंजिले के कमरे से वाद्ययन्त्र के थपथपाये जाने का स्वर उठ रहा था, गृह-स्वामिनी बहुत व्यस्त थीं, कहीं भाग्य-वान आमंत्रित व्यक्तियों के आदर-सत्कार में कोई त्रुटि न हो, राखाल को देखकर क्षण-भर ठिठककर उन्होंने पूछा, "इतनी देर के बाद शायद हम लोगों की याद आई बेटा।"

कई दिनों में नई-माँ को उसने जिस दशा में देखा था वे मानो वह नहीं हैं। अभिनव और बहुमूल्य वेशभूषा की सजावट ने उनकी दशा को मानो दस साल पीछे ठेल दिया है।

राखाल हत्बुद्धि-सा खड़ा रह गया, एकाएक कोई उत्तर न दे सका। उन्होंने उसी समय फिर कहा, "आज थोड़ा-सा काम कर देने के लिए कहा था इसलिए बिल्कुल रात होने के बाद आये राजू?"

राखाल ने नम्रता के साथ कहा, "काम पूरा करने में देर हो गई माँ, इसके अलावा मेरे न आ सकने से कुछ हानि तो नहीं हुई?"

"ना, हानि तो नहीं हुई, लेकिन उस समय कहकर जाने से ही ठीक होता।" उनके कण्ठ-स्वर में इस बार कुछ विरक्ति की आवाज मिली हुई थी।

राखाल बोला, "उस समय मैं स्वयं भी नहीं जानता था नई-माँ। उसके पश्चात् फिर समय नहीं मिला।"

किसी के पुकारने पर सविता चली गई। पाँच मिनट के बाद वापस

आने पर उन्होंने देखा कि राखाल पहले के समान खड़ा हुआ है। उन्होंने कहा, "खड़े क्यों हो राजू, कमरे में चलकर बैठो।"

किसी दशा में भी राखाल संकोच मिटा नहीं सकता, लेकिन ना कहने के बिना काम चलने वाला ही नहीं था। अन्त में धीरे-धीरे बोला, "एक आवश्यक काम से आया हूँ नई-माँ, मुझे आज कुछ रुपये देने होंगे।"

सविता ने अचरज में पड़कर और हिचककर कहा, "रुपया ? रुपया तो नहीं है राजू, जो कुछ था वह सब बाजार में खर्च हो गया। उसी समय तो तुम सुन गए थे।"

"कुछ भी नहीं है माँ ?"

"ना, कुछ भी नहीं है। गृहस्थी के खर्च से यदि मामूली कुछ बचा भी रहे तो उसे ढूँढ़कर देखना पड़ेगा। इसके लिए समय तो नहीं है।"

शारदा तरह-तरह के कामों में लगी थी। बात सुनकर उसने निकट आकर कहा, "मेरे पास दस रुपये हैं, ला दूं ?"

राखाल ने उसके मुख की तरफ कुछ देर ताककर कहा, "तुम दोगी ? अच्छा, लाओ।"

शारदा ने कहा, "मिनू की नानी के पास रुपया है, कोई चीज गिरवी रखने से उधार दे देती हैं।"

"उनके पास तुम मुझे ले जा सकती हो शारदा ?"

"ले क्यों न जा सकूँगी, वे तो बूढ़ी हैं। लेकिन मेरे पास तो कोई गहना नहीं है।"

"तो भी जाकर देखें ?"

"चलिए।"

उन दोनों के जाते समय सविता ने कहा, "इसी कारण बिना खाए नीचे से ही चले मत जाना राजू।"

राखाल लौटकर बोला, "आज बहुत ही असमय में खाना हुआ है नई-माँ ! भूख जरा भी नहीं है। आज मुझे क्षमा कर देना होगा।" यह कहकर वह शारदा के पीछे-पीछे नीचे उतर आया।

सविता ने फिर अनुरोध नहीं किया।

राखाल चला गया है। शारदा अपने घर में दो-एक बाकी काम पूरा

करके फिर ऊपर जाने की तैयारी कर रही है, सविता ने आकर प्रवेश किया। उसके बिछौने पर बैठकर बोलीं, "एक पान तो दे बिटिया।"

शारदा को यह सौभाग्य कभी नहीं मिला था। वह उपकृत हो गई। हाथ धोकर वह पान लगाने लगी कि उसी समय उन्होंने कहा, "राजू बिना खाए अप्रसन्न होकर चला गया।"

शारदा ने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "ना माँ, अप्रसन्न होकर तो नहीं गया।"

"अप्रसन्न होकर तो गया ही है। वह सवेरे से ही कुछ अप्रसन्न था, उस पर उसे रुपया न दे सकी, शायद तुमने दस रुपये उसको दिए हैं?"

"ना माँ, मुझसे उन्होंने नहीं लिये, मिनू की नानी से एक सौ रुपये लाकर दिए हैं।"

"ऐसे ही? खाली हाथ क्या उसने दे दिया?"

शारदा ने कहा, "ना, ऐसे ही तो नहीं। उन्होंने अपने हाथ की सोने की घड़ी खोलकर मुझे देकर कहा, 'इसका मूल्य है तीन सौ रुपया, वे जो दें, ले आओ।' उनके पास चायबागान के कुछ कागज हैं, उन्हें ही वेचकर इसी महीने में वापस कर देने को कहा है।"

सविता ने पूछा, "एकाएक उसको रुपये की आवश्यकता क्यों पड़ गई?"

शारदा ने कहा, "कोई एक लड़की बहुत बीमार है, उसी की दवाई के लिए।"

"कौन लड़की है कि उसके लिए रातोंरात घड़ी गिरवी रखने की आवश्यकता पड़ गई?"

"इसकी जानकारी तो मुझे नहीं है माँ, लेकिन जान पड़ता है कि वह बहुत सख्त बीमार है। रुपये के अभाव में पीछे कहीं वह मर न जाय यही उनको भय है। सुनती हूँ कि लड़की के बाप ने ही बचपन में उनका लालन-पालन करके बड़ा किया है।"

सविता ने अचरज में पड़कर कहा, "बचपन में लालन-पालन किया था? वह उसकी मनगढ़न्त कथा है। राजू को किसने पाला-पोसा है, यह मैं जानती हूँ। उनकी लड़की की चिकित्सा में किसी दूसरे को घड़ी रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।"

शारदा ने उनके मुँह की ओर देखकर कहा, "मनगढ़न्त कहानी तो नहीं मालूम होती माँ।" यह कहते हुए उसके नेत्रों में आँसू भर आए। उसने फिर कहा, "उसके पास भी धन बहुत था लेकिन एकाएक व्यवसाय नष्ट हो जाने पर कर्ज के कारण घर-द्वार सब बेच देने पड़े, फिर दिल्ली जाते समय भी ऐसी दशा देखकर नहीं गए थे। आज जाकर उन्होंने देखा कि बीमार पड़ी हुई लड़की की देखभाल करने वाला कोई नहीं है। बूढ़ा बाप आप ही खाना पकाने बैठा है, लेकिन जानता कुछ भी नहीं है, हाथ जल गया है, भात जल गया है, तरकारी जल जाने से महक निकल रही है, राखाल बाबू को दुबारा फिर पकाना पड़ा। तभी सबका खाना हुआ। इसलिए यहाँ आने में उनको देर लगी। मुझसे कहा था कि इस संकट में उन लोगों की मदद करो। लड़की की माँ तो है नहीं, उसकी जरा देखभाल करो। मैंने हाँ भर-कर कहा है कि आप जो आज्ञा देंगे वही मैं करूँगी।"

शारदा ने पान दिया। वह उनके हाथ में ही पड़ा रह गया।

उन्होंने पूछा, "क्या राजू ने कहा है कि एकाएक व्यापार नष्ट हो जाने से कर्ज के कारण उनका घर तक बिक गया है? दिल्ली जाने के पहले ऐसी दशा देखकर नहीं गया था?"

"हाँ, ऐसा ही उन्होंने कहा है।"

"असम्भव है।"

शारदा चुप रही।

सविता ने फिर पूछा, "राजू ने कहा है कि लड़की की माँ नहीं है, शायद मर गई है?"

शारदा ने कहा, "माँ जब नहीं है तब तो वह अवश्य ही मर गई है। दूसरी बात क्या हो सकती है माँ?"

सविता उठ गईं। पाँच-छः मिनट के बाद शारदा दीपक बुझाकर कमरा बन्द कर रही थी, तभी वे लौट आईं। बदन पर पहले वाला कपड़ा नहीं था, शरीर में वे सब जेवर नहीं थे, मुँह व्याकुलता से मलीन था। उन्होंने कहा—"मेरे साथ तुमको एक बार अभी चलना होगा।"

"कहाँ माँ?"

"राजू के घर पर।"

"इतनी रात को ? मैं निश्चित रूप से कह रही हूँ माँ, उन्होंने थोड़ा-सा दुःख अनुभव तो किया है, लेकिन अप्रसन्न होकर नहीं गए हैं, इसके अलावा यहाँ घर पर भी तो काम है, कितने लोग आए हैं, सभी मुझे ढूंढ़ने लगेंगे माँ।"

"कोई जान न पावेगा शारदा, हम लोग जायेंगे और लौट आएँगे।"

शारदा ने संदिग्ध स्वर में कहा, "यह तो अच्छा नहीं होगा माँ। हो सकता है कोई गड़बड़ी होने लगे। वल्कि कल दोपहर का खाना-पीना हो चुकने पर कोई जान भी न पाएगा।"

थोड़ी देर सविता उसके मुँह की ओर देखकर बोलीं, "आज रात बीतेगी, कल सुबह बीत जाएगी, दोपहर को खाना-पीना हो चुकने पर हम लोग जाएँगे ? तब तक तो मैं पागल हो जाऊँगी !"

शारदा इस बेचैनी का कारण समझ नहीं सकी, लेकिन उसने फिर कोई आपत्ति भी नहीं की—चुप रही।

जिस फाटक से किरायेदारों का आना-जाना होता है, दोनों वहाँ जा पहुँचीं। दो मिनट के बाद राह में चलने वाली टैक्सी करके उस पर सवार हो गईं। प्रकाश में जगमगाता हुआ कमरा उस समय संगीत, हास्य और आनन्द-कलरव से मुखरित हो उठा था। एक रूमाल में वँधा हुआ बण्डल शारदा के हाथ में देकर सविता ने कहा, "आँचल में बाँध लो बेटी, शायद राजू मेरे हाथ से नहीं लेगा, उसको तुम दे देना।"

वे दोनों पैदल चलकर दस मिनट पश्चात् राखाल के घर के सामने पहुँच गईं। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि बाहर से द्वार बन्द है, भीतर कोई नहीं है। दोनों ही चुपचाप आकर गाड़ी पर बैठ गईं और लगभग पाँच-छः मिनट और बीतने पर बहू बाजार के एक बहुत बड़े मकान के सामने उनकी गाड़ी खड़ी हो गई। उतरना नहीं पड़ा, दिखाई पड़ा कि उस मकान के भी दरवाजे पर ताला लटका है।

रास्ते का प्रकाश ऊपर ही बन्द खिड़की पर जा पड़ा है। वहाँ बड़े-बड़े अक्षरों में नोटिस लगा हुआ है—मकान किराये के लिए खाली है।

बड़ी-से-बड़ी विपत्ति में अपने-आपको सँभाल लेने की शक्ति सविता में असाधारण है। उनके मुँह से एक लम्बी साँस तक भी नहीं निकली। घर

लौट चलने की आज्ञा देकर गाड़ी के कोने पर माथा रखकर वे पाषाण मूर्ति की तरह मौन हो बैठी रहीं।

शारदा के लिए वास्तविक बात क्या है, इसका अनुमान करना कठिन था। वह इतना तो समझ ही गई थी कि राखाल असत्य कहकर नहीं आया है और सचमुच ही कोई भयंकर घटना हो गई है।

उसने रास्ते में सविता के शिथिल हाथ को अपने हाथ में लेकर पूछा, "यह किसका घर है, माँ? यही घर बेच दिया है?"

"हाँ।"

"इनकी लड़की की बीमारी की बात उन्होंने कही थी?"

शारदा ने फिर धीरे-धीरे उत्तर न पाकर कहा, "वे लोग कहाँ हैं, इसका पता लगाना तो आवश्यक है।"

"कहाँ, किसके यहाँ पता लगाऊँ शारदा?"

"राखाल बाबू मुझे कल ले जाने के लिए अवश्य ही आएँगे।'

"मेरे घर पर यदि वह फिर पैर न रखना चाहे तो?"

शारदा सोचने लगी कि राखाल ने रुपया माँगा, वे दे न सकीं, सिर्फ इतनी ही बात को लेकर नई-माँ की इतनी अधिक व्यग्रता है। आत्मग्लानि से उसके मन में अत्यन्त घबराहट-सी होने लगी। उसको सन्देह हुआ, वास्तव में यह बात इतनी ही नहीं है। कोई गूढ़ रहस्य छुपा है इसमें। सविता रमण बाबू की स्त्री नहीं है, इस बात की जानकारी न रहने का ऊपरी दिखावा रहने पर भी घर के सभी लोग मन-ही-मन जानते थे। वे लोग ऐसा बाहरी दिखावा रखते थे, भय से नहीं श्रद्धा से। सभी जानते थे कि वह किसी बड़े घर की बहू-बेटी हैं, आचरण में बड़ी हैं, दया, दान और सौजन्य में बड़ी हैं, इसीलिए उनका यह दुर्भाग्य किसी के लिए आनन्द की वस्तु नहीं रहा। परिताप और गम्भीर लज्जा की बात थी। बहुत दिनों से एक ही संग रहते-रहते सभी उनको इतना अधिक प्यार करते थे।

जब गली के नुक्कड़ से गाड़ी घूम रही थी कि उसी समय दूकान के तेज प्रकाश की रेखा क्षण-भर के लिए सविता के चेहरे पर आ पड़ी।

शारदा ने देखा मानो उनमें प्राण ही नहीं हैं। हाथ का तला अत्यन्त

शीतल मालूम हुआ। उसने भयभीत होकर एक बार झकझोरकर पुकारा—"माँ !"

"क्यों बेटी ?"

काफी देर तक फिर मौन। अँधेरे में ही शारदा को अनुभव हुआ कि उनकी आँखों से आँसू बह रहे हैं। उसने साहस करके हाथ बढ़ाकर देखा, ठीक ऐसी ही बात है। यत्नपूर्वक आँचल से आँसू पोंछकर उसने कहा, "माँ, मैं आपकी बेटी हूँ। मेरा अपना कहलाने योग्य इस संसार में कोई नहीं है। मुझे आप जो आदेश देंगी मैं वही करूँगी।"

वे बातें मामूली थीं।

सविता ने उत्तर में कुछ भी नहीं कहा, केवल हाथ बढ़ाकर उन्होंने उसे अपनी गोद में खींच लिया। आँसू की भाप के रुँधे हुए आवेग से उनका समस्त शरीर कई बार काँप उठा। उसके बाद बड़ी-बड़ी आँसू की बूंदें शारदा के माथे पर एक-एक करके झरने लगीं।

जिस समय दोनों घर वापस पहुँचीं उस समय भी मालतीमाला का गाना हो रहा था। उन लोगों की थोड़े समय की अनुपस्थिति का किसी ने विचार नहीं किया। सविता नीचे स्नान करके ऊपर जा रही थीं कि दासी ने अचरज के साथ पूछा, "माँ, अभी नहाकर आ रही हो ! शायद सिर में चक्कर आ रहा था ?"

"हाँ।"

"इस समय धोती बदलकर लेट रहो माँ, सारा दिन परिश्रम करना पड़ता है।"

शारदा ने कहा, "इस ओर मैं हूँ माँ, कोई चिन्ता मत करना। आवश्यकता पड़ने पर आपको बुला लूँगी।"

उस रात किसी प्रकार खाना-पीना समाप्त हुआ।

एक-एक करके सब लोगों ने विदाई ले ली।

खाट के सिरहाने बैठकर शारदा धीरे-धीरे सविता के सिर पर और माथे पर हाथ सहला रही थी।

रमण बाबू ने क्रोध से प्रवेश करके कठोर स्वर में कहा, "अच्छा खिलवाड़ कर दिया तुमने। घर में कोई काम होता है तो तुमको भी कोई

बहाना करने की सूझ जाती है। यह तुम्हारी आदत है। सब चले गए, अब नहा लो। बहाना छोड़कर अब उठ बैठो। एक अच्छी साड़ी पहन लो, विमल बाबू भेंट करने के लिए आ रहे हैं।"

ऐसी उक्ति कोई नई भी नहीं थी। वस्तुतः सविता ऐसी किसी बात की आशंका कर रही थीं। उन्होंने थके स्वर से कहा, "किस मतलब से भेंट करेंगे?"

"मतलब क्या? क्यों, क्या वे भिखारी हैं कि खाना नहीं मिलता? घर पर निमन्त्रण है, तिस पर घर की स्वामिनी का ही पता नहीं। ठीक बात तो है।"

सविता ने कहा, "निमन्त्रण होते ही क्या घर की स्वामिनी से मिलाप करने की रीति है?"

रमण बाबू ने व्यंग्य करके कहा, "रीति है क्या? रीति नहीं है यह मैं जानता हूँ, स्त्री रहने से कोई वार्तालाप या जान-पहचान करना नहीं चाहता, लेकिन वे सब जानते हैं।"

शारदा के सामने सविता शर्म के मारे सहम गईं।

शारदा ने स्वयं भी वहाँ से भाग जाने की चेष्टा की, लेकिन उठ नहीं सकी। यह उत्तेजना में सिर पर आसमान न उठा लें, यह भय सविता को सबसे अधिक था। इसीलिए उन्होंने नम्रभाव से ही कहा, "उनसे कह दो कि आज मिलन नहीं हो सकता।"

लेकिन हुआ उलटा।

इस कोमल स्वर की अस्वीकृति से रमण बाबू उत्तेजित होकर चिल्ला उठे, "भेंट अवश्य होगी। वह करोड़पति आदमी हैं, यह क्या तुम नहीं जानती हो? साल में मेरे कितने रुपये का माल लेते हैं इसकी सूचना रखती हो? मैं कहता हूँ…।"

तभी दरवाजे के बाहर जूते की आवाज सुनाई पड़ी और नौकर ने सामने आकर हाथ से संकेत कर दिया।

सविता माथे के कपड़े को ललाट तक खींचकर उठ बैठीं।

विमल ने कमरे में प्रवेश करके नमस्कार करके स्वयं ही कुर्सी खींचकर कहा, "सुनने में आया है कि आप अचानक बहुत बीमार पड़ गई हैं,

लेकिन कल ही शायद मुझे कानपुर जाना पड़ेगा, शायद फिर लौट न सकूँगा, उधर से ही बम्बई होते हुए सीधे अपने कार्यस्थल के लिए रवाना हो जाना पड़ेगा। सोचा कि थोड़ी देर के लिए एक बार भेंट कर लूँ। आपके आतिथ्य में आज मुझे बड़ा आनन्द मिला है।"

सविता ने धीरे-धीरे कहा, "यह तो मेरा सौभाग्य है।"

उस व्यक्ति की आयु चालीस वर्ष की रही होगी। बालों का पकना शुरू हो गया है, सावधान रहने के कारण शरीर स्वस्थ और सौन्दर्य से परिपूर्ण है।

उन्होंने कहा, "मुझे खबर मिली कि रमण बाबू आजकल प्रायः बीमार हो जाया करते हैं और आपकी भी तबीयत ठीक नहीं रहती। यह तो मैं अपनी आँखों से ही देख रहा हूँ। आपका जो पुराना फोटो है उसके साथ मेल ढूँढ़ना कठिन हो रहा है।"

सविता सुनकर मन-ही-मन लज्जित हो गईं। बोलीं, "मेरा फोटो आपने देखा है?"

"जरूर देखा है। आप लोगों का एक साथ लिया फोटो रमण बाबू ने मेरे पास भेजा था। उसी समय सोच रहा था कि फोटो जिनका है उनको एक बार आँखों से देखूंगा। वह साध आज मिट गई। चलिए न एक बार हम लोगों के यहाँ सिंगापुर। कुछ दिनों की समुद्र-यात्रा भी हो जाएगी। क्रूस स्ट्रीट में मेरा एक छोटा-सा घर है। उसकी ऊपरी मंजिल पर दिन-रात समुद्र की हवा बहती रहती है, सुबह और शाम सूर्योदय और सूर्यास्त दिखाई पड़ते हैं। रमण बाबू जाने को राजी हो गए हैं, केवल आपकी स्वीकृति पाकर यदि आपको ले जा सकूँ तो समझूंगा कि इस बार मेरा देश आना सफल हुआ।"

रमण बाबू खुशी के साथ बोल उठे, "आपको तो मैं वचन दे चुका हूँ विमल बाबू, अगले हफ्ते में ही मैं रवाना हो सकूँगा। समुद्र की जलवायु की मुझे विशेष आवश्यकता है। शरीर का स्वास्थ्य—साहब, सबसे पहले वही आवश्यक है।"

विमल बाबू ने कहा, "ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो जाने से तो हम लोग एक ही जहाज में यात्रा कर सकेंगे।" सविता को लक्ष्य करके मुस्कराते

हुए बोले, "अनुमति मिल जाए तो मैं प्रबन्ध करने लगूँ और अपने कार्यालय में भी एक तार भेज दूँ। घर पर कहीं भी किसी प्रकार की कोई त्रुटि न रहे। बोलिए न?"

सविता ने सिर हिलाकर मृदु स्वर से कहा, "ना, इस समय कहीं जाने की सुविधा न होगी।"

रमण बाबू फिर एक बार गरम हो उठे, "क्यों सुविधा न होगी, सुनूँ तो? लिखना-पढ़ना कल-परसों तक पूरा हो जाएगा। दरबान, नौकर घर में रह जाएँगे, किरायेदार रहेंगे, फिर जाने में अड़चन क्या है? ना, यह नहीं होगा विमल बाबू, मैं साथ लेकर ही जाऊँगा। ना कर देने से ही क्या हो जाएगा? मेरी तबीयत ठीक नहीं है—मेरी देखभाल कौन करेगा? आप प्रसन्नता से तार भेज दीजिएगा।"

विमल बाबू ने फिर सविता से पूछा—"बोलिए न, तार दे दूँ?"

जब वह उत्तर देने लगीं तो दोनों की आँखें टकरा गईं।

सविता ने लज्जा में पड़कर उसी क्षण अपनी दृष्टि नीचे करके कहा—"ना, मेरा जाना न हो सकेगा।"

रमण बाबू बहुत बिगड़कर बोले, "ना क्यों? मैं कहता हूँ कि तुमको चलना ही पड़ेगा। मैं साथ लेकर ही जाऊँगा।"

विमल बाबू का चेहरा आरक्त हो उठा, बोले—"रमण बाबू, किस प्रकार ले जाइएगा, बाँधकर?"

"हाँ, आवश्यकता पड़ी तो वही करना होगा।"

"तो उस दशा में और किसी स्थान पर ले जाइए, मैं इस अन्याय का बोझ न ले सकूँगा।" उन्होंने कहा—"अच्छा, तो अब मैं उठता हूँ, आप आराम कीजिए। अस्वस्थ शरीर पर शायद मैंने अत्याचार किया—तो भी, जाने के पहले मेरा अनुरोध ही रहा—मैं हर महीने आपके पास जवाबी तार भेजूंगा—इसी प्रार्थना को बताकर—देखूंगा कितनी बार ना कहकर उसका उत्तर दे सकेंगी।"

जरा हँसकर फिर बोले, "नमस्कार रमण बाबू, अब मैं जा रहा हूँ।" वे बाहर चले गए।

उनके पीछे-ही-पीछे रमण बाबू भी नीचे उतर आए। रमण बाबू का

मित्र और अशिक्षित व्यवसायी समझकर इस व्यक्ति के विषय में जैसी धारणा सविता के मन में हुई थी, चले जाने पर उन्हें ध्यान आया कि शायद यह धारणा सही नहीं है।

आठ

"माँ, कुछ खाइएगा नहीं ?" शारदा ने कहा।

"ना।"

"एक बीड़ा पान व एक गिलास पानी लाने के लिए कह दूं ?"

"ना, आवश्यकता नहीं है।"

"बत्ती बुझाकर दरवाजा बन्द कर दूं ?"

"रात बहुत होती जा रही है। शारदा, ऐसा ही करो।"

तो भी, उसे देर होती जा रही थी। रमण बाबू वापस आकर खड़े हो गए। लम्बी साँस लेकर बोले, "जाने दो, जान बच गई। आज के लिए किसी प्रकार मानरक्षा हुई। भले आदमी अच्छे स्वभाव के हैं, इतने बड़े आदमी होने पर भी दंभ ना के बराबर है। तुम्हारे लिए तो बहुत चिन्ता है। एक सौ बार अनुरोध कर गये हैं, कल सवेरे ही समाचार भेज देना। कौन जाने हो सकता है कि स्वयं ही एक बड़े डॉक्टर को लेकर सवेरे हाजिर हो जाएँ तो कुछ भी कहा नहीं जा सकता—उनको तो हम लोगों के समान रुपये का मोह नहीं है—दस-बीस हजार रहें तो क्या और चले जाएँ तो क्या ? रथमर कम्पनी के डायरेक्टर ही कहो या शेयर होल्डर ही कहो जो कुछ करता है वही मिस्टर घोषाल। मैंने तो तुमको बताया कि यह आदमी करोड़ रुपये का मालिक है। करोड़ रुपया ! जर्मनी और हॉलैंड के साथ बहुत बड़ा व्यवसाय है—साथ में दो-चार बार यों ही यूरोप घूम आते हैं। जनरल मैनेजर शाप साहब हैं, उनको ही प्रायः तीन हजार रुपये मासिक मिलता है। बड़े आदमी हैं। जावा की चीनी के चालान में ही पिछले साल..."

रोमांचकारी फायदे का आँकड़ा फिर बताया न जा सका—बाधा पड़ गई।

सविता ने पूछा, "तुम फिर लौट आए—मकान नहीं गए ?"

किस प्रसंग में कौन बला आ गई !

उसके आनन्द में प्रश्न से वृद्धि नहीं हुई और वे यह समझ गए कि बहुत बड़े आदमी का विवरण सुनने में सविता ने बिन्दुमात्र भी ध्यान नहीं दिया। जरा ठिठककर बोले, "मकान ? जरा, आज नहीं जाऊँगा।"

"क्यों ?"

"ना···आज···।"

सविता ने कुछ देर उनकी ओर देखकर कहा, "शराब की गन्ध निकल रही है—तुम शराब पीकर आए हो ?"

"शराब ? मैं, केवल एक बूंद—समझती हो न···!"

"कहाँ पी ? इस घर में ?"

"घर में नहीं तो क्या शराब की दूकान पर खड़े होकर ही पी आया हूँ ?"

"शराब लाने को किसने कहा ?"

"किसने कहा ? ऐसी बात भी मैंने कभी नहीं सुनी। दस-पाँच भले आदमियों को बुलाना पड़ता है तो थोड़ा-सा लाकर रखे बिना क्या काम चलता है। इसीलिए···।"

"सभी आदमियों ने पी है ?"

"बढ़िया चीज पेश करने से कौन साला नहीं पिएगा, तुमने तो चौंका दिया ?"

"विमल बाबू ने पी ?"

जरा इधर-उधर करके रमण बाबू ने कहा, "ना, आज वह एक चाल खेल गया। नहीं तो उसकी कीर्ति-कथा सुनना मेरे लिए शेष नहीं है, सब मालूम है।"

कुछ देर चुप रहकर सविता ने कहा, "अच्छा, अब तुम जाओ। रात हो गई। उस कमरे में जाकर पड़ रहो।"

कहने का ढंग केवल कर्कश ही नहीं रूढ़ भी था। वह शारदा के कानों को भी अपमानकर मालूम पड़ा।

आज संध्या के बाद से ही सविता के नीरस स्वर में छिपा हुआ रूखापन

रमण बाबू को खटक रहा था। वे एकाएक बारूद के गोले के समान फूट पड़े। बोले, "आज तुम्हें हुआ क्या है, बताओ तो? दिमाग बहुत गरम देख रहा हूँ। इतना बढ़ना अच्छा नहीं है, नई-बहू!"

शारदा डरी कि शायद अब लज्जाजनक झगड़ा शुरू हो जाएगा। लेकिन सविता चुपचाप आँखें मूंदे वैसे ही लेटी रहीं, एक शब्द भी उत्तर में नहीं कहा।

रमण बाबू कहते गए, "वह जो मैंने कहा कि तुम मेरी स्त्री नहीं हो, इसी से तुम्हारे बदन में आग लग गई है। लेकिन यह कौन नहीं जानता? शारदा नहीं जानती या इस बाड़ी के और लोग? एक झूठी बात कितने दिन दबी रहेगी? इससे मैंने तुम्हारा क्या अपमान किया, बताओ?"

सविता हठात् बैठ गईं। उनकी आँखों की दृष्टि बर्छे की नोक के समान तीक्ष्ण और कठोर हो गई। बोलीं, "तुम्हें छोड़कर इस बात को कोई भी मर्द जबान पर लाने में लज्जित होता, किन्तु तुमसे कहना वृथा है। तुम्हारी बात से मेरा अपमान हुआ है, यह मैंने एक बार भी नहीं कहा।"

शारदा भय से घबरा उठी। बोली, "क्या कर रही हो माँ, ठहरो।"

रमण बाबू ने कहा, "यह सच है कि मुँह से कुछ नहीं कहा, किन्तु मन में तो यही सोचती हो!"

सविता ने उत्तर दिया, "ना। मुँह से भी नहीं कहा और मन में भी नहीं सोचा। तुम्हारी स्त्री हूँ, इस परिचय से मेरी मर्यादा नहीं बढ़ती बाबू। उससे केवल नयनों की शर्म बचती है, नहीं तो सचमुच की लज्जा से मेरा हृदय जलकर राख हो उठता है।"

"क्यों? किसलिए?"

"इससे क्या लाभ होगा? तुम क्या समझोगे कि मैं जिनकी स्त्री हूँ, उनके पैरों की धूल के समान भी तुम नहीं हो!"

शारदा फिर भय से व्याकुल हो उठी, "इतनी रात को आप लोग यह क्या करते हैं? दुहाई है माँ, चुप करिए।"

किन्तु किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। रमण बाबू ने चिल्लाकर कहा, "सच? सच कहती हो?"

सविता ने कहा, "सच है कि नहीं, यह तुम स्वयं नहीं जानते? सब

भूल गए ? उस दिन उनके सिवा संसार में कोई था जो हम लोगों की रक्षा कर सकता ? केवल हमारे हाड़-मांस को ही नहीं बचाया—मान-इज्जत की भी रक्षा की। मनुष्य स्वयं कितना बड़ा होने पर इतनी बड़ी भिक्षा दे सकता है, तुम सोच सकते हो ? मैं उनकी स्त्री हूँ। यह क्षति मैंने सह ली, इतनी-सी क्षति न सह सकूँगी ?"

रमण बाबू को इसका कोई उत्तर न सूझा। उनके मुँह में जो आया वही कह बैठे, "तो फिर तुम बुरा क्यों मानती हो ?"

सविता ने कहा, "तुमने यह केवल आज ही नहीं कहा, अक्सर कहा करते हो। बात कड़वी है, इसी से सुनने पर एकाएक कानों को खटकती है, किन्तु हृदय उसी पल स्वस्ति की साँस लेकर कह उटता है कि मेरे लिए यही अच्छा है कि यह आदमी मेरा कोई नहीं है, इसके साथ मेरा कोई सचमुच का सम्बन्ध नहीं है।"

सविता के मुँह की ओर शारदा अवाक् होकर ताकती रही। किन्तु अशिक्षित रमण बाबू के लिए सविता के इस कथन का गम्भीर अर्थ समझना कठिन था। उन्होंने केवल इतना ही समझा कि यह कथन अत्यन्त रूढ़ और अपमानजनक है। तुरन्त प्रश्न किया, 'तो फिर उनके पास न जाकर मेरे ही पास किसलिए पड़ी रहती हो ?"

सविता इसका उत्तर देने जा रही थीं, किन्तु शारदा ने उनके मुँह पर हाथ रखकर कहा, "गुस्से में आप भूल रही हैं कि किसके साथ झगड़ा कर रही हैं।"

सविता ने उसका हाथ हटाकर कहा, "ना शारदा, अब मैं झगड़ा नहीं करूँगी। उनके मुँह में जो आए वह कहें, मैं चुप रहूँगी।"

रमण बाबू ने कहा, "अच्छा, कल मैं इसकी समुचित व्यवस्था करूँगा।" इतना कहकर रमण बाबू कमरे से निकल आए और इसके दो-तीन मिनट बाद ही सदर रास्ते में उनकी मोटर के शब्द से मालूम पड़ा कि वह यह घर छोड़कर चले गए।

शारदा ने डरकर पूछा, "समुचित व्यवस्था क्या करेंगे माँ ?"

"मैं नहीं जानती शारदा। यह बात मैं अनेक बार सुन चुकी हूँ, लेकिन इसका अर्थ आज भी नहीं समझ पाई।"

"व्यर्थ ही यह कैसा अनर्थ छिड़ गया, बताइए तो ?"

सविता मौन।

शारदा स्वयं भी क्षण-भर चुप रहने के पश्चात् वोली, "अब जाती हूँ माँ।"

"जा वेटी, जा।"

नौ

प्रभात !

शारदा का दरवाजा किसी ने खटखटाया।

उसने उठकर दरवाजा खोला।

सविता ने प्रवेश करके कहा, "राजू के आते ही मुझे सूचना देना भूलना नहीं शारदा।"

उनकी ओर देखकर शारदा शंकित होकर वोली, "ना माँ, भूलूंगी क्यों, आते ही सूचित करूँगी।"

सविता ने कहा, "दरवान ने सूचना दी है कि रात को राजू डेरे पर नहीं लौटा। किन्तु वह चाहे जहाँ हो, आज तुमको ले जाने के लिए अवश्य ही आवेगा।"

"हाँ माँ।"

"आज ही तो आने को कहा था न ?"

"ना, यह तो नहीं कहा, केवल उस लड़की की वीमारी में सहायता करने को कहा था।"

"तुमने स्वीकार किया था ?"

"हाँ माँ !"

"कोई आपत्ति तो नहीं की थी वेटी ?"

"ना माँ, कोई आपत्ति नहीं की।"

सविता ने कहा, "तो अब मैं जाऊँ, तुम घर का कामकाज कर डालो। उसके आते ही मुझे मालूम हो जाना चाहिए शारदा।" वह चली गईं।

शारदा के घर का काम-काज थोड़ा-सा था। चटपट करके वह तैयार हो गई, जिससे राखाल बुलाने आवे तो देर न हो। पिटारा खोलकर दो-एक कपड़े-धोती निकाले—साथ ले जाना होगा।

अविनाश बाबू की स्त्री से उसका अधिक मेल-जोल और मित्रता थी। उसको जता रखा था कि घर की चाबी वह उसके पास रख जाएगी—जिससे संध्या समय वह दीपक जला दे। दूर की नाते की एक बहिन बहुत बीमार है, उसकी सेवा-सुश्रूषा के लिए वह जा रही है।

करीब दस बजे के समय सविता ने फिर घर के भीतर आकर पूछा, "राजू नहीं आया शारदा?"

"ना माँ।"

"तुम शायद नहीं जा सकोगी, ऐसा सन्देह तो उसे नहीं हुआ?"

"होना तो नहीं चाहिए माँ। मैंने तो जरा भी अनिच्छा नहीं दिखाई, तुरन्त राजी हो गई थी।"

"तो फिर क्यों नहीं आ रहा है? सवेरे ही तो आने की बात थी।" थोड़ा सोचकर कहा, "दरबान को भेज दूं, फिर एक बार देख आवे कि वह डेरे पर लौटा है कि नहीं।" इतना कहकर ही वह चली गईं।

कल से शारदा बराबर सोच रही है कि यह बीमार लड़की कौन है। उसके कुतूहल की सीमा नहीं, तो भी वह चिन्ताग्रस्त-सी हो निःसंशय नहीं हो सकी। कल राखाल से पूछती तो शायद उत्तर मिल जाता किन्तु उस समय उसे इससे कुछ सरोकार न था, उसे इसका ध्यान भी नहीं आया।

सवेरा बीता, दोपहर बीती, तीसरा पहर बीतकर रात लौट आई, किन्तु राखाल नहीं आया। उसके आने की आशा जब नहीं रही, तब सविता आकर शारदा के विस्तर पर पड़ रहीं। एकदम मौन। केवल आँखों से अविरल जल बहने लगा। शारदा ने उसे पोंछ देना चाहा, तो उन्होंने उसका हाथ हटा दिया।

दासी ने आकर सूचना दी कि विमल बाबू मिलने आए हैं।

सविता ने कहा, "उनसे जाकर कह दे, बाबू घर में नहीं हैं।"

दासी ने कहा, "यह उन्हें मालूम है। वह आपसे मिलने आए हैं, बाबू से नहीं।"

सविता की आँखों में खीझ और क्रोध प्रकट हुआ किन्तु कुछ सोचकर क्षण-भर में वह उठ गईं।

रास्ते में दासी ने कहा, "भीतर जाकर धोती वदल डालिए, यह कुछ मैली दिखाई पड़ती है।"

आज इस ओर सविता की दृष्टि नहीं थी, दासी के कहने से उन्हें होश आया, धोती सचमुच ही किसी से मिलने योग्य नहीं है।

दस-पन्द्रह मिनट बाद जब बैठक में जाकर पहुँचीं तब कोई त्रुटि नहीं रह गई। हरे रंग की धीमी रोशनी में मुँह की शुष्कता भी ढक गई।

विमल बाबू ने खड़े होकर नमस्कार किया। बोले, "शायद आपको कष्ट दिया, लेकिन कल आपको बहुत अस्वस्थ देख गया था, इससे आज आए बिना नहीं रह सका।"

सविता ने कहा, "मैं अच्छी हूँ। आपका कानपुर जाना नहीं हुआ?"

"ना। यहाँ से जाकर सुना, मेरे बड़े चाचा बहुत बीमार हैं, इसी से…"

"आपके सगे चाचा?"

"ना, ठीक सगे तो नहीं—पिताजी के चचेरे भाई, लेकिन…"

"एक ही घर में आपका सम्मिलित परिवार है?"

"ना, सो नहीं। पहले सब एकत्र थे—किन्तु…"

"यहाँ से जाते ही एकाएक बीमार होने की सूचना मिली?"

"ना, एकाएक तो नहीं। बीमार तो बहुत दिनों से हैं, मगर…"

"तो शायद कल भी ना जा सकेंगे—तब तो बहुत हानि होगी?"

विमल बाबू ने कहा, "हानि-लाभ तो लगा ही रहता है, लेकिन मनुष्य क्या केवल रोजगार के नफे-नुकसान का हिसाब लगाने में ही जीवन बिता देगा? रमण बाबू स्वयं भी तो एक व्यवसायी आदमी हैं, किन्तु वह क्या व्यापार के अलावा कुछ नहीं करते?"

सविता ने कहा, "करते क्यों नहीं, लेकिन न करते, तो अच्छा था।"

विमल बाबू ने हँसकर कहा, "कल का क्रोध आज भी शान्त नहीं हुआ आपका। रमण बाबू आवेंगे कब?"

सविता ने कहा, "मुझे मालूम नहीं। न आना ही सम्भव है।"

"न आना ही सम्भव है? कब गए, आज?"

"आज नहीं, कल रात को आप लोगों के जाने के बाद ही चले गए थे।"

कुछ देर चुप रहकर विमल बाबू ने कहा, "आशा है, अधिक अप्रसन्न होकर नहीं गए। कल वह कुछ उदास-से थे। जान पड़ता है, इसी से उस तरह अकारण जोर-जबर्दस्ती की थी। आज निश्चय ही उन्हें अपनी गलती अनुभव हुई है।" सविता से कोई उत्तर न पाकर वह कहने लगे, "कल मुझसे भी कुछ कम अपराध नहीं हुआ। सिंगापुर जाना अस्वीकार करने के बाद भी उसके लिए मेरा बार-बार अनुरोध करना अनुचित हुआ। नहीं तो यह सब-कुछ न होता। उसी के लिए क्षमा माँगने आज आया हूँ। कल तो आप बहुत अस्वस्थ थीं, आज सचमुच अच्छी हैं या एक जने पर अप्रसन्न होकर और एक को दण्ड दे रही हैं—सच-सच बताइए?"

दोनों की आँखें उत्तर देते समय चार हो गईं।

सविता ने आँखें नीची करके कहा, "मैं अच्छी ही हूँ; लेकिन न होऊँ तो आप उसका क्या उपाय करेंगे विमल बाबू?"

विमल बाबू ने कहा, "उपाय करना तो कठिन नहीं है, कठिन है अनुमति पाना। वही पाना चाहता हूँ।"

"ना, वह आप नहीं पाएँगे।"

"ना सही। कम-से-कम रमण बाबू को फोन करके जताने की आज्ञा दीजिए। आप स्वयं तो जतावेंगी नहीं।"

"ना, जताऊँगी नहीं। लेकिन आप ही क्यों जताने के लिए इतने उत्सुक हैं?"

विमल बाबू कई सैकिंड तक स्तब्ध होकर बैठे रहे।

इसके बाद धीरे-धीरे बोले, "आज आप कल की अपेक्षा कहीं ज्यादा अस्वस्थ हैं, यह मैंने घर के भीतर पैर रखते ही आँखों से देख लिया था। चेष्टा करके भी आप छिपा नहीं पाईं। इससे व्याकुल हूँ।"

सविता को उत्तर देने में क्षण-भर की देरी हुई। उन्होंने कहा, "अपनी आँखों पर इतना भरोसा न करना चाहिए विमल बाबू, इससे भारी धोखा होता है।"

विमल बाबू ने कहा, "धोखा नहीं होता, यह मैं नहीं कहता, लेकिन

क्या दूसरे की आँखों से भूल नहीं होती? संसार में जब धोखा खाना या ठगा जाना ही है, तब अपनी आँखों के कारण ही ठगाया जाना अच्छा है। इससे फिर भी एक सान्त्वना मिलती है।"

सविता की दशा हँसने जैसी नहीं थी। अनिश्चित अज्ञात भय से जी ठिकाने नहीं था, तो भी उनके मुँह में हँसी दिखाई दी। यह हँसी मनुष्य की आँखों को साधारणतः नहीं दीखती, जब दीख पड़ती है तब खून में एक नशा पैदा हो जाता है।

विमल बाबू बात को भूलकर एकटक ताकने लगे, उस चितवन का गूढ़ अर्थ नारी की दृष्टि से छिपा नहीं रहा।

थोड़ी देर पहले के सविता के सन्देह और संभावना ने अब संशयहीन विश्वास के साथ सारी देह पर जैसे लज्जा की स्याही ढाल दी।

उन्हें याद आया, यह आदमी जानता है कि यह स्त्री नहीं हैं, वेश्या हैं। इसलिए अपमान से उनका हृदय चाहे जितना जल उठा हो, कड़ी आवाज से प्रतिवाद करके सामने ही मर्यादा-हानि का अभिनय करने को जी न चाहा।

बीती रात्रि की घटना याद आ गई। तब अपमान के उत्तर में उन्होंने भी कम अपमान नहीं किया था। किन्तु यह आदमी रमण बाबू नहीं है। दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। यह शायद अपमान के बदले में कुछ भी नहीं कहेगा। हो सकता है, केवल अवज्ञा की दबी हँसी होंठों में लिए, विनम्र नमस्कार के साथ क्षमा माँगकर चुपचाप चला जाएगा।

चंद पल चुपचाप बीते।

विमल बाबू ने कहा, "हाँ, आपने मेरी बात का उत्तर तो नहीं दिया?"

सविता ने सिर उठाकर कहा, "आप क्या पूछ रहे थे, मुझे याद नहीं।"

विमल बाबू ने कहा, "आज आप ऐसी अनमनी क्यों हैं?"

उत्तर न मिलने पर वे बोले, "मैं कह रहा था कि आपकी तबीयत सचमुच ही ठीक नहीं है। क्या हुआ है, मैं नहीं जान सकता?"

"ना।"

"मुझे न बताइए, डॉक्टर से तो सब-कुछ बता सकती हैं।"

"ना, यह भी नहीं कर सकती।"

"यह आपका बड़ा अन्याय है। जो दोषी है, वह दण्ड नहीं पा रहा है; जो दण्ड पा रहा है, वह आदमी बिल्कुल ही निर्दोष है।"

इसका भी उत्तर न मिला।

विमल बाबू फिर बोले, "कल जो देख गया हूँ उससे कहीं अधिक आज आप अस्वस्थ हैं। शायद आज भी उत्तर देंगी कि मुझसे देखने में भूल हुई है, किन्तु एक बात आज मैं आपसे कहूँगा। भाग्य-चक्र ने मुझे बचपन से बहुत घुमाया है। इन आँखों से मुझे संसार का बहुत-कुछ देखने को मिला है। पर इन आँखों से विशेष भूल नहीं हुई। होती तो बीच नदी में ही मेरे भाग्य की नौका डूब जाती। किनारे आकर न लगती। मेरी वे ही दोनों आँखें आज शपथ करके बतला रही हैं कि आज आप स्वस्थ नहीं हैं, तो भी मैं कुछ न कर पाऊँगा। चपचाप चला जाऊँगा, यह सहन करना तो बहुत कठिन है।"

फिर दोनों की आँखें मिल गईं।

अब भी सविता ने दृष्टि नीची नहीं की, सिर्फ चुप रहकर ताकती रहीं।

विमल बाबू भी वैसे ही चुप बैठे थे। उनके लालसा से चमक रहे नेत्रों में वेग था, जो विरोध मानना नहीं चाहता। डॉक्टर को बुलाने के लिए दौड़ना चाहता है।

और वहाँ? धन नहीं, आदमी नहीं, किसी अज्ञात घर के कोने में उनकी सन्तान रोग-शैया पर पड़ी है। निरुपाय माता का हृदय गहरे अन्तस्तल में हाहाकार कर उठा। केवल वेदना से नहीं, लज्जा से और असह्य पश्चात्ताप से।

अब वह किसी तरह रोककर जल्दी से उठ पड़ीं। बोलीं, "अब और मुझे कष्ट न दीजिएगा विमल बाबू! मुझे कुछ न चाहिए, मैं अच्छी हूँ।" वह नमस्कार करके चली गईं।

विमल बाबू को विस्मय अवश्य हुआ, किन्तु क्रोध नहीं आया। समझ गए कि यह कठिन मान-अपमान का मामला है, ठीक होने में दो-चार दिन लगेंगे।

दस

दूसरे दिन !

दस बजे बहुत दूर पर गाड़ी छोड़कर दरबान के पीछे-पीछे सविता १७ नम्बर के घर के द्वार पर आ खड़ी हुईं। फटिक की माँ बाहर जा रही थी, ठिठककर खड़ी हो गई। पूछा, "आप कौन हैं?"

"तुम कौन हो माँ?"

"मैं फटिक की माँ हूँ, इस घर की बहुत दिनों की दासी।"

"कहाँ जा रही हो फटिक की माँ?"

दासी ने हाथ की कटोरी दिखाकर कहा, "दूकान से तेल लेने। स्वामी का पैर लग जाने से अचानक सब तेल गिर गया, इससे फिर लेने जा रही हूँ।"

"जान पड़ता है, रसोइया नहीं आया?"

"ना माँ, अभी तक नहीं आया। सुनती हूँ, कल आवेगा। आज भी स्वामी ही खाना बना रहे हैं।"

"क्या राजू घर में नहीं हैं?"

"उन्हें जानती हैं! ना माँजी, वह घर में नहीं हैं, लड़के पढ़ाने गए हैं। अब आते ही होंगे।"

"और रेणु कैसी है फटिक की माँ?"

"वैसी ही है। भगवान् जाने ज्वर क्यों नहीं छोड़ता माँजी। सबको यही बड़ी चिन्ता है।"

"देखता कौन है?"

"हमारे विनोद डॉक्टर। वे अभी आएँगे। आप कौन हैं माँजी?"

"मैं इन लोगों के गाँव की बहू हूँ फटिक की माँ, बहुत दूर के नाते की। कलकत्ते में रहती हूँ। सुना कि रेणु बीमार है। उसी की सुधि लेने आई हूँ। बाबूजी मुझे जानते हैं।"

"उन्हें सूचना दे आऊँ?"

"ना, इसकी आवश्यकता नहीं है फटिक की माँ। मैं स्वयं ही ऊपर जा

रही हूँ। तुम तेल लेकर आओ।"

दरवान खड़ा था।

उससे कहा, "तुम मोड़ पर जाकर खड़े रहो महादेव, जाने का समय होने पर बुला भेजूंगी। गाड़ी उसी स्थान पर खड़ी रहे।"

"बहुत अच्छा माँजी।" कहकर महादेव चला गया।

सविता ऊपर चढ़कर बरामदे में जिस ओर ब्रज बाबू रसोई बनाने में लगे हुए थे वहाँ जाकर खड़ी हो गईं। पैरों की आहट ब्रज बाबू के कानों में पहुँची, पर घूमकर देखने का मौका नहीं मिला। बोले, "तेल ले आईं? पानी खौलने लगा है फटिक की माँ, आलू और परवल एक साथ चढ़ा दूं या परवल पका लूं?"

सविता ने कहा, "एक साथ ही चढ़ा दो मँझले बाबू, कुछ-न-कुछ तैयार हो ही जाएगा।"

ब्रज बाबू ने घूमकर देखा। बोले, "कौन, नई-बहू? कब आईं? बैठो, ना-ना, जमीन पर नहीं, बड़ी धूल है। मैं आसन देता हूँ।" कहकर हाथ का बर्तन जल्दी उतार ही रहे थे कि सविता ने हाथ बढ़ाकर उसमें बाधा दी, "करते क्या हो? तुम अपने हाथ से उठाकर आसन दोगे, तो मैं कैसे बैठूंगी?"

"यह ठीक है। लेकिन अब कुछ दोष नहीं है। उस पर से एक आसन ला न दूं।"

"ना।"

सविता जमीन पर बैठकर बोलीं, "दोष तब भी था, अब भी है और मरने के बाद भी रहेगा मँझले बाबू। लेकिन वह बात आज रहने दो, रसोई बनाने वाला क्या मिल नहीं रहा है?"

"मिलते तो बहुत हैं नई-बहू, लेकिन गले में एक जनेऊ रहने से ही तो उनके हाथ का नहीं खाया जा सकता। राखाल कल एक मनुष्य को पकड़ लाया था, लेकिन विश्वास न कर सका। कल फिर किसी और को पकड़ लाने के लिए कह गया है।"

"लेकिन वह आदमी भी तुम्हारे तर्क के सामने टिक न सकेगा मँझले बाबू!"

ब्रज बाबू हँसे। बोले, "अचरज नहीं है। अन्ततः इसी से डर रहा हूँ। लेकिन उपाय क्या है ?"

सविता ने कहा, "मैं यदि किसी को इस काम के लिए पकड़कर ले आऊँ तो उसे रख लोगे मँझले बाबू ?"

ब्रज बाबू ने कहा, "अवश्य रख लूंगा।"

"तर्क नहीं करोगे ?"

ब्रज बाबू फिर हँसे। बोले, "ना नहीं करूँगा, इतना जानता हूँ कि तुम्हारे तर्क से पास होकर ही वह यहाँ आएगा और वह और भी कठिन है। खैर, वह चाहे जो करे, तुम बूढ़े ब्राह्मण की जाति नष्ट न करोगी, इसमें सन्देह नहीं है।"

"मैं क्या धोखा नहीं दे सकती ?"

"ना, नहीं दे सकतीं। आदमी को ठगना या धोखा देना तुम्हारा स्वभाव नहीं है।"

सविता ने दोनों आँखों में आँसू भर आने से मुंह फेर लिया—पीछे कहीं आँसू गिर न पड़ें और ब्रज बाबू उन्हें देख न लें।

राखाल आ गया।

उसके दोनों हाथों में एक-एक पोटली थी। एक में तरकारी थी और दूसरे में साबूदाना, बार्ली, मिसरी, फल-मूल आदि रोगी के लिए।

नई-माँ को देखकर पहले उसे आश्चर्य हुआ, इसके बाद हाथ का बोझ रखकर पैरों की धूल माथे से लगाकर उसने प्रणाम किया। ब्रज बाबू से कहा, "आज बहुत देर हो गई काका बाबू, आप ठाकुरजी की पूजा करने जाइए। पूजा का आयोजन कर लीजिए। मैं नहाकर बाकी रसोई बनाए डालता हूँ।" उसने क्षण-भर बन रही भोजन-सामग्री की ओर नजर डालकर कहा, "कड़ाही में वह क्या पक रहा है ?"

ब्रज बाबू ने कहा, "रसेदार आलू-परवल।"

"और ?"

"और भात बनेगा—और क्या है राजू ?"

राखाल ने कहा, "इतने सब लोग क्या सिर्फ इसी से खा सकते हैं काका बाबू ? पानी कहाँ है, सिल-लोढ़ा, मसाला कहाँ है, कुछ भी तो दिखाई नहीं

पड़ता। बरामदे में झाड़ू तक नहीं लगी—धूल जमा हो रही है। इतनी देर तक आप लोग कर क्या रहे थे? फटिक की माँ कहाँ गई?"

ब्रज बाबू ने चौंककर कहा, "अचानक पैर लगने से तेल गिर गया था न—वह दूकान से तेल लेने गई है—आती ही होगी।"

"और मधुआ?"

"मधुआ पेट में दर्द के मारे सवेरे से ही पड़ा है, उठ तक नहीं सका। रोगी का काम, घर का काम, अकेले फटिक की माँ...।"

"बहुत अच्छा है।" कहकर राखाल ने मुँह फुला लिया। इतने में उसकी दृष्टि कड़ाही-भर मट्ठे के ऊपर पड़ी। उसने पूछा, "इतना मट्ठा किसने खरीदा है?"

ब्रज बाबू ने कहा, "यह मट्ठा नहीं, फटे दूध का पानी है। अच्छी तरह फटा क्यों नहीं, रेणु ने तो पिया ही नहीं।"

सारा बोझ उस पर है। रात को जागकर, धन की चिन्ता करके, दौड़-धूप, परिश्रम करके राखाल बहुत ही दुःखी था, स्वभाव रूखा पड़ गया था। क्रोध में बोला, "आपका काम ऐसा ही होता है। आपसे यह भी नहीं हो सकता कि इतनी-सी तैयारी करके रोगी को खिला सकें?"

ब्रज बाबू सविता के सामने अपने अनाड़ीपन के लिए तिरस्कृत होकर ऐसे कुण्ठित हो उठे कि उनका मुँह देखकर दया आ जाए। कोई बात उनकी जबान से न निकली। किन्तु यह सब देखने की राखाल को फुर्सत नहीं। उसने कहा, "आप ठाकुरघर में जाइए, जो करना है, मैं ही करता हूँ।"

ब्रज बाबू लज्जित होकर खड़े हुए।

ठाकुरघर का कोई काम अभी तक नहीं हुआ था—सब उन्हीं को करना होगा। ब्रज बाबू स्नान करने के लिए नीचे जा रहे थे, सविता सामने आकर खड़ी हो गईं। बोलीं—"आज पूजा-वंदन सब जरा जल्दी-जल्दी कर लेना होगा मँझले बाबू। देर करने से काम न चलेगा।"

"क्यों?"

सविता ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया।

घूमकर राखाल से कहा, "अपने काका बाबू के लिए पहले थोड़ी-सी मिसरी तो भिगो दो राजू। कल एकादशी व्रत था और आज अभी तक जल

का घूँट नहीं लिया।"

राखाल और ब्रज बाबू, दोनों ने ही विस्मय से उनके मुँह की ओर ताका।

ब्रज बाबू ने कहा, "यह बात भी अभी तक तुम्हें याद है नई-बहू ?"

सविता ने कहा, "ना-ना। किन्तु तुम देर न लगा सकोगे—यह मैं कहे देती हूँ। देर लगाओगे तो गोविन्दजी के दरवाजे पर जाकर ऐसा हंगामा शुरू कर दूँगी कि ठाकुरजी की पूजा के मन्त्र तक भी तुम भूल जाओगे। जाओ, शान्त होकर पूजन-भजन करो।"

फटिक की माँ तेल लेकर आ गई।

राखाल ने स्टोव जलाकर बार्ली चढ़ा दी। पूछा, "और दूध नहीं है फटिक की माँ ?"

"ना बाबू, मालिक ने सब नष्ट कर डाला।"

"तो अब क्या उपाय होगा ? रेणु क्या पिएगी ?"

इस बार नई-माँ जरा हँसीं। बोलीं, "दूध नहीं है भैया तो उसमें डरने की क्या बात है ? इस बेला बार्ली से काम चल जाएगा। लेकिन देखो, तुम स्वयं भी मालिक की तरह बार्ली को भी नष्ट न कर डालना।"

"ना माँ, मैं इतना लापरवाह नहीं हूँ। मेरे हाथ से कुछ नष्ट नहीं होता।"

नई-माँ फिर जरा हँसीं, लेकिन चुप रहीं। थोड़ी देर बाद वह वहाँ से उठकर नीचे उतरीं। आँगन में एक किनारे पानी का नल है। पानी के शब्द से ही पता चल गया, खोजना नहीं पड़ा। नल की कोठरी के किवाड़ भिड़े हुए थे, ठेलते ही खुल गए। ब्रज बाबू भीतर स्नान कर रहे थे। वह हड़बड़ा उठे।

सविता ने घुसकर दरवाजा बन्द कर लिया। फिर बोलीं, "मँझले बाबू, तुमसे कुछ बात करनी है।"

"ठीक है, ठीक है, चलो बाहर चलें।"

"ना, बाहर लोग देख सकते हैं। यहाँ तुम्हारे आगे मुझे लज्जा नहीं है।"

ब्रज बाबू सिटपिटाकर उठ खड़े हुए। बोले, "क्या बात है नई-बहू ?"

सविता ने कहा, "मैं इस घर से यदि न जाऊँ तो आप मेरा क्या कर सकते हैं ?"

ब्रज बाबू उनके मुँह की ओर देख हत्बुद्धि से होकर बोले, "इसका मतलब ?"

सविता ने कहा, "यदि न जाऊँ तो तुम्हारे सामने मेरी देह को कोई छू नहीं पाएगा। पुलिस को बुलाकर तुम मुझे गिरफ्तार करा न सकोगे। किसी दूसरे के आगे शिकायत करना भी असम्भव नहीं। न जाने पर मेरा क्या कर सकते हो ?"

ब्रज बाबू ने भय से कठेठी हँसी हँसकर कहा, "तुम भी कैसी हँसी कर रही हो नई-बहू, जिसका सिर-पैर नहीं। लो हटो, दरवाजा खोलो—देर हो रही है।"

सविता ने उत्तर दिया, "मैं हँसी नहीं करती मँझले बाबू। मैं सच ही कह रही हूं। जब तक उत्तर न दोगे, किसी प्रकार दरवाजा न खोलूंगी।"

ब्रज बाबू और अधिक डर गए। बोले, "हँसी नहीं तो यह तुम्हारा पागलपन है। पागलपन का क्या कोई उत्तर है ?"

"उत्तर नहीं है तो रहो इसी स्थान पर पागल के साथ एक जगह बन्द। दरवाजा नहीं खोलूंगी।"

"लोग क्या कहेंगे ?"

"जो जी चाहे।"

ब्रज बाबू ने कहा, "अच्छी आफत है! दुनिया में कहीं कभी किसी ने जबरदस्ती रहने की बात सुनी है? तब तो कानून, आचार-विचार नहीं रहने का। संसार में जो जी चाहे वही वह कर सकता है।"

सविता ने कहा, "कर तो सकता ही है। तुम क्या करोगे, बताओ ?"

"यहाँ रहोगी, अपने घर भी न जाओगी ?"

सविता ने कहा, "ना। मेरा अपना घर यही है, जहाँ स्वामी हैं, सन्तान है। इतने दिन पराए घर में थी, अब वहाँ नहीं जाऊँगी।"

"यहाँ रहोगी कहाँ ?"

"नीचे इतनी कोठरियाँ हैं, उन्हीं में से एक में रहूँगी। लोगों को दासी कहकर मेरा परिचय देना—तुमको झूठ भी न कहना होगा।"

"तुम पागल हो गई हो नई-बहू ? यह कहीं कर सकता हूँ ?"

"यह न कर सकोगे, किन्तु यहाँ से निकालना इससे कहीं अधिक कठिन काम है। यह कैसे कर सकोगे? मैं किसी प्रकार भी नहीं जाऊँगी मँझले बाबू, यह मैंने निश्चय से कह दिया।"

"पागल हो ! पागल !"

"जोर-जबरदस्ती के कारण ? तुम पर जोर-जबरदस्ती नहीं करूँगी तो और किस पर करूंगी ? और जोर आजमाना ही यदि करना चाहो तो मुझसे पार नहीं पाओगे।"

"पार क्यों न पाऊँगा ?"

"कैसे पाओगे ? तुम्हारे पास तो अब रुपया-पैसा नहीं है—गरीब हो गए हो—मामला-मुकदमा काहे से चलाओगे ?"

व्रज बाबू हँस पड़े। सविता घुटने टेककर उनके दोनों पैरों पर सिर रखकर चुप हो रहीं। आज तीन दिन हुए, वह सभी विषयों में उदासीन, भ्रान्त चित्त, शून्य मार्ग में हर घड़ी पागल के समान चक्कर मारती फिर रही हैं। अपनी ओर ध्यान देने का घड़ी-भर भी उन्हें समय नहीं मिला। उनके असंयत रूखे केशों की राशि वर्षा के दिगन्त तक फैले हुए मेघ की तरह स्वामी के पैरों को ढककर चारों ओर भीगी मिट्टी के ऊपर पल-भर में फैल गई। झुककर उसी ओर देखकर व्रज बाबू सहसा चंचल हो उठे। किन्तु उसी दम अपने को सँभालकर बोले, "तुम्हें अपनी बेटी के लिए ही तो चिन्ता है ? अच्छा ..."

सविता ने वक्तव्य पूरा नहीं करने दिया—सिर उठाकर उनकी ओर देखा। आँखों में आँसू भरे हुए थे। कहा, "ना मँझले बाबू, लड़की के लिए अब मैं चिन्ता नहीं करती। उसे देखने को आदमी हैं। लेकिन तुम ? यह भार मेरे सिर पर डालकर एक दिन मुझे इस घर में लाए थे..."

सहसा बाहर से पुकार आई, "राखाल बाबू !"

राखाल ने ऊपर से उत्तर दिया, "आइए डॉक्टर साहब।"

सविता उठकर खड़ी हो गईं, दरवाजा खोलकर एक ओर हटकर खड़ी हो गईं। व्रज बाबू बाहर निकल आए।

ग्यारह

ब्रज बाबू का पूजाघर !

सविता अपने नयनों से पति के कामों को भली-भाँति देख रही थीं। किसी दिन इन ठाकुरजी का सारा दायित्व उनका अपना था, उनके स्वयं न करने से पति को पसन्द नहीं आता था।

उस समय अवकाश के अभाव और बहुत-से सांसारिक कार्यों की उन्हें उपेक्षा करनी पड़ती थी। फुफुआ सास तरह-तरह के बहानों से उनकी गलतियाँ पकड़कर अपने गुप्त द्वेष का बदला लेने का अवसर खोजती रहती थीं, ननदें टेढ़ी बातों से अपने मन का क्षोभ मिटाती थीं। कहती थीं, 'हम लोग क्या ब्राह्मण के घर की लड़कियाँ नहीं हैं ? पूजा-पाठ, अर्चना, देवी-देवता पर क्या नई-बहू के घर का एकाधिकार है ?'

सविता इन सब बातों का उत्तर नहीं देती थीं। कभी बाध्य होकर इस कोठरी का काम यदि दूसरे को देना पड़ता था तो सारा दिन उनका मन न मालूम कैसा होने लगता था। चुपके-चुपके ठाकुरजी से क्षमा-याचना करके कहती थीं, 'गोविन्दजी, जानती हूँ, ठीक सेवा नहीं हो रही है, पर मैं उपायहीन हूँ।'

और आज ? वही गोपाल-मूर्ति पहले की-सी भाँति प्रशान्त मुख से आज भी देख रही है, अभिमान का कोई भी चिह्न उन दोनों आँखों में नहीं है।

इस परिवार में बहुत बड़ा हड़कम्प मच गया। तोड़-जोड़ में इस घर में युगान्तर हो गया। इतना बड़ा परिवर्तन क्या ठाकुरजी भी नहीं जान सके थे, बिलकुल ही विकार-रहित उदासी ? उनके अभाव का चिह्न क्या कहीं भी नहीं पड़ा ? उनकी इतने दिनों की इतनी सेवा सूखी जलरेखा की तरह चिह्नरहित हो गई ?

उन्होंने विवाह के बाद ही गुरुमन्त्र की दीक्षा ली। लोगों ने आपत्ति करके कहा था, 'इतनी छोटी अवस्था में यह होना ठीक नहीं है, क्योंकि अव-हेलना से अपराध का स्पर्श हो सकता है।'

ब्रज बाबू ने इस पर कान नहीं दिया। उन्होंने कहा था, 'अवस्था में

छोटी होने पर भी वह घर की गृहिणी है, मेरे गोविन्दजी का भार लेगी, इसीलिए उसको घर में लाना पड़ा है, वर्ना कोई और स्वार्थ ही नहीं था।'

डॉक्टर को विदा किया।

राखाल हँसते हुए उछलते-उछलते आ पहुंचा, बोला, "माता के आशीर्वाद से बढ़कर क्या कोई दवा है नई-माँ ? घर पर आई देखकर ही जान गया हूँ कि भय नहीं है, रेणुका अच्छी हो रही है।"

सविता देखने लगीं।

व्रज बाबू द्वार के पास आ खड़े हुए हैं।

राखाल ने कहा, "ज्वर नहीं है। विनोद बाबू स्वयं ही बहुत खुश हैं। कह गए हैं, उस समय यदि ज्वर हो जाए तो कल फिर ज्वर नहीं होगा। अब भय की बात नहीं है। दो दिनों में ही पूरे तौर से रोग-मुक्त हो जाएगी। नई-माँ, यह केवल आपके आशीर्वाद का ही फल है, नहीं तो ऐसा न होता। आज रात को निश्चिन्त होकर जरा सोने को मिलेगा।"

यह सूचना सचमुच ही कल्पनातीत है। रेणुका का रोग मामूली नहीं है, क्रमशः दशा बिगड़ने की ओर जा रही है, यही था आतंक, मरण-जीवन के कठिन मार्ग में बहुत दिनों तक अनिश्चित संग्राम करते हुए चलने के लिए ही सभी जब तैयार हो रहे थे।

तभी आ गया यह आशातीत शुभ समाचार। सविता गले में आँचल डालकर धरती पर बड़ी देर तक माथा रखकर प्रणाम करके उठ बैठीं, आँखें पोंछकर बोलीं, "राजू, तुम चिरंजीवी हो बेटा।"

राखाल की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं है, सिर पर से भारी बोझ उतर गया है, बोला, "माँ, पुराने समय में राजा-रानी गले का हार खोलकर देते थे।"

सविता सुनकर हँसने लगीं, बोलीं, "वह तो तुम्हारे गले में शोभा नहीं देगा बेटा, यदि जीवित रहूँगी तो दुलहिन के आने पर उसके ही गले में डाल दूंगी।"

राखाल ने कहा, "इस जीवन में वह गला तो ढूंढ़ने पर मिलेगा नहीं माँ। जानती तो हैं, मेरे भाग्य में मुख का अन्न धूलि में पड़कर भोग में नहीं आने पाता।"

सविता समझ गईं। वह उस दिन जो उनके घर से निमन्त्रण मिला था, उसी का जिक्र कर रहा है।

राखाल कहने लगा, "रेणुका को ठीक हो जाने दो, हार भले ही न मिले, मुँह मीठा करने का दावा मैं छोड़ूँगा नहीं, लेकिन यह भी है दूसरे दिन की बात, आज चलिए एक बार रसोईघर की ओर। इधर कई दिन सिर्फ भात खाकर हम लोगों के दिन बीते हैं। किसी ने इसकी चिन्ता नहीं की, आज इससे काम न चलेगा। अच्छी प्रकार खाना चाहिए। आइए, इसका प्रवन्ध कर दीजिए।"

"चलो बेटा!" सविता उठ पड़ीं। वहाँ दूर बैठकर राखाल से उन्होंने सब-कुछ ही करा डाला और ठीक समय पर अच्छी तरह ही आज खाना-पीना हो गया।

सभी जानते थे कि सविता ने अभी तक कुछ भी नहीं खाया है, लेकिन खाने का प्रस्ताव मुँह से निकालने का साहस किसी को नहीं हुआ। केवल फटिक की माँ नई आगन्तुक होने से और जानकारी न रहने के कारण यह वात एक बार कहना चाहती थी, लेकिन राखाल ने आँख के संकेत से मना कर दिया।

आज सबके चेहरों पर एक प्रकार की हँसी-खुशी के भाव हैं मानो एकाएक किसी जादू-मन्त्र से इस घर पर से भूत का उपद्रव हट गया है। रेणुका को ज्वर नहीं है, वह निश्चिन्त सो रही है। धरती पर एक चटाई बिछाकर थके राखाल ने नेत्र मूँद लिए हैं, मधुआ की आहट नहीं है, शायद उसके पेट का दर्द बन्द हो गया है, नीचे से खन्-खन् झन्-झन् की आवाज आ रही है। शायद फटिक की माँ जूठे बर्तन आज दिन रहते, सवेरे-सवेरे माँज रही है।

सविता आकर मालिक के कमरे का द्वार ठेलकर चौखट के पास बैठ गईं, "अरे, जाग रहे हो?"

व्रज बाबू जाग ही रहे थे, बिछौने पर उठकर बैठ गए।

सविता ने कहा, "क्यों, मेरी बात का उत्तर नहीं दिया?"

व्रज बाबू ने कहा, "उस समय तुमको राखाल बुला ले गया, उत्तर जान लेने का समय मुझे मिला नहीं।"

"किससे जान लोगे, मुझसे ?"

ब्रज बाबू ने कहा, "अचरज में क्यों पड़ती हो नई-बहू, बहुत दिनों से यही व्यवस्था तो होती आ रही है। उस दिन तो राखाल के कमरे में बहुत दिनों की स्थगित समस्या का समाधान करा लिया था तुमसे। पता लगाने से जान लोगी कि उसमें से एक में भी किसी प्रकार की कोई भूल नहीं हुई है।"

सविता को मुँह लटकाए बैठी देखकर वे कहने लगे, "प्रश्न चाहे जिस ओर से ही क्यों न आया हो, उत्तर देती रहो तुम ही, मैं नहीं। उसके बाद अचानक एक दिन मेरी लक्ष्मी-सरस्वती, दोनों को ही तुमने गायब कर दिया, मेरी बुद्धि की ताली खो गई, तब से उत्तर देने का भार पड़ गया मेरे अपने ही ऊपर। देता भी आया हूँ, लेकिन उसकी दुर्गति क्या है, यह तो तुम अपने ही नयनों से देख रही हो नई-बहू।"

सविता ने मुँह उठाकर कहा, "लेकिन यह तो मेरा प्रश्न है, मँझले बाबू।"

ब्रज बाबू ने कहा, "लेकिन यह प्रश्न तो सरल नहीं है। इसमें है घर-गृहस्थी, समाज, परिवार, इसमें है सामाजिक रीति-नीति, है लौकिक-परलौकिक धर्मसंस्कार, है तुम्हारी लड़की का कल्याण-अकल्याण, उसकी मान-मर्यादा, उसके जीवन का सुख-दुःख। इतनी बड़ी भयंकर जिज्ञासा का उत्तर तुम्हारे सिवा कौन देगा, बताओ तो? मेरी बुद्धि में यह समाएगा क्यों? तुमने कहा है, यदि तुम न जाओ, यदि बलपूर्वक यहाँ रह जाओ, मैं क्या कर सकता हूँ। मैं तो नहीं जानता कि क्या करना ठीक है?"

सविता बैठी रहीं। बहुत देर तक कितनी ही बातें सोचने लगीं। उसके बाद उन्होंने पूछा, "मँझले बाबू, तुम्हारा व्यवसाय क्या सचमुच ही नष्ट हो गया है?"

"हाँ; सचमुच ही सब नष्ट हो गया है।"

"मैं रुपया निकालकर न लेती तो क्या होता?"

"उससे भी नहीं बचता, केवल डूब जाने में एक-दो वर्ष की देर लगती।"

"इस समय तुम्हारे हाथ में रुपये-पैंसे कितने हैं?"

"कुछ भी नहीं। अपनी हीरे की अँगूठी बेचने पर जो पाँच सौ रुपये मुझे मिले हैं उनसे ही काम चल रहा है।"

"कौन-सी अँगूठी? अपने व्रतारम्भ की दक्षिणा कहकर जिसे मैंने स्वयं ही तुम्हारे हाथ में पहना दी थी, वही? तुमने उसे बेच डाला है?"

"उसके अलावा मेरे पास और कुछ भी नहीं था, यह तो तुम्हें मालूम है नई-बहू!"

सविता कुछ देर मौन रहकर बोलीं, "वे जो दो इलाके थे क्या वे भी निकल गए?"

ब्रज बाबू ने कहा, "निकल नहीं गए लेकिन निकल जाएँगे। बन्धक रखे हैं, छुड़ा न पाऊँगा।"

कुछ देर चुपचाप बीत जाने पर सविता ने पूछा, "तुम्हारी इस विवाहिता स्त्री के पास क्या रह गया है?"

ब्रज बाबू ने कहा, "उनके नाम से पटलडांगा में दो मकान खरीदे गए थे, वे हैं और जेवर हैं पच्चीस-तीस हजार रुपये के, उनका और उनकी लड़की का काम चल जाएगा, कष्ट न होगा।"

"रेणुका के लिए क्या है मँझले बाबू?"

"कुछ भी नहीं। मामूली जेवर थे उन्हें भी शायद भूल से लेती गई हैं।"

रेणुका की माँ सविता मुँह झुकाये मौन हो रहीं।

ब्रज बाबू ने कहा, "सोचता हूँ, रेणुका अच्छी हो जाएगी तो हम लोग अपने गाँव चले जाएँगे। वहाँ दया करके यदि कोई लड़की को ग्रहण करे तो उसकी शादी कर देंगे, उसके बाद भी यदि जीवित रहूँगा तो गोविन्दजी की सेवा करके गाँव में किसी प्रकार मेरे जीवन के इने-गिने दिन कट जाएँगे।"

लेकिन सविता चुप रहीं। वे फिर बोले, "एक बात है कि रेणुका को लेकर उसको राजी न कर सका हूँ। उससे तुम परिचित नहीं हो, लेकिन वह हो गई है तुम्हारी ही तरह अभिमानिनी। सहज ढंग से कुछ नहीं कहती, लेकिन जब कहती है तो उसको फिर टाला नहीं जा सकता। जिस दिन मैं इस घर पर चला आया, उस दिन रेणुका ने कहा, 'चलो बाबा। हम लोग गाँव चले चलें। लेकिन मेरी शादी करने की चेष्टा मत करना, अपने बाबा को अकेला छोड़कर मैं कहीं नहीं जाऊँगी।'

मैंने कहा, 'बेटी, मैं तो बूढ़ा हो चला, अब कितने दिन जीऊँगा', उसने कहा, 'बाबा, मेरा भाग्य बदल न सकोगे, बचपन में जिसे माँ छोड़कर चली जाती है, जिसके व्याह के दिन अज्ञात बाधा से सब छिन्न-भिन्न हो जाता है, जिसके बाप का राज्य-धन आतिशबाजी की तरह हवा में उड़ जाता है, उसे सुख-भोग के लिए भगवान् दुनिया में नहीं भेजते। उसका दुःखी जीवन दुःख में ही समाप्त हो जाता है। यही मेरे भाग्य में लिखा है बाबा।' "

एकाएक उनका गला भर आया, लेकिन अपने को सँभालकर उन्होंने कहा—"रेणुका ने ये बातें कहीं विरक्त होकर नहीं कहीं, दुःख से व्याकुल होकर भी नहीं। वह जानती है कि उसके भाग्य में ये सब घटनाएँ होंगी ही, उसके चेहरे पर विषाद की काली छाया नहीं थी, उसने ये बातें कहीं भी सहज भाव से—लेकिन जो मुँह से निकल पड़ा वही नहीं, सोच-विचार करके ही उसने कहा था। इसलिए भय होता है, उसे सहज में हटाया न जा सकेगा। तो भी मैं सोचता हूँ नई-बहू, इस दुर्भाग्य में मुझे यही सांत्वना है कि मेरी रेणुका शोक करने के लिए बैठी नहीं है, अपने मन में एक बार भी मेरा तिरस्कार नहीं किया।"

पति की ओर एकटक देखते हुए सविता के दोनों नयनों में जल भर आया।

उसने कहा, "मँझले बाबा के जीवित रहते सब-कुछ ही मैं अपनी आँखों से देखूँगी, कानों से सुनूँगी, लेकिन कुछ भी कर न सकूँगी।"

ब्रज बाबू ने कहा, "क्या करना चाहती हो नई-बहू, रेणुका तो किसी दशा में भी तुम्हारी सहायता न लेगी और मैं…।"

सविता चुप न रह सकी, अकस्मात् पूछ बैठी, "रेणुका को क्या मालूम है कि मैं आज भी जिन्दा हूँ मँझले बाबू ?"

इस प्रश्न में कितनी तरह से रात के सपने, दिन की कल्पना भरी पड़ी है, यह बात उसके अलावा उसकी और जानता कौन है ? उत्तर की प्रतीक्षा में उसके मन के अन्दर हलचल मचने लगी। ब्रज बाबू चुप रहकर कुछ देर सोचकर बोले, "हाँ, उसे मालूम है। उसे यह भी मालूम है कि तुम कलकत्ते में हो और अगाध ऐश्वर्य में सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही हो।"

सविता ने मन-ही-मन कहा, 'हे पृथ्वी, तुम फट जाओ !'

फिर कहा, "वह तुम्हारी सहायता न लेगी और मैं गोविन्दजी की अन्तिम पुकार कानों से सुन चुका हूँ। नई-वहू ! मुझे कुछ देकर तुम तृप्ति पाओगी तो मैं ले लूंगा। प्रयोजन है इसलिए नहीं—मेरे धर्म का अनुशासन है, अपने ठाकुरजी की आज्ञा से लूंगा। तुम्हारा दान हाथ पसारकर लेकर मैं पुरुष का अन्तिम अभिमान समाप्त करके तिनके की अपेक्षा भी हीन होकर दुनिया से विदा हो जाऊँगा। यदि उस समय उसके भी चरणों में स्थान पा सकूँ।"

सविता पति के मुँह की ओर न देख सकी। साफ समझ गई कि उनकी आंखों से दो बूंद आँसू अवश्य ही लुढ़क पड़े हैं।

वहाँ स्तब्ध भाव में मुंह झुकाए बैठी रहकर उसे सबकी बातें स्मरण होने लगीं। उसे वह बात याद आ गई जब पति के नहाने के कमरे में द्वार बन्द करके उसने उनसे जोर लगाकर कहा था, 'यदि मैं न जाऊँ, तुम मेरा क्या कर सकोगे?' उनके पैरों पर माथा रखकर कहा था, 'यही तो मेरा घर है, यहाँ है मेरी कन्या और हैं मेरे पति। मुझे विदा करने की किसमें शक्ति है?'

आज वह समझ गई उसकी बातें कितनी अर्थहीन, कितनी असम्भव हैं। कितना हास्यास्पद है उसका यह दावा। आकाश-नदी के एक छोर पर खड़ी है एक कुशल त्यागिनी और दूसरे छोर पर खड़ा है उसका पति, उसकी बीमार लड़की। बीच में है संसार, घर-गृहस्थी, नीति, समाज-बन्धन के असंख्य विधि-विधान। केवल आँखों से आँसू बहाकर, पति के चरणों पर मस्तक पटककर इस गुरु-भार को वह किस तरह टालेगी?

उसने और कोई बात नहीं कही।

एक बार चुपचाप धरती पर मस्तक रखकर वह खड़ी हो गई।

राखाल की नींद खुल गई। उसने आकर कहा, "मालूम होता है शायद नई-मां चली गई हैं।"

"ना वेटा, अब जाऊँगी। रेणुका की तबीयत कैसी है?"

"अच्छी है माँ, अभी तक सो रही है।"

"मँझले मालिक, अब मैं जाऊँ?"

"हाँ, जाओ।"

राखाल ने कहा, "माँ, चलिए, आपको गाड़ी पर बैठा आऊँ। कल फिर आप आयेंगी न ?"

"हाँ, आऊँगी बेटा।"

इसके बाद वह चल दी।

राखाल भी पीछे-पीछे चलने लगा।

सविता आज की सब बातों, सब घटनाओं की मन-ही-मन समीक्षा कर रही थी। उसके तेरह वर्ष पूर्व का जीवन जिन कुछ चीजों से गुँथा हुआ था, आज फिर उनके ही बीच उसके दिन बीतने लगे। पति, कन्या, राखाल और कुलदेवता गोविन्दजी।

गृह-त्याग के बाद से प्रतिक्षण आत्मगोपन करके ही उसका इतना समय व्यतीत हुआ है, कभी वह तीर्थ-यात्रा के लिए बाहर नहीं निकली है, किसी देवमन्दिर में नहीं गई है, कभी गंगा-स्नान करने के लिए नहीं गई है—कितने पर्व दिन, कितने शुभ क्षण, कितने स्नान के मुहूर्त चले गए हैं, साहस करके किसी दिन मार्ग के बरामदे में नहीं खड़ी हुई है, पीछे किसी परिचित आदमी की निगाह उस पर न पड़ जाय।

उस दिन राखाल के घर में अचानक कुछ-कुछ आवरण उठ गया है—आज सबके सामने ही उसका भय दूर हो गया, लज्जा हट गई।

रेणुका ने अभी तक सुना नहीं है; लेकिन सुनना उसको शेष न रहेगा। वह शायद इसी प्रकार चुपचाप क्षमा करेगी। उसके बाद किसी का गुस्सा नहीं, अभिमान नहीं। व्यथा देने के लिए जरा-सा भी कटाक्ष किसी ने नहीं किया है। दुःख के दिनों में वह जो दया करके उन लोगों का समाचार जानने के लिए आ गई है इसी से सभी कृतज्ञ हैं। ब्रज बाबू व्यस्त होकर अपने हाथ से उसको बैठने का आसन देने आए थे। मानो अतिथि की सेवा में कहीं कोई कमी न रह जाय। यानी परिपूर्ण विच्छेद का और कुछ भी शेष नहीं है, आते समय सविता असन्दिग्ध रूप से यही बात जानकर आई है।

रेणुका जानती है कि उसके पिता दरिद्र हैं। उसे मालूम है कि उसके भविष्य के सभी सुख-सौभाग्य की आशा निर्मूल हो चुकी है। इसी बात को लेकर वह शोक मनाने बैठी है, व्यवस्था को उसने अविचलित धैर्य के साथ स्वीकार कर लिया है, उसने तय कर लिया है कि स्वस्थ हो जाने पर गरीब

पिता को साथ लेकर वह अपने एकान्त गाँव में लौट जाएगी। उनकी सेवा में जीवन सार्थक करेगी।

व्रज बाबू ने कहा है, रेणुका को मालूम है कि उसकी माँ जीवित है, उसकी माँ अगाध ऐश्वर्य और सुख में है।

पति की वह बात सविता को जितनी बार याद आई उतनी ही बार सर्वांग में व्याप्त होने वाली लज्जा से वह काँप उठी। यह झूठ नहीं है—लेकिन यही क्या सच है? लड़की को उसने देखा नहीं है, राखाल के मुँह से उसके रूप का विवरण सुन लिया है—सुना है, वह अपनी माँ के समान ही देखने में है। अपना चेहरा याद करके उसने चित्र अंकित करने की चेष्टा की, उतना स्पष्ट तो नहीं हुआ, फिर भी रोगतप्त उसका अपना मुंह ही मानो मानस-पट में बार-बार फूट उठने लगा।

ग्रामीण दुःख-दर्द के कितने ही सम्भव-असम्भव चित्र उसकी कल्पना में आने लगे। अनासक्त दरिद्र पिता संसार में ईश्वर-चिन्तन में निमग्न हैं, किसी प्रकार भी उनकी दृष्टि में नहीं पड़ता कि वहीं पर रेणुका एकदम ही अकेली है। दुर्दिन में सांत्वना देने वाला मित्र नहीं है, विपत्ति में आश्वासन देने वाला आत्मीय नहीं है—वहाँ उसके दिन कैसे बीतेंगे? वह कभी इसी प्रकार बीमार पड़ जाएगी, उस दिन? लेकिन उपाय नहीं है, कुछ उपाय नहीं है। उसे ध्यान आने लगा कि पिंजड़े में बन्द करके उसके ही नयनों के सामने मानो उसकी सन्तान की कोई हत्या कर रहा है।

सविता को चेत हुआ। गाड़ी आकर उसके दरवाजे पर खड़ी हो गई थी। ऊपर चढ़ रही थी कि दासी ने आकर चुपके से कहा, "माँ, बाबूजी क्रोध में लाल-पीले हो रहे हैं।"

"वे कब आए?"

"थोड़ी ही देर पहले। विमल बाबू के साथ। अभी एकदम उस कमरे में जाने की आवश्यकता नहीं है माँ, उनका गुस्सा कुछ शान्त हो जाने दो।"

सविता ने भौंहें टेढ़ी करके कहा, "तुम जाओ, अपना काम करो।"

वह स्नान कर कपड़े बदलकर जब बैठकखाने में आ खड़ी हुई तब सान्ध्य दीप जल चुका था। विमल बाबू ने उठकर खड़े होकर पूछा, "आज तबीयत कैसी है?"

"अच्छी है, बैठिए।"

उनके बैठ जाने पर सविता स्वयं भी जाकर एक कुर्सी पर बैठ गई।

विमल बाबू ने कहा, "सुना है कि दोपहर के पहले ही आप घर से बाहर निकली थीं—आज आपका भोजन तक भी नहीं हुआ है ?"

सविता ने कहा, "ना, इसके लिए मुझे समय नहीं मिला।"

रमण बाबू मुँह उदास किए बैठे थे। बोले, "आज कहाँ जाना हुआ था ?"

सविता ने कहा, "मुझे कोई काम था।"

"सारा दिन काम ?"

"नहीं तो मैं सारा दिन घूमने जाऊँगी, क्यों ? पहले भी तो लौट सकती थी।"

रमण बाबू ने क्रुद्ध कण्ठ से कहा, "सुना है आजकल ज्यादातर ही तुम घर से बाहर रहती हो—काम क्या था जरा सुन सकता हूँ या नहीं ?"

सविता ने कहा, "ना, वह तुम्हारे सुनने योग्य नहीं है। विमल बाबू, आज भी आपका जाना नहीं हुआ ?"

विमल बाबू ने कहा, "ना। बड़े चाचाजी जब तक कुछ अच्छे नहीं हो जाते तब तक शायद मैं न जा सकूँगा···।"

रमण बाबू उनकी बात समाप्त होने के पहले ही गुस्से के साथ बोल उठे, 'मुझसे पूछकर तुम क्या बाहर गई थीं ?"

सविता ने शान्त भाव से जवाब दिया, "उस समय तो तुम थे नहीं।"

वह एकाएक चिल्ला उठे, "रहूँ या न रहूँ यह तो मैं समझूँगा, लेकिन मेरी आज्ञा के बिना एक कदम भी तुम बाहर न जाओगी, यह साफ बता देता हूँ।"

विमल बाबू ने संकोच से व्याकुल होकर कहा—"रमण बाबू, आज मैं जाता हूँ, काम है।"

"ना-ना, आप बैठिए। लेकिन यह सब निर्लज्जता मैं सहन नहीं करता, इसीलिए मैंने केवल उसे बता दिया।"

सविता ने कहा, "निर्लज्जता तुम किसे कहते हो ?"

"कहता हूँ, जो कुछ तुम करती हुई घूमती रहती हो, उसी को।"

"काम रहने पर भी जाऊँगी नहीं ?"

"ना ! मैं जो कहूँगा, वही करना होगा। दूसरा काम नहीं।"

"वही तो इतने दिनों से करती आई हूँ छोटे बाबू, लेकिन अब क्या तुम मेरे ऊपर अविश्वास करने लगे हो ?"

उस पर कभी भी अविश्वास नहीं हुआ फिर भी क्रोध के आवेश में रमण बाबू बोले, "होता है सौ बार। तुम सीता हो या सावित्री, जिससे अविश्वास नहीं हो सकता ? एक पति को धोखा दे चुकी हो, मुझे धोखा नहीं दे सकतीं।"

विमल बाबू लज्जा से घबरा उठे। इन लोगों के झगड़े के बीच बात-चीत करना भी ठीक नहीं, लेकिन सविता मौन होकर बहुत देर तक रमण बाबू के मुँह की ओर देखती रही। फिर बोली, "छोटे बाबू, तुम जानते हो कि मैं झूठी बात नहीं कहती। हम लोगों का सम्बन्ध आज से समाप्त हो चुका है। फिर तुम मेरे घर पर पाँव मत रखना।"

वाद-विवाद कई बार हुए हैं, लेकिन सब एकतरफा होते थे। सविता शोर-चिल्लाहट के भय से चुप रहती थी। उसी नई-बहू के मुँह से इतनी कठोर बात सुनकर रमण बाबू पागल हो उठे, विशेषतः तीसरे व्यक्ति के सामने। मुँह बनाकर बोले, "किसका घर है यह ? तुम्हारा ? कहने में कुछ भी लज्जा नहीं लगी ?"

सविता उनके मुँह की ओर देखती रही। फिर वह धीरे-धीरे बोली, "हाँ, मुझे शर्म आनी चाहिए छोटे बाबू, तुम सच बात कह रहे हो। न तो यह घर मेरा है और न तुम्हारा ही है—तुमने ही दिया था। कल मैं किसी दूसरी जगह चली जाऊँगी, तब सभी तुम्हारा रहेगा। तेरह साल के बाद चले जाने के दिन तुम्हारी एक कौड़ी भी मैं अपने संग न ले जाऊँगी, पाई-पाई तुम्हें लौटा देती हूँ।"

इस स्वर से रमण बाबू आश्चर्यचकित हो गए। कहने लगे, "कल कैसे चली जाओगी ?"

"हाँ, मैं चली जाऊँगी।"

"चली जाऊँगी कहने से क्या तुमको जाने दूँगा ?"

"मुझे रोकने की व्यर्थ कोशिश न करो छोटे बाबू, हम लोगों का सब

समाप्त हो गया—यह फिर लौटकर नहीं आएगा।"

अब रमण बाबू को चेत हुआ कि मामला सचमुच ही भयंकर हो गया है। उन्होंने डरकर कहा, "मैं क्या सचमुच ही कह रहा हूँ नई-बहू कि यह घर तुम्हारा नहीं है, मेरा है? गुस्से में क्या मुँह से एक भी बात निकाली नहीं जा सकती?"

सविता ने कहा, "गुस्से के कारण नहीं। गुस्सा जब शान्त हो जाएगा तब समझोगे। इतना बड़ा घर दान करने की हानि तुमसे सही न जाएगी, सदैव काँटे की तरह तुम्हारे मन में यही बात बिंधती रहेगी कि हम दोनों के लेन-देन में अकेले तुम ही ठगे गए हो। तगड़ी के एक को जब तुम खाली देखोगे तब दूसरी ओर बटखरे का बोझ तुम्हारी छाती पर बैठ जाएगा—सहन करने की शिक्षा तुमको नहीं मिली है। लेकिन और बहस करने की ताकत मुझमें नहीं है—मैं बहुत थक गई हूँ। विमल बाबू, फिर शायद भेंट होने का मौका हम लोगों को न मिलेगा—मुझे कल ही जाना होगा।"

"कहाँ जाओगी?"

"यह अभी तक मैं नहीं जानती।"

"लेकिन जाने के पहले भेंट होगी ही। मैं फिर आऊँगा।"

"समय मिले तो आइएगा। लेकिन आज मैं जा रही हूँ।"

सविता दोनों को नमस्कार करके चली गई।

विमल बाबू बोले, "रमण बाबू, नमस्कार, मैं भी जा रहा हूँ।"

बारह

सवेरा हुआ।

उसके होते सभी किरायेदारों को मालूम हो गया कि कल रात को बाबू और नई-माँ में बड़ा झगड़ा हो गया है और नई-माँ ने प्रतिज्ञा कर ली है कि कल ही यह घर छोड़कर चली जाएँगी। और कोई होता तो वे केवल थोड़ा-सा हँसकर अपने-अपने कामों में लग जाते, लेकिन इनके बारे में वे ऐसा नहीं कर सके।

यह बात भी न थी कि वे इस पर ठीक विश्वास कर सके हों, किन्तु बात ऐसी बड़ी थी कि अगर सच हो तो बड़ी चिन्ता की है। उन्हें शहर में इतने कम किराये पर ऐसा रहने का स्थान नहीं मिलेगा—एक यही भय न था, उनके ऊपर कितने ही महीनों का बहुत-सा किराया भी बाकी पड़ा है और कितनी ही तरह से घर वे घर की मालकिन के निकट ऋणी हैं।

कई तो यह भूल ही गए हैं कि यह घर उनका अपना नहीं है।

उन्होंने शारदा को पकड़ा। शारदा ने उदास स्वर में नई-माँ से कहा, "आज ये सब लोग क्या कह रहे हैं माँ?"

"मैं क्या जानूँ?"

"कहते हैं कि इस घर से आप चली जा रही हैं?"

"सच ही तो कह रहे हैं शारदा।"

"सच कह रहे हैं? सचमुच ही आप चली जाएँगी?"

"हाँ शारदा।"

शारदा स्तब्ध हो रही। इसके बाद धीरे-धीरे पूछा, "लेकिन कहाँ जाएँगी?"

सविता ने कहा, "यह अभी तक कुछ तय नहीं किया। जाना होगा, यह अभी ही निश्चय किया है।"

शारदा की आँखों में आँसू भर आए। उसने कहा, "वे कोई विश्वास नहीं कर पा रहे हैं माँ। सोचते हैं, यह केवल आपकी क्रोध में कही हुई बात है। क्रोध शान्त होने पर आप न जाएँगी। मैं भी सोच नहीं सकती माँ कि हमारी आशाओं पर बिना मेघ के इतना बड़ा वज्रपात होगा, निराश्रय होकर हम सब किधर कहाँ बह जाएँगे! तो भी लोग जो नहीं जानते, वह मैं जानती हूँ। मैं समझ पाई हूँ माँ कि इस समय यह घर इतना अप्रिय या अरुचिकर हो उठा है कि अब इसमें रहना आपके लिए असह्य हो रहा है। लेकिन जाने की बात कहते ही तो जाना नहीं हो सकता?"

नई-माँ ने कहा, "क्यों नहीं हो सकता शारदा? यह घर मुझे आज से ही नहीं बारह वर्ष पहले जब मैंने पहले-पहल पैर रखा था, उसी दिन से अप्रिय लग रहा है। लेकिन बारह वर्ष तक जो भूल की है वही भूल और बारह साल करनी होगी, मैं अब यह नहीं मानूंगी, इस दुर्गति से अपने को

अवश्य ही मुक्त करूँगी।''

शारदा ने कहा, ''माँ, मेरे तो कोई नहीं है। मुझे किसके पास छोड़ जाएँगी?''

नई-माँ ने कहा, ''शारदा! जिसके स्वामी हैं उसके सब-कुछ हैं। तुमने कोई अन्याय, कोई अपराध नहीं किया। जीवन को पछताकर एक दिन लौटना ही पड़ेगा। दुःख की ज्वाला से हतबुद्धि होकर वह चाहे जहाँ भाग गया हो, उसे फिर तुम्हारे पास आना ही होगा, लेकिन मेरे साथ जाने से तो वह तुमको सरलता में न खोज पाएगा।''

शारदा ने सिर झुकाकर कहा, ''ना माँ, वह अब नहीं लौटेगा।''

''ऐसा कभी नहीं होता शारदा, वह लौटेगा ही।''

''ना माँ, ना। इसका कारण मैं आपसे कहूँगी, लेकिन आज नहीं, और किसी दिन।''

सविता ने जानने के लिए जोर नहीं दिया, चुप हो गई।

शारदा कहने लगी, ''आप चाहे जहाँ जाएँ, मैं साथ चलूंगी। आप बड़े घर की बेटी और बड़े घर की बहू हैं। आपका कहीं अकेला जाना नहीं हो सकता, साथ में एक दासी चाहिए ही। मैं आपकी वही दासी हूँ, माँ।''

''यह तुमने कैसे जाना शारदा कि मैं बड़े घर की बेटी हूँ, बड़े घर की बहू हूँ? किसने तुमसे यह कहा?''

शारदा ने कहा, ''किसी ने नहीं। लेकिन क्या यह बात मैं अकेली ही जानती हूँ? सभी जानते हैं। यह बात आपकी आँख की पुतलियों में लिखी है। आप जिधर से निकल जाती हैं, सबको खबर हो जाती है। बाबू ने जरा से सन्देह का इशारा किया था, कुछ थोड़ी-सी अपमान की बात कही थी, लेकिन वह आपसे सही नहीं गई, आप सब त्यागकर चली जाना चाहती हैं। बड़े घर की लड़की के अतिरिक्त क्या इतना स्वाभिमान किसी सामान्य लड़की में हो सकता है माँ?''

क्षणभर चुप रहकर वह फिर कहने लगी, ''भीतरी बात सभी जानते हैं, तो भी जो कोई कभी उसे जबान पर नहीं ला सकता, तो इसका कारण न तो भय है और न आपके अनुग्रह का लोभ। ऐसा होता तो यह छलना किसी-न-किसी दिन प्रकट हो पड़ती। जो कोई इंगित आभास से भी असंभव

नहीं कर सकता, तो केवल इसीलिए माँ !"

सविता ने कृतज्ञ कण्ठ से स्वीकार करके कहा, "तुम सभी मुझे प्रेम करती हो, यह मैं जानती हूँ।"

शारदा ने कहा, "केवल प्रेम ही नहीं, हम सब आपका बड़ा आदर करते हैं। आप अच्छी हैं, इसीलिए नहीं, आप बड़ी हैं, इसलिए करते हैं। इसीलिए चर्चा करने की कौन कहे, इस बात को सोचने में भी हम लज्जित होते हैं। उन्हीं, हम लोगों को छोड़कर आप कैसे चली जाएँगी ?"

"लेकिन बिना गए भी तो कोई उपाय नहीं है।"

"अगर आपके लिए बिना गए उपाय नहीं है, तो मेरे लिए भी आपके साथ गये बिना उपाय नहीं है। मैं न रहूँगी तो आपका काम-काज कौन कर देगा माँ !"

सविता ने कहा, "कौन करेगा, यह नहीं जानती, लेकिन यदि मैं बड़े घर से ही आई होऊँ शारदा, तो तुम भी वैसे घर से नहीं आई हो जिसके लोग परायी टहल करते फिरते हैं। तुम्हें मैं ही क्यों दासी का काम करने दूँगी ?"

शारदा ने कहा, "तो दासी का काम नहीं करूँगी, मैं माँ की सेवा करूँगी। आप अपमान की लज्जा से अकेली जाकर राह में खड़ी होंगी, इसका दुःख कितना बड़ा है, यह मैं जानती हूँ। वह मुझसे न सहा जाएगा, इसलिए साथ अवश्य ही जाऊँगी।" उसने आँचल से आँखें पोंछ लीं।

वह साफ-साफ कहना नहीं चाहती, केवल इशारे से ही समझाना चाहती है कि निराश्रय को कितना दुःख है।

सविता को स्वयं भी स्मरण हो आई उस दिन की बात, जिस दिन गहरी रात को स्वामी का घर छोड़कर वह बाहर आई थी। आज भी उस दुःख की तुलना करने के लिए उसे संसार का कोई भी दुःख ढूँढ़े नहीं मिला। उसके बहुत लम्बे बारह वर्ष इसी में कटे। इस नरककुण्ड में भी जीने के प्रयोजन से फिर उसे धीरे-धीरे बहुत कुछ संचय करना पड़ा। वह सब क्या आज सचमुच ही बोझा है? सचमुच ही क्या प्रयोजन बिलकुल नहीं रहा ? क्या उसने अपने को फिर से पा लिया है ?

शारदा की सतर्क वाणी ने उसे सचेत किया। उसके मन में संदेह

उत्पन्न हुआ कि निर्विघ्न आश्रय के त्याग का घोर दुःसाहस शायद अब आज वह नहीं कर सकती। स्वामी-गृहवास की बहुत-सी स्मृतियाँ उसके मानस-पटल पर उभर आईं। भय हुआ कि उस दिन की वह देह, वह मन, वह शांत ग्राम-भवन का सरल सामान्य प्रयोजन इस विक्षुब्ध नगरी की अपवित्र जीवन-यात्रा के बवंडर में चक्कर खाकर न जाने कहाँ डूब गए हैं। आज किसी प्रकार उसका पता नहीं मिलेगा। उसे मन-ही-मन मानना ही पड़ा कि अब वह वही नई-बहू नहीं है। उसकी आयु बहुत हो गई है, अभ्यास भी बहुत बदल गए हैं। यह आश्रय जिसने दिया है, उसकी दी हुई लांछना और अपमान चाहे जितना बड़ा क्यों न हो, उस आश्रय को त्यागकर खाली हाथ मार्ग में निकल पड़ना आज उसकी अपेक्षा भी कठिन है। किन्तु एकाएक ध्यान आया कि रहा ही किस तरह जाय? इस आदमी के विरुद्ध उसका विद्वेष और घृणा दिन-दिन जमा होते-होते कितने बड़े पर्वताकार हो उठे हैं, यह इतने दिन उसने आप भी इस तरह हिसाब करके नहीं देखा था। उसे जान पड़ा, जैसे वह आया है, पलंग पर बैठकर पान-तमाखू से एक गाल बतौड़ी की तरह फुलाकर और बार-बार उच्चारित उन्हीं सब अत्यन्त अरुचिकर सम्भाषणों और मजाकों से उसके मनोरंजन का प्रयत्न कर रहा है—उसकी लालसा-लिप्त वह गन्दी चितवन, उसकी बिल्कुल निर्लज्ज अति उग्र अधीरता—उसी कामार्त अधेड़ व्यक्ति की शैया के पास जाकर फिर उसे रात बितानी होगी—यह सोचकर क्षणभर के लिए सविता जैसे हतचेतन हो रही।

"माँ!"

"क्यों शारदा?"

"आज सचमुच ही तो नहीं चली जाएँगी?"

"आज नहीं तो एक दिन तो जाना ही होगा।"

"क्यों जाना होगा? यह घर तो आपका है।"

"ना, मेरा नहीं, रमण बाबू का है।"

शारदा ने इस पर लक्ष्य किया। बोली, "हम सब तो जानते हैं कि यह घर उन्होंने आपको दिया था। अब तो इस पर उनका अधिकार नहीं है माँ।"

सविता ने कहा, "यह मैं नहीं जानती शारदा। वह आईना-अदालत

की बात है। मैं नहीं जानती कि मौखिक दान का कितना महत्त्व है।"

शारदा ने भयभीत होकर कहा, "सिर्फ मुँहजबानी ? लिखत-पढ़त नहीं हुई ? ऐसा कच्चा काम क्यों किया था माँ ?"

सविता मौन रही। उसे उसी समय याद आया कि स्वामी के पास उसका जो रुपया जमा था, वह उन्होंने सर्वस्व चला जाने पर भी उस दिन ब्याज और मल-सहित लौटा दिया है।

शारदा ने कहा, "आपने रमण बाबू को आने के लिए मना कर दिया है। अब यदि वह गुस्से में इस बात को अस्वीकार कर दें ?"

सविता ने संयत स्वर में कहा, "वह यही करें शारदा, मैं उन्हें जरा भी दोष न दूंगी। केवल उनके निकट मेरी यही प्रार्थना है कि लड़ने-झगड़ने और चीखने-चिल्लाने के लिए अब वह मेरे सामने न आएं।"

शारदा अवाक् हो रही। अन्त में सूखे हुए स्वर से बोली, "माँ, आपसे एक बात कहती हूँ। रमण बाबू को विदा कर दिया, रहने का घर भी चला जाएगा। सचमुच ही क्या आपको कोई चिन्ता नहीं होती ? उस दिन मुझे छोड़कर जब वह चले गए, तब अकेली मैं भय से कैसे पागल हो गई। ज्ञान या समझ न होने से ही तो मैं विष खाकर मरने चली थी माँ। नहीं तो इतना बड़ा पाप करने को मेरा साहस न होता। लेकिन आपको तो एकदम निर्भय देखती हूँ, किसी बात की चिन्ता नहीं करतीं—ऐसा किस प्रकार सम्भव है माँ ? जान पड़ता है, हम लोगों से बड़ी हानि के कारण ही आपके लिए यह सम्भव है।"

सविता ने कहा, "बड़ी नहीं बेटी। तुम्हारी और मेरी दशा एक नहीं है। तुम थीं सम्पूर्ण निरुपाय—लेकिन मैं ऐसी नहीं हूँ। अभी उस दिन जो बड़ी सम्पत्ति खरीदी गई है, वह मेरी है शारदा।"

शारदा ने आश्वस्त होकर पूछा, "उसमें तो कोई गड़बड़ नहीं होगी माँ ?"

सविता गर्व से कह उठी, "वह मेरे स्वामी की है शारदा—वह मेरा रुपया है। किसी की क्या शक्ति है जो उसमें गड़बड़ करे !"

बारह वर्ष से सविता अकेली है।

आत्मीय पराये घर में उसके बारह वर्ष बीते हैं। मन की बात किसे

कही जाय, इतने दिन ऐसा एक भी आदमी नहीं था। रुपयों का ब्यौरा बताने में अकस्मात् इस लड़की के सामने उसका इतने दिन के रुँधे हुए हृदय के रहस्य का मुँह खुल गया। एकाएक किस तरह स्वामी से भेंट हो गई, अन्धकारप्राय घर के कोने में केवल छाया देखकर किस प्रकार स्वामी ने उसको पहचान लिया, तब किस प्रकार उसने अपने को सँभाला, तब उसने क्या कहा, क्या किया, सब बिना किसी रुकावट के बकते-बकते कुछ देर के लिए सविता जैसे अपने को भूल बैठी।

शारदा के विस्मय की सीमा नहीं—नई-माँ का अपने को इतना भूल जाना उसकी कल्पना से भी परे था।

किसी ने पुकारा, "माँजी !"

सविता ने सचेत होकर उत्तर दिया, "कौन, महादेव ?"

दरबान ने ऊपर आकर बताया कि उनकी आज्ञा के अनुसार शोफर गाड़ी ले आया है।

आध घंटे बाद वह तैयार होकर नीचे उतरी।

उसने देखा, दरवाजे के पास शारदा खड़ी है।

उसने कहा, "माँ, मैं साथ चलूंगी। वहाँ राखाल बाबू हैं। वह कभी अप्रसन्न न होंगे।"

कोई साथ जाय, यह सविता की इच्छा नहीं थी।

उसने कहा, "अप्रसन्न तो शायद कोई न होगा। लेकिन वहाँ जाकर तुम क्या करोगी ?"

शारदा ने कहा, "मैं सब जानती हूँ। रेणु बीमार है, मैं उसे एक बार देख आऊँगी। इससे भी अधिक मुझे इच्छा है, रेणु के बाप को देखने की। प्रणाम करके पैरों की धूल माथे से लगाऊँगी।" यह कहकर स्वीकृति की अपेक्षा किए बिना ही वह गाड़ी में बैठ गई।

उसने मार्ग में जाते समय धीरे-धीरे पूछा, "रेणु के बाप देखने में कैसे हैं माँ ?"

सविता ने कौतुक करके कहा, "तुमको कैसे जान पड़ते हैं शारदा ? ठाठवाले बहुत जबर्दस्त आदमी—क्यों ?"

शारदा ने कहा, "ना माँ, ऐसा नहीं जान पड़ता। लेकिन मैं तभी से

तो सोच रही हूँ, कोई भी चेहरा जैसे पसन्द नहीं आता।"

"क्यों नहीं पसन्द आता शारदा ?"

"इसलिए पसन्द नहीं आता माँ, कि वह केवल रेणु के पिता ही नहीं हैं, आपके भी स्वामी हैं। मन-ही-मन जैसे किसी तरह दोनों जनों को एक साथ मिला नहीं पा रही हूँ।"

सविता ने हँसकर कहा, "मान लो उनकी रूपरेखा ऐसी है—एक बूढ़े वैष्णव—मुझसे अवस्था में बहुत बड़े—सिर पर शिखा है, बाल प्रायः सब पक गए हैं, गोरा रंग, लम्बा शरीर, पूजा-व्रत-उपवास, आचार-नियमों से दुबले-पतले—ऐसा आदमी तुमको पसन्द आएगा क्या ?"

"ना-ना, नहीं पसन्द आता। आपको आता है ?

"शारदा, पसन्द किए बिना उपाय क्या है ? स्वामी पसन्द-नापसन्द की वस्तु नहीं है। उसे बिना कुछ विचारे मान लेना होता है। तुम कहोगी, यह तो हुई शास्त्र की विधि, मनुष्य के मन की विधि नहीं है। लेकिन यह तर्क कौन करते हैं जानती हो बेटी ? वे ही करते हैं, जिन्होंने आज भी मनुष्य के मन का सच्चा हाल नहीं जाना, जिनको दुर्गति की आग जलाकर जीवन का मार्ग टटोलते भटकना नहीं पड़ा। संसार-यात्रा में स्वामी के रूप-यौवन का प्रश्न स्त्रियों के लिए तुच्छ बात है बेटी, वह दो दिन में ही हिसाब के बाहर पड़ जाती है।"

शारदा अशिक्षित होने पर भी इस बात को ठीक सत्य मानकर ग्रहण नहीं कर सकी। समझी, यह सविता के पश्चात्ताप की ग्लानि है—प्रतिक्रिया से मथे जा रहे हृदय की एक क्षमा की भिक्षा है। इच्छा न हुई कि तर्क करके उसके दुःख को बढ़ावे, किन्तु चुप भी नहीं रहा गया। बोली, "एक बात जानने को बड़ा जी हो रहा है माँ, परन्तु···"

सविता ने कहा, "परन्तु क्या बेटी ? यही तो प्रश्न करके मुझे और लज्जित नहीं करना चाहती हो ? लेकिन अब लज्जा और नहीं बढ़ेगी, तुम निर्भय होकर पूछो।"

शारदा का संकोच दूर न हो रहा था।

उसे मौन देखकर सविता ने कहा, "शायद तुम यह जानना चाहती हो कि यदि यही बात सच है तो मेरी इतनी बड़ी दुर्गति क्यों हुई ? इसका

उत्तर मैंने अनेक बार अनेक प्रकार से सोचकर देखा है, किन्तु अपने पूर्वजन्म के कर्मफल के अलावा इस प्रश्न का उत्तर आज भी मैं नहीं पा सकी।"

शारदा स्वयं भी कर्मफल को मानती है, तो भी उसका मन नई-माँ के इस उत्तर का साथ नहीं दे सका। वह चुप रही। सविता ने उसके मुख की ओर देखकर यह समझ लिया। बोली, "और किसी जन्म के अज्ञात कर्म-फल के सिर दोष मढ़कर इस जन्म के टूटे बेड़े से निकलने की सन्धि खोजती फिरूँ, इतनी बड़ी अनजान मैं नहीं हूँ बेटी, किन्तु इस गोरखधन्धे से बाहर निकलने की राह कौन निकाल पाया है, बताओ तो? जिस आदमी को मैंने कल विदा कर दिया है, उसे मैंने अपने स्वामी की अपेक्षा बड़ा कभी नहीं समझा, उसके लिए कभी श्रद्धा नहीं की, कभी उससे प्रेम नहीं किया, तो भी उसी के घर में मेरा एक युग किस प्रकार बीत गया?"

इस बार शारदा ने कुछ लजाते हुए कहा, "आज न हो, किन्तु उस दिन भी क्या रमण बाबू को आपने प्यार नहीं किया माँ?"

सविता ने कहा, "ना बेटी, उस दिन भी नहीं—किसी दिन भी नहीं।"

शारदा ने कहा, "तो फिर यह सब क्यों हुआ?"

क्षण-भर चुप रहकर सविता ने हंसी हँसकर कहा, "पदस्खलन में क्या कोई 'क्यों' रहता है शारदा? वह अचानक अकारण व्यर्थ में हो जाता है। इन बारह-तेरह वर्षों में कितनी ही औरतों को तो मैंने देखा है—आज शायद वे सर्वनाश की कीचड़ के तले में न जाने कहाँ डूब गई हैं, लेकिन उस दिन मेरी एक भी बात का वे उत्तर नहीं दे सकीं। मेरी ओर आँखें फैलाए ताकने लगीं, उनमें आँसू भर आए। मैं तो सोच ही नहीं पाई कि अपने भाग्य के सिवा वे और किसको कोसेंगी। देखकर उनका अपमान क्या करती, अपना ही माथा पीटकर रोकर कहा, 'निष्ठुर देवता! अपने मायावी संसार में तुमने बिना दोष के दुःख के गीत गाने का भार क्या अन्त को इन सब अभागियों पर डाला है!' क्यों होता है, यह मैं नहीं जानती शारदा, किन्तु ऐसा ही होता है।"

शारदा सिर हिलाकर बँधे रास्ते के पक्के नियम का अनुसरण करके बोली, "उनका दोष न था, ऐसी बात आप कैसे कह रही हैं माँ?"

सविता चुप रही। उसे और समझाने की चेष्टा नहीं की। केवल एक

साँस छोड़कर खिड़की के बाहर शून्य दृष्टि से मार्ग की ओर ताकने लगी।

गाड़ी आकर यथास्थान खड़ी हुई।

महादेव के दरवाजा खोल देने पर दोनों उतर पड़ीं। गाड़ी चली गई।

१७ नम्बर के घर का द्वार खुला था। दोनों ने भीतर प्रवेश करके देखा, नीचे कोई नहीं है। सीढ़ी पर चढ़ते ही एक सोलह-सत्रह वर्ष की लड़की दीख पड़ी जो बरामदे में बैठी तरकारी काट रही थी।

लड़की ने खड़े होकर और 'आइए' कहकर दोनों की अभ्यर्थना की। जंगले के ऊपर आसन पड़ा था, उसे उतारकर बिछा दिया और सविता के पैरों की रज माथे से लगाई।

यह लड़की आज इतनी बड़ी हो गई है।

आसन पर बैठकर सविता किसी प्रकार अपने को सँभाल न सकी। उमड़े हुए आंसुओं के वेग से उसकी सारी देह बार-बार काँप उठी और तुरन्त ही दोनों आँखों से लगातार आंसुओं की धारा बह चली। सविता ने समझा कि यह लज्जा की बात है, शायद इन आँसुओं की कोई मर्यादा इस लड़की के निकट नहीं है। किन्तु संयम का बाँध टूट गया था, किसी प्रकार कम न हुआ—आँसू रोके नहीं रुके। पर आँचल दबाकर वह मुँह छिपाए बैठी रही।

बारह

सविता से रुलाई नहीं रुकी। वह बस रोती ही जा रही थी। क्षुब्ध समुद्र-जल ने किसी तरह मानो अन्त मान लेना नहीं चाहा।

लड़की ने सांत्वना देने का प्रयत्न नहीं किया। निर्बल क्लांत हाथ से जिस प्रकार साग काट रही थी उसी तरह चुपचाप काम करती रही। रोने की उद्दण्डता शान्त हो चली लेकिन अपने मुँह के आंचल को सविता किसी भी प्रकार हटा न सकी। वह मानो खूब चिपककर पड़ा रहा।

इस प्रकार कितनी देर चलेगा, सबकी परिस्थिति अन्दर-ही-अन्दर दुस्सह होने लगती है। शारदा ने ही सबसे पहले कहा, "अब तुम्हारी तबीयत

कैसी है दीदी ?"

"अच्छी है।"

"फिर ज्वर तो नहीं आया ?"

"ना, मुझे तो पता नहीं।"

"डॉक्टर अभी तक आए नहीं ?"

"ना, शायद वे दूसरे समय आएँगे।"

कुछ सोचकर शारदा ने कहा, "राखाल बाबू दिखाई नहीं देते ? क्या वे घर पर नहीं हैं ?"

"कहीं पढ़ाने गए हैं।"

"और तुम्हारे बाबा ?"

"सुबह ही चले गए थे और देर में लौटने के लिए कह गए हैं।"

शारदा की बातें समाप्त हो चलीं। इस बार वह क्या कहेगी सोचकर समझ न सकी। बहुत संकोच के बाद उसने पूछा, "ये कौन हैं, क्या तुम पहचान गईं रेणुका ?"

"कैसे पहचानूंगी, मैंने तो देखा भी नहीं।"

"समझ भी नहीं सकीं ?"

रेणुका ने सिर हिलाकर कहा, "समझ तो सकी हूँ। राजू भैया बतला गए हैं। लेकिन आप कौन हैं यह नहीं समझ पाई।"

शारदा ने अपना परिचय देकर कहा, "मेरा नाम है शारदा। तुम्हारी माँ के पास रहती हूँ। राखाल बाबू मुझे जानते हैं। मेरे विषय में क्या कोई बात उन्होंने तुमसे कही नहीं ?"

"ना, उन सब बातों को वे मुझसे कैसे बतलाएँगे ? बताना भी ठीक नहीं।"

इस बार शारदा एकदम मौन। उसकी बुद्धि-विवेचना जितनी दूर सम्भव थी उसने उसे उतनी दूर चलाया है और आगे बढ़ने योग्य उसको खोजने से कुछ नहीं मिला।

कुछ क्षण चुपचाप बीत जाने पर रेणुका उठ गई, लेकिन थोड़ी ही देर बाद एक लोटा हाथ में लेकर आई और बोली, "उठिए माँ, पाँव धोने के लिए पानी लाई हूँ।"

इस आह्वान से सविता पागल की भाँति अचानक उठ खड़ी हुई। उन्होंने लड़की को गोद में खींच लिया, लेकिन कुछ ही देर के लिए। उसके बाद ही अचेत होकर धरती पर गिर पड़ीं। कुछ क्षण बाद चेत में आने पर उन्होंने देखा, उनका माथा शारदा की गोद में है और सामने बैठी हुई लड़की पंखा डुला रही है।

रेणुका ने कहा, "माँ, पूजा का स्थान ठीक कर दिया है, एक बार उठ जाना पड़ेगा।"

उनके दोनों नयनों के कोनों से फिर जल चू पड़ा।

रेणुका ने फिर कहा, "शारदा दीदी ने कहा था, आपने चार-पाँच दिन से कुछ भी खाया नहीं, थोड़ी-सी मिश्री भिगोकर मैंने रख दी है माँ, इस बार उठकर पी लेना होगा। लेकिन बाल सब धूल और जल में लुट-पुटकर एक हो गए हैं, यह मेरा दोष नहीं है माँ, शारदा दीदी का है। हाँ माँ, आपके बाल मानो काले रंग के रेशम हैं। लेकिन मेरे बाल ऐसे सख्त क्यों हो गए हैं? शायद बचपन में खूब मुड़वा दिया था। गाँव में यही बड़ा दोष है।"

सविता ने लड़की के माथे को छुआ। कई दिनों के ज्वर से उसके बिखरे हुए बाल रूखे हो उठे हैं। बहुत देर तक अँगुलियों से हिलाती-डुलाती रही, अनेक बार बातें करते समय गले में रुकावट आ गई, अन्त में उसके माथे को अपनी गोद में खींचकर वे नयनों से आँसू गिराने लगीं। जो बात गले में रुक गई थी, वह गले में ही दबी रह गई। बात भले ही मुँह से न निकले, लेकिन यह अनुच्चारित भाषा समझने में किसी को देर न लगी।

लड़की समझ गई, शारदा समझ गई और समझ गए वे, जिनके लिए इस दुनिया में कोई भी चीज अनजान नहीं।

कुछ देर इस दशा में रहकर सविता उठ पड़ीं। लड़की उनको नीचे स्थान के कमरे में ले जाकर फिर नहलवाकर ले आई। बलपूर्वक पूजा पर बैठा दिया और उसके समाप्त होने पर उसी प्रकार बलप्रयोग करके उनको मिश्री का शरबत पिला दिया।

रेणुका ने कहा, "माँ, अब रसोई पकाने जाती हूँ। आपको खाना पड़ेगा।"

"यदि न खाऊँ ?"

"आपके पैरों पर माथा रगड़ूँगी। बिना खाए आपका छुटकारा नहीं।" रेणुका ने कहा।

उसने फिर कहा, "सवेरे जरा मिश्री खाकर जल पी चुकी हूँ, आज और कुछ न खाऊँगी। कुछ दुर्बल तो सचमुच हो गई हूँ, लेकिन रसोई पकाए बिना काम चलेगा कैसे, माँ ? राजू भैया के आने में देर होगी। बाबा भी लौटेंगे बहुत दिन चढ़ जाने पर। रसोई न बनाने से इतने आदमी खाएँगे क्या ? इसके अलावा मुझे ठाकुरजी का भोग भी तो बनाना होगा।"

जैसे ही रेलिंग पर से उतारकर अंगोछा उसके कन्धे पर रखा, वैसे ही सविता ने चौंककर पूछा, "क्या तुम स्नान करने जा रही हो रेणुका ?"

रेणुका ने हँसकर कहा, "माँ, आप भूल गई हैं। आपने क्या कभी बिना स्नान किए ही भोग बनाया था ?"

सविता के मुँह से इस बात का उत्तर न निकला।

शारदा ने कहा, "लेकिन फिर ज्वर तो आ सकता है रेणुका।"

रेणुका ने सिर हिलाकर कहा, "शायद आएगा नहीं, अब मैं अच्छी हो गई हूँ। शारदा दीदी ! जब तक अच्छी हूँ, तब तक तो करना ही पड़ेगा। हम लोगों के यहाँ करने वाला तो और कोई दूसरा है नहीं।"

दोनों ही चुप रहीं।

रसोई बहुत अधिक नहीं थी, लेकिन उसे पकाने में रेणुका को कितना कष्ट हो रहा था यह स्पष्ट है। ज्वर के कारण सात-आठ दिनों के उपवास से अत्यन्त दुर्बल थी। लड़की बहुत कष्ट उठा-उठाकर आँखों के सामने ही काम करने लगी, माँ चुपचाप बैठकर देखती रहीं, लेकिन कुछ भी करने को नहीं रहा। इस जीवन का पारिवारिक वन्धन जो इस प्रकार टूट गया है, व्यवधान जो इतना वृहत् हो गया है, ऐसा प्रत्यक्ष रूप से समझ लेने का अवकाश शायद सविता को और किसी प्रकार भी न मिलता जैसे कि आज मिल गया।

भोजन तैयार हो गया।

शारदा को लक्ष्य करके रेणुका ने कहा, "बाबा के लौटने में शायद आज दिन ढल जाएगा। आप क्यों झूठ-मूठ कष्ट उठावेंगी ? शारदा दीदी,

खा लीजिए। बाबा कहा करते हैं, ऐसी दशा में गृहस्थी में किसी एक के उपवास करके रहने से ही कोई दोष नहीं होता।"

वह माँ के मुँह की तरफ देखती हुई उत्तर के लिए प्रतीक्षा करती रही।

सविता जानती है कि उन लोगों के बड़े परिवार में बाध्य होकर ही एक दिन यह नियम चलता गया था।

ठाकुरजी की पूजा के लिए पुजारी ब्राह्मण नियुक्त रहने पर भी ब्रज बाबू सहज में काम किसी पर छोड़ देना नहीं चाहते थे, फिर भी चिरकाल से ढीले स्वभाव का आदमी होने के कारण उनको ही प्रायः व्यर्थ देर हो जाया करती थी। लेकिन लड़की के प्रश्न के उत्तर में उनको क्या कहना चाहिए, यह वे सोचकर भी समझ नहीं पाईं।

रेणुका फिर कहने लगी, "परन्तु मेरी नई-माँ को देर सही नहीं जाती थी। खाने में जरा देर होने पर भी वह गुस्सा कर बैठती थीं। बाबाजी ने इसीलिए मुझे एक दिन दुःखी होकर कहा था कि गाँव के घर पर कितने ही दिन जो आपका इस समय खाना नहीं होता था, उपवास करके दिन काटना पड़ता था, इसकी गिनती नहीं है, लेकिन किसी दिन क्रोध करके आपने नहीं कहा कि ठाकुरजी को फेंक दो।"

शारदा ने आश्चर्य से पूछा, "ठाकुरजी को फेंक देने को कहती हैं?"

"हाँ, कितनी ही बार कह चुकी हैं। कहती हैं कि गंगाजी में फेंक आओ।"

"तुम्हारे बाबूजी क्या कहते हैं?"

शारदा के प्रश्न का उत्तर उसने माँ को ही दिया। कहा, "मेरी आयु उस समय नौ साल की थी। बाबा ने मुझे बुला भेजा। उनके कमरे में जाकर मैंने देखा कि नेत्रों से आँसू गिर रहे हैं। मुझे अपने पास बैठाकर उन्होंने आदर से कहा, 'मेरे गोविन्द का भार था एक दिन तुम्हारी माँ पर। आज से तुम ही उनका काम करो—कर सकोगी न बेटी?'

मैंने कहा, 'कर सकूँगी बाबा!' तभी से मैं ही ठाकुरजी का काम करती हूँ। पूजा जब तक नहीं हो जाती, घर में बिना खाये रहती हूँ। लेकिन आज मैं नहीं कहती माँ। ज्वर का भय न रहता तो आपको बैठने को कह-

कर हम लोग मिलकर खा लेते।"

वह हँसने लगी। उसने नहीं सोचा कि उसने कितनी असम्भव और मर्मान्तक ठेस अपनी माँ को पहुँचाई।

सविता मुँह फेरकर चुपचाप बैठी रहीं। एक बात का भी उन्होंने उत्तर नहीं दिया। लड़की जो कुछ भी कहे, माँ जानती हैं, इस घर की अब वे कुछ भी नहीं हैं। पारिवारिक नियमों के पालन में आज उनका खाना न खाना दोनों ही अर्थहीन हैं।

ठाकुरजी के दर्शन के लिए रेणुका शारदा को ले गई।

सविता उसी स्थान पर मौन होकर बैठी रही। लड़की ने कितनी थोड़ी बात कह दी है। अपनी विमाता के ऊवे हुए चित्त का सामान्य विवरण, ठाकुर देवता के प्रति श्रद्धा का उदाहरण, यही तो। कितने ही घरों में है। कोई अकाल्पनिक बात भी नहीं है और शायद विशेष दोष की भी बात नहीं है। यह स्त्री शायद अपने पति को एक क्षण के लिए समझ न सकी है, उसके कितने ही दिनों का कितना दुःखभार, कितना दबा हुआ झगड़ा, कितने ही छोटे-छोटे संघर्षों के काँटों से बिछे हुए शक्तिहीन दिन, कितनी ही वेदना-विक्षत दुखद स्मृतियाँ सविता के मानस-पटल पर सजीव हो उठीं।

इसी प्रश्न ने अब से अधिक मात्रा में सविता को बींध दिया। जो भार स्वभावतः उसका अपना ही है उसे यदि कोई अन्य ढो न सके तो उसे क्या दोष दिया जा सकता है, उनके अपराध के सिवा और किसका अपराध है। अधर्म की मार इतनी निर्दय होती है, अकेले इतना दुःख भी दुनिया में पैदा किया जाता है, उसकी मूर्ति ऐसी भद्दी है इसके पहले इस हद तक वे समझ सकी थीं, ग्लानि और व्यथा के भारी बोझ से उनकी साँस तक मानो रुक जाने लगी। तो भी प्राणपण बल से वे केवल यही मन-ही-मन कहने लगीं, 'इसका उपाय क्या नहीं है? दुनिया में चिरस्थायी तो कुछ भी नहीं है, केवल दुष्कृति ही इस जगत् में अविनश्वर है। कल्याण के सभी द्वार सदा के लिए बन्द करके क्या केवल वही रह जाएगी, किसी दिन भी क्या उसका नाश नहीं होगा?'

"माँ, बाबा आ गए हैं।"

सविता ने मुँह ऊपर उठाकर देखा, सामने व्रज बाबू खड़े हैं।

पलभर के लिए सब विघ्न-बाधा भूलकर वे उठकर खड़ी हुईं और बोलीं, "इतनी देर कैसे कर दी ? बाहर निकल जाने पर क्या तुम घर-गृहस्थी की सभी बातें भूल जाते हो ? देखो तो दिन कितना चढ़ आया है।"

ब्रज बाबू महाअप्रतिहत रूप से विलम्ब का विवरण देने लगे।

सविता ने कहा, "लेकिन अब देर न कर सकोगे। ठाकुरजी की पूजा आज संक्षेप में कर देनी पड़ेगी, यह मैं तुम्हें बतलाए देती हूँ।"

"ऐसा ही होगा नई-बहू, ऐसा ही होगा। रेणुका, दे तो बेटी मेरा अंगोछा, जल्दी स्नान कर आऊँ।"

"ना बाबा, तुम थोड़ा आराम करो। जो देर होनी थी वह हो चुकी। मैं तमाखू भर लाती हूँ।"

माँ और पिता दोनों ही बेटी के मुँह की ओर देखने लगे।

ब्रज बाबू ने कहा, "बेटी के बिना पिता के प्रति इतना दुःख और किसी को नहीं होता नई-बहू। उसके सामने तुम हार गईं।"

वे हँस पड़े।

सविता ने कहा, "हार जाने में कोई आपत्ति नहीं है मँझले मालिक, लेकिन यही एकमात्र सत्य नहीं है, दुनिया में एक ओर ऐसे पुरुष हैं जिनके सामने लड़की की भी आवश्यकता नहीं पड़ती, माँ की भी नहीं।"

वे भी हँसने लगीं।

यह हंसी देखकर ब्रज बाबू मानो चौंक पड़े, परन्तु और कोई बात न कहकर कुर्ता-धोती बदलने के लिए अपने कमरे में चले गए।

उस दिन खाना-पीना समाप्त हुआ। प्रायः दिन के अन्त में ब्रज बाबू बिछौने पर बैठकर तमाखू पी रहे थे। सविता कमरे में जाकर फर्श पर एक ओर दीवाल के सहारे बैठ गई।

ब्रज बाबू ने पूछा, "तुमने खा लिया ?"

"हाँ।"

"लड़की ने कोई भूल तो नहीं की ?"

"ना।"

कुछ देर चुप रहकर ब्रज बाबू ने कहा, "गरीब का घर है। कुछ नहीं है। शायद तुमको कष्ट हुआ हो नई-बहू।"

सविता ने पति के मुँह की ओर देखकर कहा, "यह नहीं होगा बाबू, तुम मुझे कड़ी बात सुना सकोगे। इतना ही मेरा अन्तिम विचार है। मरते समय यदि होश में रहूँगी तो केवल यही बात उस समय सोचूँगी कि मेरे समान पति दुनिया में किसी को कभी नहीं मिला।"

ब्रज बाबू के मुँह से लम्बी साँस निकल पड़ी। बोले, "तुम्हारे अपने खाने के कष्ट की बात मैंने नहीं कही नई-बहू। मैं कह रहा था कि आज यह भी तुमको अपनी आँखों से देखना पड़ा। तुम आ क्यों गईं?"

सविता ने कहा, "देखना आवश्यक है मँझले मालिक। नहीं तो शान्ति अधूरी रहती। तुम्हारे गोविन्द की एक दिन मैंने सेवा की थी, शायद वे ही खींचकर ले आये। बिल्कुल ही नहीं छोड़ सके हैं।"

यह कहते-कहते उनकी आँखों में आँसू भर आए। आँचल से उन्हें पोंछकर उन्होंने कहा, "अनन्य मन से यदि उनको चाहने लगूँ, मन में कहीं भी यदि कपट न रखूँ, तो वे क्या मुझे क्षमा नहीं करते मँझले मालिक?"

ब्रज बाबू ने कष्ट से आँसू रोककर कहा, "अवश्य ही करते हैं।"

"परन्तु मैं किस तरह जान सकूँगी?"

"यह तो मैं नहीं जानता नई-बहू। वह दृष्टि शायद वे ही देते हैं।"

सविता बड़ी देर तक मुँह नीचे झुकाये बैठी रही, फिर उसने मुँह ऊपर उठाया, पूछा, "आज तुम कहाँ गए थे?"

ब्रज बाबू ने कहा, "नन्द साहा के यहाँ मेरा कुछ रुपया पावना था।"

"दे दिया?" सविता ने पूछा।

"तुम क्या जानती हो···?"

"यह मैं सुनना नहीं चाहती, पूछती हूँ दिया या नहीं?"

ब्रज बाबू न देने का कारण खोलकर बताने में कितने ही दुःखी हो उठे। बोले, "आनन्दपुर के साहा लोगों को तुम जानती ही हो। वे लोग अति सज्जन धर्मभीरु आदमी हैं, लेकिन आजकल का समय ऐसा हो गया है कि मनुष्य इच्छा करने पर भी कुछ कर नहीं सकता। इसके अलावा नन्द साहा अब अन्धे हो गए हैं, व्यवसाय चला गया है भतीजों के हाथ में लेकिन देंगे एक दिन अवश्य ही।"

"यह मैं जानती हूँ, क्योंकि उनको मैं धोखा नहीं देने दूँगी। नन्द साहा

को मैं भूल नहीं गई हूँ।"

"क्या करोगी, दावा ?"

"हाँ, और कोई उपाय यदि न मिला।"

व्रज बाबू ने हँसकर कहा, "तुम्हारा स्वभाव तो रत्ती-भर नहीं बदला है।"

"कौन बदलेगा ? तुम्हीं लोगों का क्या स्वभाव बदल गया है ? बुरा समय किसका तुमसे अधिक है ? लेकिन तुम किसको धोखा दे सके हो ? मेरी तरह कृतघ्न का ऋण भी तुमने कौड़ी-कौड़ी देकर चुका दिया। उन लोगों को भी यही करना पड़ेगा। अन्तिम कौड़ी तक चुकाकर ही वे लोग छुटकारा पाएँगे।"

"तुम्हारा क्रोध उन लोगों पर किसलिए है ?"

"क्रोध तो नहीं है, यह मेरी ज्वाला है। तुमको भाई ने धोखा दिया, मित्रों ने धोखा दिया, स्वजनों ने, कर्मचारियों ने, पत्नी तक ने तुमको धोखा देना नहीं छोड़ा। इस बार उन लोगों के साथ मेरा समझना-बूझना है। तुम्हारे नए सम्बन्धी लोग मुझे पहचानते नहीं, लेकिन वे लोग मुझे पहचानते हैं।"

व्रज बाबू को बहुत दिन पहले की बातें याद आ गयीं।

उन दिनों भी एक बार वे डूबने लगे थे। तब इसी रमण ने हाथ पकड़कर उनको किनारे लगाया था।

उन्होंने कहा, "हाँ, वे लोग खूब पहचानते हैं। नई-बहू मर गई, यह जानकर जो लोग आराम में हैं, वे लोग कुछ डर जाएँगे। सोचेंगे, भूत का उपद्रव हो रहा है। शायद गया में पिण्ड देने के लिए दौड़ जाएँगे।"

सविता ने कहा, "वे लोग जैसी इच्छा हो करें मैं डरती नहीं, केवल तुम पिण्ड देने के लिए न दौड़ पड़ो तो उसी से हो जाएगा। यही मेरी चिन्ता है। स्वयं तो वह काम तुम न करोगे ?"

व्रज बाबू चुपचाप बैठे रहे।

"उत्तर क्यों नहीं दिया ?"

व्रज बाबू और भी कुछ देर उसके मुँह की ओर देखते रहे।

अपराह्न सूर्य का कुछ-कुछ प्रकाश खिड़की से फर्श पर फैल गया था।

उसकी और सविता की दृष्टि आकर्षित करके उन्होंने धीरे-धीरे कहा, "इसी तरह मेरा समय गिर चला नई-वहू, पावना समझने का अब समय नहीं रहा। लेकिन तुम्हारे अलावा दुनिया में शायद और कोई ऐसा नहीं है जो समझ सके कि मैं कितना दुःखी हो चुका हूँ। छुट्टी की अर्जी पेश करके बैठा हुआ हूँ, मंजूरी आने में देर नहीं है। जो कुछ मैं ले चुका हूँ, जो दे चुका हूँ, उसका हिसाब-किताव हो चुका है। हिसाब अच्छा नहीं हुआ है, यह मैं जानता हूँ, गड़बड़ी बहुत रह गई है, लेकिन तो भी जिरह मैं खींच न सकूँगा। अपना यह अनुरोध तुम वापस ले लो।"

सविता एक दृष्टि से देखती हुई पति की बातें सुन रही थी।

उसने केवल पूछा, "सचमुच ही क्या अब तुम न कर सकोगे मँझले मालिक? सचमुच ही तुम बहुत टूट गए?"

"सच ही बहुत टूट चुका हूँ नई-बहू। सचमुच ही अब न कर सकूँगा। कितना थका हूँ, यह तुम्हारे अलावा और कोई न जानेगा। वे लोग कहेंगे आलस्य, कहेंगे जड़ता, कहेंगे मेरे नैराश्य का दैन्य। वे लोग तर्क करेंगे, युक्ति देंगे, मार-मारकर अब भी छुड़ाना चाहेंगे—वे लोग केवल यही बात जान गए हैं कि मशीन में चाबी देने से ही चलने लगती है। लेकिन उसका भी तो अन्त है, इस पर तो वे लोग विश्वास नहीं कर सकते।"

"मैं विश्वास करूँ तो तुम प्रसन्न होगे?"

"प्रसन्न होऊँगा या नहीं, यह मैं नहीं जानता, लेकिन शांति अवश्य पाऊँगा।"

"अब तुम क्या करोगे?"

"रेणुका को साथ लेकर घर जाऊँगा। वहाँ सर्वस्व चले जाने पर भी जो कुछ बचा रहेगा उससे किसी प्रकार हम लोगों का खर्च चल जाएगा और जो लोग हमें छोड़कर कलकत्ते में रह गये हैं उनकी चिन्ता न रही, उसका तो तुम्हें पता है।"

"रेणुका का भार किसे दे जाओगे मँझले मालिक?"

"भगवान् को। उनसे बड़ा दूसरा आश्रय नहीं है। यह मैं जान गया हूँ।"

सविता मौन बैठी रही।

भगवान् में उनका अविश्वास नहीं है। परन्तु अपनी कन्या के सम्बन्ध में इतनी बड़ी निर्भयता से निश्चिन्त भी नहीं हो सकतीं। शंका से हृदय कांपने लगा। लेकिन इसका उत्तर क्या है, खोजने पर मिला भी नहीं। केवल जो बात उनके मन में दिन-रात काँटे की तरह बिंध रही थी, वही मुँह से निकल पड़ी।

वह बोलीं, "मँझले मालिक, मुझे रुपया तुमने क्या अपराध का दण्ड देने के लिए लौटा दिया? प्रतिशोध का क्या और कोई रास्ता तुमको खोजने से नहीं मिला?"

ब्रज बाबू ने कहा, "ना! तुम स्वयं ही कोई मार्ग बता दो। हम लोगों के रतन चाचा और चाची की बात तुमको याद है! वह इस अवस्था में क्या प्रसन्न हैं?"

इतने दुःख में भी सविता हंस पड़ी। लज्जा के साथ बोली, "छिः! छिः! कैसी बात तुम कहते हो!"

ब्रज बाबू ने कहा, "तो तुम क्या करने को कहती हो? नई-बहू गहना चुराकर भाग गई है, इसीलिए क्या पुलिस में भेज दूं?"

इतना हास्यकर प्रस्ताव था कि कहने के साथ ही दोनों हँस पड़े।

सविता ने कहा, "तुम्हारी जितनी कल्पनाएँ हैं सब अनोखी हैं।"

बरसों के बाद दोनों की रहस्योज्ज्वल थोड़ी-सी हँसी की किरण से कमरे का घना अन्धकार मानो कुछ दूर हो गया।

ब्रज बाबू ने कहा, "दण्ड का विधान सभी का एक नहीं होता नई-बहू। दण्ड यदि देना ही हो तो तुमको और क्या दण्ड दे सकता हूँ? जिस रात को तुम अपनी गृहस्थी को पैरों से ठेलकर चली गईं, उसी दिन मैंने निश्चय कर लिया था कि फिर यदि कभी भेंट होगी तो तुम्हारा जो कुछ मेरे पास रह गया है उसे वापस देकर मुक्त हो जाऊंगा।"

सविता को पति की एक बात याद पड़ गई। वे उन दिनों प्रायः ही कहा करते थे, ऋण छोड़कर मरना नहीं चाहिए नई-बहू। वह दूसरे जन्म में भी आकर अपनी माँग रखता है। इसी बात का उनको भय है। किसी भी सूत्र से दोनों की भेंट फिर न होने पाए—जिससे सभी सम्बन्ध यहीं पर चिरकाल के लिए टूट जाएँ।

सविता ने कहा, "मैं समझ गई मँझले मालिक। इस जन्म में और उस जन्म में फिर मेरा कोई दावा तुम्हारे ऊपर न रह जाय—सब ही समाप्त हो जाय—यही न ?"

व्रज बाबू चुप। जो अन्धकार अभी-अभी हट गया था वह फिर इस मौन के बीच हजारों गुना बढ़कर वापस चला आया।

पति की ओर फिर वह देख न सकीं। आँखें झुकाए मृदु कण्ठ से उन्होंने पूछा, "तुम लोग घर कब जाओगे मँझले मालिक ?"

"जितना शीघ्र जा सकूँ।"

"तो अब मैं जाऊँ?"

"जाओ।"

सविता उठ खड़ी हुई। समझ गई, सब खत्म हो गया है। उस भूकम्प की रात को रसातल का गर्भ चीरकर जो पाषाण-स्तूप ऊपर फेंके जाकर दोनों के बीच व्यवधान बना दिया था, वह आज भी उसी प्रकार अक्षय ही बना हुआ है, उसका तिल-भर भी नष्ट नहीं हुआ है। यह निरीह शान्त मनुष्य इतना कठोर हो सकता है, आज के पहले इस बात को उसने कब सोचा था।

बाहर जाते-जाते सविता सहसा ठिठककर खड़ी रह गई। बोली, "मुक्ति न पाओगे मँझले मालिक, तुम हो वैष्णव, कितने मनुष्यों के कितने ही अपराधों को तुमने अपने जीवन में क्षमा कर दिया है परन्तु मुझे क्षमा न कर सके। यह ऋण तुम्हारा रह गया। एक दिन शायद यह जान जाओगे।"

व्रज बाबू उसी प्रकार मौन रहे।

संध्या हो चली। जाते समय रेणुका ने माँ को प्रणाम किया, लेकिन कुछ कहा नहीं। यह नीरवता का मन्त्र उसने भी शायद अपने पिता से ही सीखा है।

शारदा को साथ लेकर सविता बाहर चली गई। कार पर सवार होते ही निगाह पड़ गई कि राखाल तारक को साथ लेकर तेजी से उसी ओर आ रहा है।

तारक ने कहा, "नई-माँ, एक बार उतरकर खड़ा होना पड़ेगा। मैं प्रणाम करूँगा।"

सविता का बातचीत करना कठिन था। इशारे से दोनों को गाड़ी पर सवार होने को कहकर किसी तरह केवल इतना ही कहा, "आओ वेटा, मेरे साथ तुम लोग भी चलो।"

तेरह

एक सप्ताह पूर्व राखाल ने आकर कहा था—"नई-माँ, सत्रह नम्बर घर में आप तो जाएँगी नहीं—आज शाम को यदि मेरे घर आकर अपनी पद-धूलि दें।"

"क्यों राजू ?"

"बावा के लिए कुछ फल-मूल खरीद लाया हूँ—इच्छा है कि उनको थोड़ा जलपान कराऊँ—वे आने को राजी हो गए हैं।"

"क्या मुझको उन्होंने बुलाया है ?"

"वे भले ही न बुलाएँ, मैं तो बुला रहा हूँ माँ। कल वे लोग चले जाएँगे गाँव। उन लोगों को ट्रेन पर चढ़ाना भी है।"

सविता जानती थी कि ब्रज बाबू कहीं भी कुछ नहीं खाते, उनको राजी करने के लिए राखाल को बहुत प्रयत्न करना पड़ा है—शायद उसने सोचा है कि इस उपाय से ही दोनों की भेंट फिर हो जाए।

राखाल के आवेदन के उत्तर में सविता को उस दिन बहुत चिन्ता करनी पड़ी थी। स्नेह से उसकी ओर देखकर उसने कहा, "ना वेटा, मैं जाऊँगी नहीं। मुझे देखकर वे सिर्फ दुःख ही पाते हैं, उनको मैं और दुःख देना नहीं चाहती।"

एक सप्ताह बीत चुका है।

राखाल से सूचना मिली है कि ब्रज बाबू लड़की को लेकर गांव चले गए हैं। उनके इस विवाह की स्त्री, कन्या रह गई है कलकत्ते में अपने भाई के संरक्षण में।

राखाल ने कहा है कि उन लोगों को कोई रंज नहीं है, क्योंकि रुपये का कष्ट नहीं है। मकान के किराये से इन दोनों का समय अच्छी प्रकार कटेगा। जेवर की पूँजी भी तो है।

साँझ को एकाकी बैठी सविता इन्हीं बातों को सोच रही थी। बारह वर्षों तक चलने वाला प्रतिदिन का सम्बन्ध, फिर भी कितना शीघ्र, कितने सहज में ही वह दूर हो जाता है। उनका अपना भाग्य किस दिन फूट गया उस दिन सवेरे भी वह जानती नहीं थीं, रात भी कटेगी नहीं, सब छोड़कर उन्हें मार्ग में निकल जाना पड़ेगा। अत्यन्त दुःख-स्वप्न में भी क्या सविता कल्पना कर सकती थी कि इतनी बड़ी हानि कोई सहन कर सकता है? फिर भी सहनी ही तो पड़ी। बारह वर्ष बीत गए लेकिन आज भी वे उसी तरह जीवित हैं, उसी तरह दिन-पर-दिन बिना बाधा के कटते गए, कहीं भी रुकने का काम नहीं।

यह विडम्बना क्यों आ गई इसका कारण वह आज तक भी स्वयं नहीं समझ पाई। जितना ही सोचती रही है, आत्मधिक्कार से जल-भुनकर जितनी बार अपना विचार आप ही करने गई है उतनी ही बार उसको मालूम होता रहा है कि इसका अर्थ नहीं है, कारण नहीं है—इसका मूल अनुसन्धान करने जाना व्यर्थ है। या शायद ऐसा ही यह संसार है—अघटन इसी प्रकार अकारण ही घटित होकर जीवन-स्रोत दूसरी ओर बह जाता है। मनुष्य की बुद्धि कहाँ अन्धी होकर मर जाती है, नालिश करने को जाने पर असामी का पता नहीं मिलता।

रमण बाबू ने भी आना-जाना छोड़ दिया। वह आएँ यह इच्छा भी सविता नहीं करती, विस्मित होकर सोचती है कि मना करते ही क्या सब सम्बन्ध समाप्त हो गया। एकत्र-वास के निरन्तर बारह वर्ष के क्या कोई चिह्न ही कहीं शेष नहीं रह गए—सब एकदम पुछ गए। शायद यह दुनिया ऐसी ही है। लेकिन यहाँ क्या केवल अपचय ही है? उपचय कहीं नहीं है? केवल क्षति ही है? तो फिर क्यों शारदा उसके पास आ पड़ी? उसकी लड़की के समान—माँ के समान। घर के अनेक किरायेदारों में वह भी एक थी। केवल नाम जाना हुआ था, चेहरा पहचाना हुआ था। कभी उसे सीढ़ियों पर देखा था, कभी आँगन में और कभी चलते-फिरते मार्ग में वह

संकोच के साथ हट गई है, आँखों में आँखें डालकर देखने का साहस नहीं किया। अकस्मात् ऐसी क्या बात हुई, किसने सविता के अन्तस्तल में उसका घर बना दिया। किन्तु यही क्या चिरस्थायी है ? कौन जाने कब वह घर मिटाकर इसी प्रकार सहसा अदृश्य हो जाएगी ?

एक आदमी और भी आएँ हैं, विमल बाबू। मृदुभाषी, धीर प्रकृति के आदमी। थोड़ी देर के लिए आकर रोज खबर ले जाते हैं कि कहाँ कौन जरूरत है। हित चाहने की अत्यन्त अधिकता से उपदेश की धूमधाम नहीं है, वक्तृता के आडम्बर के साथ बैठकर बातचीत करने का आग्रह नहीं है, कुतूहल-कटुता के साथ बाल की खाल निकालने वाले प्रश्न करने की प्रवृत्ति नहीं है। दो-चार साधारण बातें करके ही चले जाते हैं। समय जैसे उनका बँधा हुआ है। नियम और संयम के शासन ने जैसे इस मनुष्य के सभी कामों को, सभी व्यवहारों को बड़ी मर्यादा दे रखी है। फिर भी उनकी दृष्टि से सविता डरती है। वह दृष्टि भूखे शिकारी पशु की नहीं है, वह दृष्टि सीधे आदमी की है, इसी से भय है। उन आँखों में है आर्त की प्रार्थना, उन्माद का व्यभिचार नहीं है—केवल इसी कारण उसे शंका है—कहीं असावधानी में इसी मार्ग से कभी पराभव न आ जाए।

उनके आने पर दोनों में इस प्रकार बात होती है—

पूर्व की ओर के ढके हुए बरामदे में एक बेंत की कुर्सी खींचकर बैठकर विमल बाबू कहते हैं, "आज कैसी तबीयत है ?"

सविता कहती है, "अच्छी ही तो है।"

"लेकिन वैसी अच्छी तो दिखाई नहीं देती ? मुँह कैसा सूखा-सूखा है।"

"ना।"

"ना कहने से नहीं मानूँगा। खाने-पीने की सही व्यवस्था नहीं करतीं। अवहेलना करने से भला शरीर कैसे टिकेगा ? दो ही दिन में टूट जाएगा।"

"ना। मेरा शरीर बहुत बलवान है।"

विमल बाबू इसके उत्तर में थोड़ा हँसकर कहते हैं, "शरीर बलवान है मानो एक आफत बन गया है। उसे तोड़ डालने की इस समय आवश्यकता है—क्यों ? कहिए तो सच है न ?"

सविता बड़ी कठिनाई से आँसू रोककर चुप हो जाती है।

विमल बाबू कहते हैं, "मोटर योंही पड़ी है, बेकार ड्राइवर को वेतन देती हैं। तीसरे पहर जरा हवा खाने क्यों नहीं निकल जातीं?"

"खाली घूमने तो मैं कभी नहीं जाती विमल बाबू।"

विमल बाबू फिर जरा हँसकर कहते हैं, "यह ठीक है। बिना काम के घूमने का अभ्यास मुझे भी नहीं है। आज राखाल बाबू आए थे?"

"ना।"

"कल भी तो नहीं आए थे?"

"ना, चार-पाँच दिन से उसे नहीं देखा। शायद किसी और फालतू काम में फँसा है।"

"फालतू काम में? यही उसका स्वभाव है क्या?"

"हाँ, यही उसका स्वभाव है। बिना किसी स्वार्थ के परायी बेगार करने में वह बेजोड़ है।"

विमल बाबू अन्यमनस्क भाव से कुछ देर चुप बैठे रहते हैं।

दूर पर शारदा दीख पड़ती है। वह हाथ के इशारे से बुलाते हैं। कहते हैं, "आज तुमने मुझे पीने के लिए पानी नहीं दिया बेटी! तुम्हारे हाथ के पानी और पान के बिना मुझे तृप्ति नहीं होती।"

शारदा पानी और पान लाकर देती है। वह गिलास का पानी समाप्त करके और पान मुँह में देकर उठ खड़े होते हैं। कहते हैं, "अच्छा तो आज चलता हूँ।"

सविता स्वयं उठ खड़ी होती है और कहती है, "अच्छा।"

तीन-चार दिन इसी प्रकार की बातचीत चलने के बाद उस दिन विमल बाबू जब उठने लगे तो सविता ने कहा, "आज मैं आपके काम की थोड़ी हानि करूँगी। अभी न जा सकेंगे, जरा बैठना होगा।"

विमल बाबू बैठ गए। बोले, "यह आपसे किसने कहा कि जरा बैठने से मेरे काम में हानि होगी?"

सविता ने कहा, "किसी ने कहा नहीं, मेरा अनुमान है। आपको कितने ही काम हैं—व्यर्थ समय तो नष्ट होगा ही?"

विमल बाबू ने कहा, "यह मैं नहीं जानता। लेकिन क्या इसीलिए आप मुझसे किसी दिन बैठने के लिए नहीं कहती? सच बताइएगा?"

यह बात सच नहीं है, किन्तु सविता ने इसके लिए बहस नहीं की। बोली, "रमण बाबू से आपकी भेंट होती है ?"

"हाँ, अक्सर होती है।"

"वह अब यहाँ नहीं आते—आप जानते हैं ?"

"जानता क्यों नहीं ?"

"अब क्या वह इस घर में नहीं आएँगे ?"

"यह मुझे नहीं मालूम। जान पड़ता है, आप बुला भेंजें तो आ सकते हैं।"

क्षण-भर चुप रहकर सविता ने कहा, "आज सवेरे की डाक से एक दस्तावेज आई है। यह घर रमण बाबू ने मेरे हाथ बेचकर बिक्री-कबाला की रजिस्ट्री कर दी है। आप जानते हैं ?"

"जानता हूँ।"

"यदि देने की इच्छा थी तो सीधे दान-पत्र न करके बिक्री करने का बहाना क्यों किया ? दान तो मैंने दिए नहीं।"

"किन्तु दान-पत्र अच्छी चीज नहीं है।"

सविता ने कहा, "यह मैं जानती हूँ विमल बाबू। मेरे स्वामी थे व्यापारी आदमी—उस समय उनके सभी कामों में मेरी पुकार होती थी। यह मुझे मालूम है कि मुझे दान करने का कारण दिखाने में ऐसी सब बातें लिखनी होतीं जो किसी स्त्री के लिए गौरव की नहीं हैं, तो भी मैं कहती हूँ कि इस मिथ्या से वही अच्छा था।"

इसके पहले ऐसा कोई कारण भी नहीं हुआ था और इस तरह सविता ने बातचीत भी नहीं की थी।

विमल बाबू मन-ही-मन चंचल हो उठे। बोले—"बात एकदम झूठ भी नहीं है नई-बहू।"

यह 'नई-बहू' सम्बोधन नया था। सविता का मुख देखकर यह नहीं जान पड़ा कि वह प्रसन्न हुई, किन्तु कण्ठ-स्वर के सहज भाव को वैसा ही बनाए रखकर कहा, "ठीक इसी बात का मैंने सन्देह किया था विमल बाबू। दाम आपने दिए हैं, लेकिन क्यों दिए ? उनका दान लेने में तो एक सांत्वना भी थी, किन्तु आपका देना तो निरा भीख देना है। यह मैं क्यों लूँगी, बताइए ?"

विमल बाबू सिर झुकाए बैठे रहे।

सविता ने कहा, "उत्तर न देने पर मैं दस्तावेज लौटाकर चली जाऊँगी विमल बाबू !"

अबकी सिर उठाकर विमल बाबू ने देखा। बोले, "इसी भय से दाम दिए हैं कि आप कहीं चली न जाएँ। बिना दिए रह नहीं सका, इसी से आपका घर मोल ले लिया है।"

"उन्होंने रुपये ले लिए ?"

"हाँ, रमण बाबू को रुपयों की तंगी हो गई थी। वह और सँभाल नहीं पा रहे थे।"

सविता कुछ देर चुप रहकर बोली, "मुझको भी कुछ सन्देह हो रहा था, लेकिन इतना नहीं सोचा था। सुना है, आपके बहुत रुपये हैं। उतने रुपये शायद आपके लेखे कुछ नहीं हैं। तो भी वास्तविक बात तो शेष ही रह गई विमल बाबू ! आप दे सकते हैं, लेकिन मैं लूँगी कैसे ? ना, यह न होगा। बार-बार चुप रहकर उत्तर टाल जाने से मैं नहीं मानूँगी। बताइए।"

विमल बाबू ने धीरे-धीरे कहा, "एक सच्चे मित्र का उपहार मानकर भी तो ले सकती हैं।"

सविता ने उनसे नजर मिलाकर जरा हँसकर कहा, "लेना हो तो विवरण की कमी नहीं होती, यह मैं जानती हूँ। आप मेरे मित्र नहीं हैं, यह भी मैं नहीं कहती। किन्तु इस बात को छोड़िए। यहाँ पर और कोई नहीं है, केवल आप हैं और मैं हूँ। मुझसे कहने में संकोच हो, यह अधिकार पुरुष के निकट अब मेरा नहीं है। बताइए तो यह क्या सच है ? यही क्या आपके मन की बात है ?"

क्षण-भर विमल बाबू सिर उठाकर ताकते रहे। फिर बोले, "मन की बात आपको क्यों जताऊँगा ? जताने में तो लाभ नहीं है।"

"लाभ नहीं है, यह भी जानते हैं ?"

"हाँ, यह भी जानता हूँ।"

सविता ने अपनी साँस को दबा लिया। इस मितभाषी मनुष्य के प्रति-दिन के आचरण को स्मरण करके उसकी आँखों में आँसू आने लगे। उन्हें

रोककर उसने कहा, "मेरे जीवन के इतिहास को आप जानते हैं विमल बाबू ?"

"ना, नहीं जानता। सिर्फ जो कुछ हुआ, जिसे अनेक लोग जानते हैं, मैं भी केवल उतना ही जानता हूँ नई-बहू—उससे अधिक नहीं।"

सविता सुनकर चौंक उठी। बोली, "तो क्या जो हुआ वह मेरे जीवन का इतिहास नहीं है विमल बाबू? ये दोनों चीजें क्या एकदम अलग हैं? सच-सच बताइए तो?"

उसके प्रश्न की व्याकुलता से विमल बाबू दुविधा में पड़ गए, किन्तु वैसे ही बिना किसी संकोच के कह उठे, "हाँ, ये दोनों चीजें एक नहीं हैं नई-बहू। कम-से-कम अपने जीवन से यही बात आज बिना किसी संशय के जान पाया हूँ कि ये दोनों एक नहीं हैं।"

इसका अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ, फिर भी इस बात ने सविता के हृदय में गहरी चोट की। मन-ही-मन में उसने बड़ी देर तक आन्दोलन करके कहा, "सुना तो है आपने कि मैं पति को छोड़कर रमण बाबू के साथ चली आई थी—फिर उस दिन उनका भी त्याग कर दिया है। मैं तो अच्छी औरत नहीं हूँ—फिर एक दिन अन्य पुरुष के साथ जा सकती हूँ, यह बात क्या आपके मन में नहीं आती?"

विमल बाबू ने कहा, "नहीं। यद्यपि उसने आना चाहा था पर उसी समय हटा भी दिया है।"

"क्यों?"

विमल बाबू ने हँसकर कहा, "यह प्रश्न तो बच्चों का-सा हुआ। उसने यह किया है, अतएव उसे यही करना चाहिए, यह उत्तर आपको बच्चों के पढ़ने की पुस्तकों में मिलेगा। मैंने उससे अधिक पढ़ा है नई-बहू।"

"किसने पढ़ाया?"

"पढ़ाने वाला कोई एक नहीं है। कक्षा में घण्टे-घण्टे में मास्टर बदले जाते हैं। उनमें से कोई याद है और कोई याद नहीं है। लेकिन जो हैड-मास्टर हैं, जिन्होंने परखकर इन सब मास्टरों को नियुक्त किया था, उनको तो देखा नहीं, फिर आपके आगे उनका नाम कैसे लूं—बताइए?"

क्षण-भर सोचकर सविता ने कहा, "जान पड़ता है, आप खूब धार्मिक

हैं। क्यों विमल बाबू ?"

विमल बाबू ने पूछा, "धार्मिक मनुष्य आप किसे कहती हैं? आपके पति के समान ?"

सविता ने चकित होकर प्रश्न किया, "उन्हें क्या आप पहचानते हैं? उनके साथ परिचय है क्या ?"

विमल बाबू ने उसके उद्वेग को महसूस किया, किन्तु पहले के ही समान संयत स्वर में कहा, "हाँ, जानता हूँ। एक दिन किसी तरह कुतूहल को दबा न सका, उनके पास गया। बड़ा प्रयत्न करने पर मिलन हुआ, बातचीत भी बहुत कुछ हुई। नई-बहू! उन्होंने जिस भाव से धर्म को लिया है, मैंने उस भाव से नहीं लिया। उन्होंने जैसा समझा है, वैसा मैंने नहीं समझा। उस विषय में हम लोगों का कोई मेल नहीं है। मैं धार्मिक मनुष्य नहीं हूँ।"

सविता के हृदय में आवेग और उत्तेजना से हलचल मच गई। यह समझना शेष नहीं रहा कि सारे कुतूहल का मूल कारण वह आप है। वह रुक नहीं सकी, पूछ बैठी, "वहाँ पर मेल न हो, किन्तु क्या कहीं पर आप दोनों मेल नहीं खाते? दोनों का स्वभाव क्या बिल्कुल विपरीत है ?"

विमल बाबू ने कहा, "इसका उत्तर देने का समय अभी नहीं आया।"

"कम-से-कम यह तो बताइए कि यह बात भी तब मन में नहीं आई कि इस आदमी को कोई त्यागकर कैसे चली गई ?'

विमल बाबू ने हँसकर कहा, "कोई माने, आप ही तो? किन्तु आप तो त्यागकर नहीं चली आईं। सभी ने मिलकर चले आने के लिए लाचार किया था।"

"यह भी आपने सुना ?"

"क्यों नहीं सुना।"

"सभी कुछ ?"

"हाँ, सभी कुछ सुना है।"

सविता की आँखों में आँसू भर आए। बोली, "उन लोगों को मैं दोष नहीं देती, उन्होंने अच्छा ही किया था। स्वामी के संसार को अपवित्र न करके मुझे आप ही चले आना चाहिए था।" उसने आँचल से आँसू पोंछ डाले। फिर थोड़ी देर बाद कहा, "लेकिन इतना सब जानकर भी आप मुझे

क्यों प्यार करते हैं—बताइए तो ?"

"प्यार करता हूँ, यह बात तो अभी तक मैंने नहीं कही नई-बहू !"

"हाँ। आपने कही नहीं, इसी से तो इस बात को इस प्रकार सच्चे रूप में जान पाई हूँ विमल बाबू। किन्तु सोचती हूँ कि जिस आदमी ने इतना देखा है, मेरी सभी बातें जो सुन चुका है, उसने मुझसे क्या समझकर प्रेम किया ? अवस्था मेरी ढल चुकी है, रूप भी नहीं रहा—जो कुछ शेष है, वह भी दो दिन में समाप्त हो जाएगा—उसको आदमी क्या सोचकर प्रेम कर सका ?"

विमल बाबू ने उसकी ओर देखकर कहा, "यदि मैंने प्रेम ही किया हो नई-बहू, तो वह शायद संसार में बहुत कुछ देख चुकने से ही सम्भव हुआ है। पुस्तक में पढ़े हुए पराये उपदेश जो मानकर चलता होता तो शायद न कर सकता। किन्तु वह रूप और यौवन का लोभ नहीं है, यही बात यदि आपने सचमुच समझ ली हो, तो मैं कृतज्ञ हूँ।"

सविता ने सिर हिलाकर कहा, "हाँ, यह बात सचमुच समझ गई हूँ, किन्तु मैं पूछती हूँ, मुझे पाकर आपको क्या लाभ होगा ? मुझे लेकर क्या करेंगे ?"

विमल बाबू चुपचाप उसकी ओर ताकते रहे। धीरे-धीरे वह दृष्टि जैसे व्यथा से भर गई। सविता अधीर होकर बोली, "इस प्रकार क्या केवल ताकते ही रहेंगे, मेरी बात का उत्तर न देंगे ?"

"इसका उत्तर मेरे पास नहीं है नई-बहू। मैं केवल यह जानता हूँ कि आपको मैं नहीं पाऊँगा—मेरे लिए पाने का मार्ग नहीं है।"

"क्यों नहीं है ? आपने यह बात कैसे समझी ?"

"समझा हूँ अनेक दुःख पाकर। मैं भी निष्कलंक नहीं हूँ नई-बहू। एक दिन अनेक औरतों को ही मैंने जाना था। उस दिन ऐश्वर्य के बल उन्हें छोटा करके लाया था—वे स्वयं भी छोटी हो गईं और मुझे भी वही बना दिया। वे अब नहीं हैं—कौन कहाँ बह गई, इसकी भी सूचना आज नहीं है।" जरा रुककर बोले, "तब इस खेल में उतरने में मुझे कुछ रुकावट नहीं हुई, लेकिन आज पग-पग पर बाधा है।"

सविता ने सिहरकर प्रश्न किया, "केवल ऐश्वर्य से ही उनको फुसलाया

था ? किसी से वास्तविक प्रेम नहीं किया ?"

विमल बाबू ने कहा, "किया क्यों नहीं। एक स्त्री आपकी ही तरह घर छोड़कर मेरे पास आई थी, लेकिन खेल समाप्त हो गया—उसे नहीं रख सका। मैं उसे दोष नहीं देता। किन्तु आज यह मुझे समझने को नहीं है कि प्यार के धन को छोटा करके नहीं रखा जा सकता, उसे खोना ही पड़ता है। उस दिन रमण बाबू को भी तो इसी प्रकार खोते देखा है।"

सविता ने प्रश्न किया, "यही क्या आपको भय है ?"

विमल बाबू बोले, "भय नहीं है नई-बहू, अव यही मेरा व्रत है—उस व्रत से डिगूँ नहीं, यही मेरी साधना है। आपकी लड़की को मैंने देखा है, आपके स्वामी को देख आया हूँ। किस प्रकार सर्वस्व देकर, ऋण चुकाकर वह चले गए हैं, यह भी जान चुका हूँ, सुनने को मुझे कुछ शेष नहीं है। इसके पश्चात् मैं आपको कैसे पाऊँगा ?द्वार जो बन्द है। मैं जानता हूँ, छोटा करके आपको मैं किसी दिन न पा सकूँगा और इससे भी वढ़कर यह जानता हूँ कि छोटा न करके भी आपको पाने का तनिक भी मार्ग मेरे लिए खुला नहीं है। इसी से तो मैंने कहा था नई-वहू, कि आप मुझे अपना सच्चा मित्र मानकर ग्रहण कर लीजिए। यह घर उसी मित्र का दिया उपहार है। यह आपको छोटा करने का कौशल नहीं है।"

सविता सिर झुकाये चुप बैठी रही। कितनी बातें उसके मन में आईं-गईं, इसका कुछ ठिकाना नहीं। फिर सिर उठाकर उसने कहा, "यह मित्रता कितने दिन चलेगी विमल बाबू ? यह मिथ्या का आवरण क्यों टिकने लगा ? नर-नारी के मूल सम्बन्ध में यह एक दिन हम लोगों को खींचकर नीचे उतार ही देगा। इसे कौन रोकेगा ?"

विमल बाबू ने कहा, "मैं रोकूँगा नई-बहू। आपकी अपेक्षा करता रहूँगा। किन्तु आपके मन को भुलाने का आयोजन नहीं करूँगा। यदि कभी अपना परिचय पाइए, मेरी तरह दोनों आँखों से देखकर दृष्टि यदि कभी वदले, तो मुझे अपने पास बुलाइएगा—जीता रहा तो दौड़ा आऊँगा—छोटा करके लेने के लिए नहीं—आऊँगा पलकों पर बिठाने के लिए।"

सविता की आँखें छलछलाने लगीं। वोली, "आपका परिचय पाने को अब शेष नहीं है विमल बाबू। आँखों की यह दृष्टि इस जीवन में नहीं

बदलेगी। केवल आशीर्वाद दीजिए कि जो दुःख स्वयं ही बुलाकर लाई हूँ, उसे सह सकूँ।"

विमल बाबू के नेत्र भी सजल हो उठे। बोले, "दुःख कौन देता है, किधर से वह आता है, यह आज भी मुझे नहीं मालूम, इसी से आपके अपराध का विचार करने नहीं बैठूंगा, केवल प्रार्थना करूँगा कि वह दुःख चाहे जिस प्रकार आया हो, चिरस्थायी न हो।"

"लेकिन चिरस्थायी ही तो हो गया है।"

"यह भी नहीं जानता नई-बहू। मेरी आशा यह है कि संसार में अभी तुम्हें जानने को कुछ शेष है, अभी तुम्हारा सब-कुछ देखना यहीं समाप्त नहीं हो गया। आशीर्वाद देता हूँ कि तुम उस दिन सहज ही में इस दुःख का एक किनारा देख पाओ।"

सविता ने उत्तर नहीं दिया। फिर दोनों जने कई मिनट तक मौन रहे। सविता ने जब सिर उठाया, तब उज्ज्वल दीपक के प्रकाश में देखा गया कि उसकी पलकें आँसुओं से भीगकर भारी हो उठी हैं। उसने धीमे स्वर में कहा, "तारक बर्दवान के किसी गाँव में मास्टरी करता है। उसने मुझे वहाँ बुलाया है। कुछ दिन के लिए उसके पास चली जाऊँ?"

"अवश्य।"

"तुम क्या कलकत्ते में ही रहोगे?"

"रहना ही होगा। यहाँ एक नया कार्यालय खोला है, उसका बहुत-सा काम शेष है।"

सविता ने जरा हँसकर कहा, "रुपये तो बहुत इकट्ठे कर लिए हैं—अब और इकट्ठा करके क्या करेंगे?"

विमल बाबू प्रश्न सुनकर हँसे। बोले, "जमा नहीं किए, वे आप ही जमा हो गए हैं नई-बहू, क्योंकि मैं उन्हें रोक नहीं सका। क्या करूँगा, यह नहीं जानता। सोचा है, समय होने पर एक आदमी से उनका प्रयोजन सीख लूँगा।"

सविता ने उठकर खिड़की खोल दी। फिर कहा, "इस घर की अब मुझे आवश्यकता नहीं थी।—सोचा था, अच्छा ही हुआ जो गया। एक झंझट मिटा। परन्तु तुमने यह नहीं होने दिया। किरायेदार रहे, इनको देखना।"

"देखूंगा।"

"और एक अनुरोध है; मेरी लड़की और मेरे स्वामी वनवास में हैं। यदि समय मिले तो उनकी कुछ सुध-बुध लेना।"

विमल बाबू ने हँसते हुए जरा गर्दन हिलाई, कुछ कहा नहीं। इसका क्या अर्थ है, यह सविता ठीक समझी नहीं, किन्तु हृदय के भीतर जैसे आनन्द की आँधी दौड़ गई। दोनों हाथ जोड़कर माथे पर लगाये, यह स्वामी के लिए या विमल बाबू के लिए यह शायद वह स्वयं भी नहीं जान पाई। घड़ी-भर चुप रहकर उनके मुख की ओर ताककर कहा, "अपने स्वामी की बात एक दिन तुमको अपने मुँह से ही सुनाऊँगी। उसे केवल मैं ही जानती हूँ और कोई नहीं। लेकिन मैं तुमसे पूछती हूँ, मैं जब बाप के घर छोटी थी, तब तुम क्यों नहीं आए, बताओ तो ?"

विमल बाबू ने हँसकर कहा, "इसका कारण यह है कि जिन्होंने आज मुझे भेजा है, उन्हें उस दिन इसका ध्यान न था। उसी भूल का बकाया चुकाने में हम लोगों के प्राणों पर बीत रही है, किन्तु जान पड़ता है—इसी प्रकार उस बूढ़े विधाता के विचित्र ध्यान का रस जम उठता है, कभी उससे भेंट हो तो हम दोनों नालिश पेश कर देंगे। क्यों, ठीक है न ?"

शारदा को कई बार आते-जाते देखकर, उसे पास बुलाकर कहा, "तुम्हारी माँ के भोजन में देर हो गई है, क्यों बेटी ? अब उठना चाहिए।"

शारदा अत्यन्त अप्रतिभ होकर बार-बार प्रतिवाद करके कहने लगी, "ना-ना, देर हो गई है आपको। आपको आज भोजन करके जाना होगा।"

विमल बाबू हँसकर उठ खड़े हुए। बोले, "तुम्हारी केवल यही बात मैं न रख सकूँगा बेटी। मुझे बिना खाए ही जाना होगा। जाता हूँ।"

सविता ने उठकर नमस्कार किया, किन्तु शारदा के भोजन करने के अनुरोध में सम्मिलित नहीं हुई।

विमल बाबू सदा की तरह आज भी प्रति-नमस्कार करके धीरे-धीरे नीचे उतर गए।

चौदह

रमण बाबू ने आना छोड़ दिया, शायद झगड़ा हो गया। दोनों के बीच

सायास क्या बात हो गई यह किरायेदार समझ न पाए। आड़ से वे देखते हैं, सविता के शान्त उदास चेहरे में पहले की तुलना में कितना अन्तर है। जेठ का सूना आकाश आषाढ़ के सजल बादलों के बोझ से मानो झुककर उन लोगों के पास आ गया है। उसी प्रकार लताओं में, पत्तियों में, तृण-शस्यों में, पेड़-पेड़ में, अश्रुबाध्य की सकरुण स्निग्धता लगी हुई है, उसी तरह जल में, थल में, आकाश में, हवा में, सर्वत्र प्रकट हुआ है उसकी गुप्त वेदना का स्तब्ध इंगित। उनकी बातों में, आचरणों में किसी दिन भी उग्रता नहीं थी, तो भी किसी प्रकार के अपरिचित व्यवधान से वह इतने दिनों तक केवल दूर-ही-दूर रहती थी। अब वह दूरी मिटकर उसको खींचकर सबकी छाती के पास ले आई है। घर की स्त्रियाँ उस दिन यही बात शारदा से कह रही थीं। सोचती थीं, शायद अलगाव के दुःख ने ही उसको इस प्रकार बदल दिया है।

साधारणतः रमण बाबू अच्छे आदमी थे। न किसी की भलाई में, न बुराई में। बीच-बीच में किराया बढ़ाने की आवश्यकता की घोषणा करने के अलावा अन्य कार्य उन्होंने नहीं किया।

उनका चला जाना बहुतों को खटक रहा है, तो भी वे सोचते हैं कि उस जाने के कलंकित मार्ग में नई-माँ की सभी कालिख अगर इतने दिनों में धुल जाय तो शोक के बदले में वे लोग आनन्द ही अनुभव करेंगे।

यह मानो उनकी ग्लानि दूर हो जाने से वे लोग आप-ही-आप निर्मल होकर बच गए। केवल एक भय था कि यदि वे स्वयं न रहेंगे तो वे लोग ही कहाँ खड़ा रहने को स्थान पाएँगे। आज शारदा ने इसी सम्बन्ध में उनको निश्चित कर दिया। उसने कहा, "बुआजी, घर की एक व्यवस्था हो गई है। तुम लोग जिस तरह हो उसी तरह रहो, तुम लोगों को कहीं भी घर ढूंढ़ने की आवश्यकता न पड़े, माँ ने कह दिया है।"

"शायद माँ अब किसी दूसरी जगह न जाएँगी शारदा?"

"जाएँगी, लेकिन फिर लौट आवेंगी। उन्होंने कहा है, घर छोड़कर कहीं अधिक दिन नहीं रहेंगी।"

बुआजी के नयनों में प्रसन्नता के मारे जल भर आया।

शारदा को आशीर्वाद देकर वे यह शुभ समाचार दूसरों को देने चली गईं।

विमल बाबू के विदा हो जाने के बाद सविता सदा की भाँति अपने पूजा के कमरे में जाती है। पहले पूजा करने में उसका अधिक समय नहीं लगता था। किसी दिन रात्रि के दस बज जाते थे, किसी दिन ग्यारह। इस समय शारदा की छुट्टी रहती थी, वह नीचे जाकर अपना घरेलू काम-धन्धा करती।

आज कमरे में जाकर उसने देखा कि राखाल बिछौने पर बैठकर दीये की रोशनी में उसका लिखा हुआ कागज पढ़ रहा है।

उसने पूछा, "आप कब आए?" उसके बाद उसने कुण्ठित स्वर में कहा, "नहीं मालूम, कितनी भूल-चूक मुझसे हो गई हैं।"

राखाल ने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "होने पर भी भूल-चूक को मैं सुधार लूंगा, लेकिन देख रहा हूँ कि लिखावट तो कुछ भी आगे नहीं बढ़ी है।"

"ना, समय तो मिलता ही नहीं।"

"क्यों नहीं मिलता?"

"कैसे मिले बताइए न? माँ के कुल काम तो मुझे ही करने पड़ते हैं।"

"नई-माँ को नौकर-नौकरानियों की कमी नहीं है। उनसे कहतीं क्यों नहीं कि मुझे समय की आवश्यकता है, मुझको भी काम है। लेकिन यह बड़ा ही अन्याय है।"

राखाल के स्वर में तिरस्कार की ध्वनि थी, लेकिन शारदा का चेहरा देखने से ऐसा नहीं जान पड़ा कि वह जरा भी लज्जित हुई है।

उसने कहा, "आपका ही क्या कम अन्याय है देवता? भिक्षा का दान छिपाने के लिए व्यर्थ का बोझ लाद दिया है मेरे कन्धे पर। दूसरे को अकारण सताने से आप ही ज्वर से भोगना पड़ता है, कमरे में अकेले पड़े रहकर भोगना पड़ता है, टहल करने वाला कोई आदमी नहीं मिलता। इतने दुबले क्यों हो गए?"

राखाल ने कहा, "दुबला नहीं हूँ, ठीक ही हूँ। लेकिन लिखना व्यर्थ का काम कैसे हो गया?"

शारदा ने कहा, "व्यर्थ का काम नहीं है तो क्या है। ज्वर हुआ है, वह भी छिपा सकने के कारण। ऐसी ही दशा है, अच्छी बात है, उसे भले ही मैं

लिख डालूं, लेकिन वह आपके किस काम में आएगा, सुनूं तो ?"

"काम में न आएगा ? तुम क्या कह रही हो ?"

शारदा ने कहा, "यही कहती हूँ कि वह सब किसी भी काम में न लगेगा और लगे भी तो मेरा क्या ? मुझे आपने मरने नहीं दिया। अब बचा रखने की गरज आपकी है। एक वाक्य भी मैं नहीं लिखूंगी।"

राखाल ने कहा, "नहीं लिखोगी तो मेरा उधार रुपया अदा कैसे करोगी ?"

"उधार का रुपया अदा न करूँगी, कर्जदार ही बनी रहूँगी।"

राखाल की इच्छा हुई कि उसका हाथ अपने हाथ में खींचकर कह दे, ऐसा ही सही, लेकिन साहस न किया वरन् तनिक गम्भीर होकर ही उसने कहा, "जो कुछ तुमने लिखा है उसी से क्या तुम समझ नहीं सकतीं कि उन सबकी सचमुच ही आवश्यकता है ?"

शारदा ने कहा, "मुझे केवल हैरान करने की आवश्यकता है—और कुछ भी नहीं। केवल कुछ-कुछ रामायण-महाभारत की कथाएँ—यहाँ से ली गई हैं—वहाँ से ली गई हैं—ठीक मानो धार्मिक लीला के दल की वक्तृता है। यह सब किसलिए लिखूं ?"

राखाल उसकी बात सुनकर जितना आश्चर्य में पड़ गया उससे कहीं अधिक वह संकट में। वास्तव में लेख उसी श्रेणी के हैं, वह लीला के अभिनय रचता है, नकल कराकर लीला मंडलियों के अधिकारियों को देता है, यही है उसकी असल जीविका, लेकिन उपहास के भय से मित्रमण्डली में इसे प्रकट नहीं करता। कहता है कि लड़कों को पढ़ाता हूँ। लड़कों को पढ़ाता न हो ऐसी बात नहीं है, लेकिन इस आमदनी से उसके ट्राम का किराया भी नहीं जुटता। उसकी इच्छा नहीं है कि उपार्जन का यह रास्ता कहीं पकड़ में न आ जाय, मानो यह बहुत ही अप्रतिष्ठा और लज्जाजनक काम है।

उसके मन में यह सन्देह भी पैदा हुआ कि शारदा को कितनी अशिक्षिता कहकर प्रचार किया था, शारदा वह सच नहीं है। बिल्कुल झूठ है। क्रोध से मन जल उठा। शारदा के प्रश्न के उत्तर में कोई बात ढूंढ़ने पर नहीं मिली तो वह बोल उठा, "शारदा, पहले तो तुम बहुत ही भली मालूम पड़ती थीं, अचानक ऐसी दुष्ट हो कैसे गईं ?"

शारदा ने अपनी हँसी को दबाकर कहा, "मैं दुष्ट हो गई हूँ ?"

"हाँ। अच्छा, तुम्हारे विचार से आवश्यक काम क्या है जरा सुनूँ तो ?"

"बता रही हूँ। पहले यह बताइए कि छः-सात दिन आप क्यों नहीं आए ?"

"अस्वस्थ था।"

"झूठी बात।" यह कहकर शारदा उसके चेहरे की ओर कुछ देर तक चुपचाप देखती रही, फिर बोली, "हुआ था बुखार और वह भी बहुत तेज, तबीयत खराब कहकर बात छिपाना चाहते हो। आपकी बुढ़िया नौकरानी भी बीमार पड़ी हुई थी। स्टोव जलाकर अपने लिए साबूदाना तैयार करने की आवश्यकता पड़ी थी। सुनती हूँ आपके इष्ट-मित्र बहुत हैं, उनमें से किसी को आपने खबर क्यों नहीं भेजी ?"

यह प्रश्न राखाल के लिए नया नहीं—पिछले वर्ष भी प्रायः ऐसी ही अवस्था उत्पन्न हो गई थी। लेकिन वह चुप ही रहा। वह यह बात स्वीकार न कर सका कि दुनिया में जिसके मित्रों की संख्या अपरिमित है उसको ही दुःख के दिनों में बुलाने योग्य मित्रों का सबसे अधिक अभाव रहता है।

शारदा ने कहा, "उन लोगों को जाने दो, नई-माँ को सूचना क्यों नहीं दी ?"

राखाल ने आश्चर्य के साथ जवाब दिया, "नई-माँ! नई-माँ भला जाएँगी मेरे उस सड़े, टूटे-फूटे डेरे में सेवा करने? तुम क्या कह रही हो शारदा, इसका कोई ठिकाना ही नहीं है। लेकिन मेरी बीमारी की सूचना तुमको किसने दी ?"

शारदा ने कहा, "कोई भी क्यों न दे, लेकिन दुःख तो यह है कि उसने ठीक समय पर नहीं दी। सुनकर नई-माँ ने कहा था, 'राजू ने मेरी रेणुका को बचाया था, दिन के समय रसोई पकाकर, सबके मुँह में अन्न जुटाकर, रात को सारी रात जागकर, अपनी सारी पूंजी खोकर, डॉक्टर-वैद्यों को ऋण चुकाकर। और वह खुद ही जब बीमार पड़ गया तब स्वयं गया बुखार की प्यास बुझाने के लिए पाइप से पानी लाने, चूल्हा जलाकर स्वयं ही उसने भूख मिटाने के लिए पथ्य तैयार किया, उसने दवा नहीं पाई अपना आदमी

पास में न रहने के कारण। लेकिन मुझे वह सूचना क्यों देता बेटी—मुझ पर तो उसको विश्वास ही नहीं है।' " लड़की की बीमारी में दूसरे के नाम से जब वह सहायता माँगने आया था, उसे मैंने तो दी नहीं, यह सोचकर शारदा के नयनों से जल उमड़ चला।

वह फिर कहने लगी, "लेकिन वह नई-माँ की बात थी, मैंने क्या कसूर किया है देवता? आज तक भी रुपया अदा न कर सकी इसीलिए गुस्सा किया?"

राखाल हँसकर बोला, "यह तो तुमने चाय की प्याली में तूफान पैदा कर दिया शारदा। छोटी-सी बात को तुमने कितनी पेचीदा बना दिया है। ज्वर क्या किसी को नहीं होता? दो ही दिनों में वह अच्छा हो गया।"

शारदा ने कहा, "वह जो अच्छा हो गया, वह है भगवान् की कृपा हम लोगों पर—आपके लिए नहीं। वास्तव में आप बुरे आदमी हैं। विष खाकर मरने जा रही थी, आपने मरने नहीं दिया, अस्पताल में दिन-रात आप डटे रहे। लौट आने पर कुछ खाये-पिये बिना मरने जा रही थी तो उसमें भी रुकावट डाल दी। एक ओर तो यह दशा है, फिर दूसरी ओर बीमारी की दशा में थोड़ी-सी सेवा करूँगी, वह भी आपसे सहन नहीं हुआ। क्या आप हमेशा ऐसी ही शत्रुता करते रहेंगे? मैंने आपका क्या बिगाड़ा था? इस जन्म का तो मैं अपना दोष नहीं देखती। यह क्या पिछले जन्म का दण्ड है?"

राखाल मौन होकर सोचने लगा—यह स्त्री हठात् ऐसी उद्दण्ड कैसे हो गई है?

दिन के समय की कड़ी रोशनी में इतनी बातें इतने बुरे निःसंकोच से वह कुछ भी न कह सकती थी, लेकिन यह था रात का समय। एकान्त कमरे के छायापूर्ण आभ्यन्तर में केवल वह थी और एक दूसरा आदमी था।

वह कहने लगी, "मैं जानती हूँ देवता, क्यों आपने आज तक शादी नहीं की। वास्तव में स्त्रियों के प्रति आपके मन में काफी घृणा है। लेकिन यह भी जानिएगा कि जिनको आपने आज तक देखा है, जिनकी इच्छाएँ पूरी की हैं, पीछे-पीछे घूमते रहे हैं, वे ही सभी स्त्री जाति के उदाहरण नहीं। इस संसार में दूसरी स्त्रियाँ भी हैं।"

राखाल बड़े जोर से हँसकर बोला, "आज तुमको हो क्या गया है?"

"सचमुच ही आज मुझे बड़ा क्रोध आया है।"

"क्यों?"

"इसलिए कि मुझे आपने बीमारी की सूचना नहीं दी।"

"सूचना देने से ही क्या होता है? वहाँ और कोई भी स्त्री नहीं है, अकेली क्या तुम मेरी सेवा कर पातीं?"

"नहीं तो चुपचाप घर में बैठी रहती?"

"तुम्हारे पति क्या कहते, जब लौट आने पर ये बात सुन लेते?"

"वे लौटकर आएँगे नहीं, यह बात मैं आपसे कई बार कह चुकी हूँ। आप कहेंगे—तुम कैसे जान गईं? इसका उत्तर यह है कि मैं न जानूँगी तो दुनिया में और कौन जान सकेगा?"

शारदा ने दम-भर चुप रहकर कहा, "इसके अलावा एक बात और है। अकेली आपकी सेवा करने के लिए मेरा जाना ही दोष की बात होती, लेकिन इस घर में किसके भरोसे मुझे वे अकेली छोड़कर चले गए हैं? यही जो आप मेरे कमरे में आकर बैठते हैं—यदि मैं न जाने दूँ, पकड़ रखूँ, तो कौन रोकेगा?"

राखाल ने ऐसी बात किसी और के मुँह से कभी सुनी नहीं थी, विशेषकर शारदा से। गम्भीर लज्जा से उसका चेहरा लाल हो उठा लेकिन प्रकट होने से वह लज्जा बढ़ेगी ही, घटेगी नहीं, इसीलिए जोर लगाकर हँसने का प्रयत्न करके वह बोला, "अकेला पाकर तुमने तो मुझसे बहुत-सी बातें कह डालीं, लेकिन उनके रहने पर क्या कह सकती थीं?"

शारदा ने कहा, "तब तो कहने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। लेकिन आज आने से उनको दूसरी बात कहती। मैं कहती, जो शारदा तुमको प्राण से भी अधिक चाहती थी—उसने कितना सहा है, उसका गवाह सिर्फ भगवान् है—जिसको ब्याह का नाम लेकर ले आने पर धोखा दिया, जूठी थाली के समान जिसको फेंक दिया, जिसके लिए कहीं भी लौटने का रास्ता खुला नहीं रखा, वह शारदा अब नहीं है, वह विष खाकर मर गई है। यह शारदा दूसरी है। उसका पुनर्जन्म हुआ है। आज भी वह स्वतन्त्र है। उसके ऊपर अब किसी का अधिकार नहीं है—दावा नहीं।"

राखाल मौन होकर बैठा रहा।

शारदा कहने लगी, "आपको क्या याद नहीं है देवता, अस्पताल में अप्रसन्न होकर आपने बार-बार पूछा था, तुम कहाँ जाना चाहती हो? उत्तर में मैंने बार-बार रो-रोकर कहा था—मेरे जाने को कोई स्थान नहीं है। केवल एक ही स्थान था, वहीं मैं जा रही थी, लेकिन वहाँ आपने जाने नहीं दिया।"

कुछ देर दोनों मौन रहे।

राखाल ने कहा, "जीवन बाबू को आँखों से देखा नहीं है, केवल घर के लोगों के मुँह से उनका नाम सुना है। क्या वे तुम्हारे पति नहीं हैं? यह झूठ ही है?"

"हाँ, सब झूठ है। वे मेरे पति नहीं हैं।"

"क्या तुम विधवा हो?"

"हाँ।"

फिर कुछ देर दोनों चुप रहे।

शारदा ने पूछा, "क्या मेरी कहानी से आपके मन में घृणा पैदा हुई है?"

राखाल बोला, "ना शारदा, मैं इतना नासमझ नहीं हूँ। तुमसे भी अधिक अपराध किया था नई-माँ ने। मैंने उनको भी घृणा नहीं की।" लेकिन कह चुकने पर तुरन्त ही वह अत्यन्त लज्जित होकर चुप हो गया। यह कैसी भद्दी बात उसके मुँह से अचानक निकल पड़ी।

शारदा ने कहा, "नई-माँ ने आपको माँ के समान पाल-पोसकर बड़ा किया।"

राखाल ने कहा, "हाँ, वे मेरी माँ ही हैं।"

इस प्रसंग को झटपट दबाकर उसने कहा, "तुम्हारे माँ-बाप और आत्मीय हैं या नहीं, तुम बताना नहीं चाहतीं, कम-से-कम उन लोगों के यहाँ तुम जाओगी नहीं, यह मैं जानता हूँ, किन्तु अब क्या निश्चय किया?"

शारदा ने कहा, "नई-माँ का काम-काज करूँगी।"

"लेकिन यह क्या जीवन-भर तुमको अच्छा लगेगा?"

शारदा ने कहा, "यह दासीवृत्ति तो नहीं है—माँ की सेवा है। कम-

से-कम बहुत दिनों तक अच्छी लगेगी, यह मैं जानती हूँ।"

राखाल ने कहा, "लेकिन बहुत दिनों के बाद भी एक जीवन शेष रह जाता है, तब अपने ही पैरों पर खड़ा होना पड़ता है, उसमें रुपये की आवश्यकता पड़ती है। केवल सेवा करके ही उस समस्या की मीमांसा नहीं होती है।"

शारदा ने कहा, "चाहे कितने ही रुपये की आवश्यकता क्यों न पड़े, आपका लिखने का काम मैं न कर सकूँगी। बस, एक छोटा-सा पत्र लिखकर बिछौने पर रख दूँगी, कोई भी एक आदमी उसे पढ़कर मेरे तकिये के नीचे रुपये रख जाएगा। उसी से मेरा काम चल जाएगा।"

राखाल ने हँसकर कहा, "वह तो भीख हुई।"

शारदा भी हँस पड़ी, बोली, "भीख ही लूँगी। कोई भी उसको जानेगा नहीं—घूस देकर लोग बतलाते नहीं—मुझे शर्म किस बात की है?"

राखाल की फिर इच्छा हुई कि हाथ पकड़कर उसको अपने पास घसीटे और धृष्टता के लिए दण्ड दे, लेकिन फिर साहस नहीं हुआ।

दासी ने बाहर से पुकारकर कहा, "दीदी, तुमको माँ बुला रही हैं।"

"माँ की अह्निक-पूजा क्या समाप्त हो गई है?"

"हाँ, हो गई है।" कहकर वह चली गई।

शारदा ने कहा, "आप चलिएगा नहीं, माँ से भेंट करनी है।"

राखाल ने कहा, "तुम जाओ, मैं बाद में आऊँगा।"

"बाद में क्यों? दोनों ही एक साथ चलें।" कहकर वह दबी हुई हँसी की एक तरंग उठाकर तेजी से चली गई।

राखाल नेत्र बन्द करके बिछौने पर लेट गया। मन में यह विचार आया कि यह कमरा जिस रस-माधुर्य से निविड़ हो उठा, जीवित मनुष्य के हाथ की भाँति उसने उसके सब अंगों पर स्पर्श किया है, कितने दिनों के परिचित उस साधारण गृह के रहस्य की जैसे आज सीमा ही नहीं है।

आज उसके हृदय में यह किस बात की आकुलता है? किस बात के लिए स्पन्दन हो रहा है? वृक्ष के निगूढ़ अन्तस्तल में यह कौन बोल रहा है? क्या बोलता है? स्वर धीमा, अस्पष्ट ही कान में आ रहा है, भाषा समझ में क्यों नहीं आती? सैकड़ों स्त्रियों को वह पहचानता है। कितने दिनों के

कितने ही आनन्दोत्सव उनके संग में, बातचीत में, गीत-गायन में, हँसी-खेल में बीते हैं, उनकी स्मृति आज भी भूली नहीं है—मन के कोने में खोजने से आज भी वे दिखाई पड़ते हैं, लेकिन शारदा के मुँह की बातों से जो विस्मय आज मूर्ति में उमड़ उठा, इस जीवन की अभिज्ञता में उसकी तुलना कहाँ? यह नारी के प्रेम का रूप है? उसकी तीस वर्ष की अवस्था में उस अनजान से क्या आज ही भेंट हुई?

शारदा के मुँह की बातों से भूल समझने का अवकाश नहीं है। ऐसे सुनिश्चित संशय के साथ जो आप ही आकर पास खड़ी हो गई, उसको नहीं कहकर वह किस संकोच से लौटा देगा, किस वृहत्तर की आशा से? लेकिन तो भी दुविधा जागती है, मन पीछे हटना चाहता है, दुनिया अँगूठा दिखाकर कहती है, शारदा विधवा है, निन्दिता है, मलिन है। मित्र-समाज में इसका जब स्त्री कहकर परिचय देगा वह किस दुस्साहस से? फिर उसी दम याद पड़ती है पहले दिन की बात—वही अस्पताल में जाना। मरणासन्न नारी का फीका पीला चेहरा, मृत्यु की नीली छाया उसके होंठों पर, कपाल पर, नयनों की पलकों पर⋯गाड़ी के बन्द दरवाजे के सुराखों से आती है रास्ते की रोशनी--उसके बाद यम-मनुष्य के बीच वह कैसी लड़ाई? क्या इस दुःख से प्राण वापस पाना? इन सब बातों को राखाल किस प्रकार भूलेगा? किस प्रकार भूल जाएगा वह उसी के हाथ में शारदा का पूर्ण समर्पण?

उन्हीं दोनों नयनों का जल पोंछकर कहना, "अब आपकी आज्ञा बिना मरूँगी नहीं।"

तब उत्तर में राखाल ने कहा था, "स्वीकृति चिरकाल तक स्मरण रहे।"

दासी ने आकर कहा था, "राजा बाबू, आपको माँ बुला रही हैं।"

"मुझको!" राखाल चकित होकर बैठ गया। उसने देखा कि नेत्रों का जल गिरकर तकिये का बहुत-सा भाग भीग गया। उसे पलटकर वह ऊपर चला गया और नई-माँ के चरणों की धूलि लेकर पास बैठ गया।

इतने दिनों न आने और बीमारी की बात की नई-माँ ने कुछ भी चर्चा नहीं की, केवल स्नेहार्द्र स्निग्ध कण्ठ से प्रश्न किया, "अच्छे तो हो बेटा?"

राखाल ने सिर हिलाकर स्वीकार करके कहा, "एक बहुत बड़ा अपराध मुझसे हो गया है माँ, मुझे क्षमा करना होगा। कई दिन ज्वर में पड़ा रहा, आपको कहला न सका।"

नई-माँ मौन ही रहीं।

राखाल कहने लगा, "वह इच्छा से नहीं हुआ, आप लोगों को ठेस पहुँचाने के लिए भी नहीं हुआ। याद आती है माँ, एक दिन जितना परेशान मैंने किया उतना आपकी रेणुका ने भी नहीं किया। उसके बाद एक दिन अचानक धरती बदल गई, दुनिया में इतना तूफान आया है उसी समय मुझे पता चला।

ठाकुरजी की कोठरी में जाकर मैं कहता था, 'गोविन्दजी, अब तो मैं सहन नहीं कर सकता, हमारी माँ को लौटाकर ला दो।'

मेरी प्रार्थना को इतने दिनों में ठाकुरजी ने स्वीकार किया है। अपनी उसी माँ का मैं अपमान करूँगा ऐसी बात आपने किस प्रकार सोच डाली !"

नई-माँ ने धीरे-धीरे कहा, "तो किस अभिमान से तुमने सूचना नहीं भेजी बेटा ? दरबान को भेजकर जब मैं पता लगाने गई तब कुछ कहने का भी मार्ग तुमने नहीं छोड़ा था।"

राखाल ने हँसते हुए कहा, "यह केवल भूल के कारण। दुःख के दिनों में याद नहीं पड़ता कि तीन लोक में मेरा कहीं भी कोई था।"

नई-माँ ने उत्तर नहीं दिया—उसका हाथ पकड़कर निकट खींचा। उसकी पीठ पर हाथ फेरा।

शायद शारदा आड़ में से सुन रही थी। सामने आकर उसने कहा, "देवता को भोजन करके जाने के लिए कह दीजिए माँ, घर पर जाकर तो उन्हें स्वयं ही रसोई पकानी पड़ेगी।"

नई-माँ ने कहा, "तुम स्वयं ही कह सकती हो बेटी।" उसके बाद मुस्कराकर वे बोलीं, "यह बात वह प्रायः कहा करती है राजू। तुमको अपने ही हाथ से रसोई पकानी पड़ती है, इसे मानो वह सह नहीं सकती—उसके हृदय में चोट पहुँचती है। उसको एक दिन तुमने बचाया था, इस बात को शारदा एक दिन के लिए भी नहीं भूलती।"

क्षण-भर के लिए राखाल लज्जा से लाल हो गया।

वे कहने लगीं, "ऐसी स्त्री को किस तरह उसका पति त्यागकर चला गया, यही मैं सोचती हूँ। जितनी बुरी घटनाएँ हैं क्या उनको केवल स्त्रियों के भाग्य में ही विधाता लिख देते हैं ?"

शारदा ने कहा, "माँ, इस बार इनको शादी करने को कह दीजिए। आपके आदेश को ये कभी अस्वीकार न कर सकेंगे।"

सविता कोई बात कहने जा रही थीं, लेकिन राखाल ने झटपट बीच में कहा—"तुमने मुझे केवल दो-चार दिन ही देखा है, लेकिन उन्होंने मुझे पाल-पोसकर आदमी बनाया है—मेरे स्वभाव को पहचानती हैं। अच्छी तरह जानती हैं कि उसके नहीं है घर-द्वार, नहीं है परिजन-स्वजन, नहीं है उपार्जन करने की शक्ति-सामर्थ्य, वह है बिलकुल असमर्थ, किसी प्रकार लड़के पढ़ाकर दोनों समय के भोजन की व्यवस्था करता है। उसको किसी के लिए बेटी देना सिर्फ बेटी को मार डालना है। ऐसा अन्यायपूर्ण आदेश माँ कभी नहीं देंगी।"

शारदा ने कहा, "जरूर देंगी।"

राखाल ने कहा, "देंगी तो अपना सौभाग्य समझूंगा।"

महाराज ने आकर सूचना दी, "भोजन तैयार है।"

राखाल समझ गया कि यह आयोजन शारदा ने ही किया है।

बहुत दिनों के पश्चात् सविता उसको खिलाने के लिए बैठीं। बोलीं, "राजू, तारक जहाँ नौकरी करता है, सुनती हूँ वह बिलकुछ ही दामोदर के किनारे है। मुझको बड़े ही चाव से कह रहा है कि कुछ दिन उसके यहाँ जाकर रहूँ। मैंने तय किया है कि वहाँ हो आऊँ।"

"बुलाने के लिए उसने चिट्ठी लिखी है क्या ?"

"चिट्ठी तो नहीं, दो दिन की छुट्टी लेकर वह स्वयं कहने के लिए ही आया था। बहुत अच्छा लड़का है। जैसा विनयी है वैसा ही विद्वान् है। दुनिया में वह उन्नति अवश्य करेगा।"

राखाल ने साश्चर्य मुँह उठाकर कहा, "तारक कलकत्ता आया था ? मैं जानता नहीं।"

सविता ने कहा, "जानते नहीं हो ? लगता है कि मिलने का वह समय न निकाल पाया। केवल दो ही दिन की छुट्टी थी न !"

राखाल चुप हो रहा।

सिर झुकाकर भोजन का कौर मलने लगा।

उसे याद पड़ गया कि बीमारी के पहले दिन ही उसने तारक को एक पत्र लिखा था। उसमें बताया था, इन दिनों तबीयत कुछ ठीक नहीं रहती। उसकी इच्छा है, कुछ दिनों की छुट्टी लेकर देहात में जाकर मित्र के घर बिताए। उस पत्र का अभी तक कोई जवाब नहीं आया।

पन्द्रह

उस रात का खाना-पीना हो गया।

घर वापस जाते समय शारदा, राखाल के साथ-साथ नीचे उतर आई। उसने बहुत ही अनुरोध करके कहा, "मेरी इच्छा है कि एक दिन आपको स्वयं रसोई बनाकर खिलाऊँ। खाइएगा न?"

"अवश्य खाऊँगा। जिस दिन तुम कहोगी।"

"तो परसों। इसी समय। चुपके-चुपके मेरे घर चले आइएगा, चुपके-चुपके खाकर चले जाइएगा।"

राखाल ने हँसते हुए पूछा, "चुपके-चुपके क्यों? तुम मुझे खिलाओगी इसमें दोष क्या है?"

शारदा ने भी हँसकर उत्तर दिया, "दोष तो खाने में नहीं है देवता, दोष है चुपके-चुपके खिलाने में। फिर भी अपने सिवा और किसी को जानने न देने का लोभ मैं छोड़ नहीं सकती।"

"सचमुच नहीं छोड़ सकतीं या कहना पड़ता है इसलिए कह रही हो?"

"इतने जोर का उत्तर मैं न दे पाऊँगी।" यह कहकर शारदा ने हँसकर मुँह घुमा लिया।

राखाल की छाती के निकट सिहरन हो उठी, बोला, "अच्छा, ऐसा ही होगा, परसों ही आऊँगा।"

परसों!

आज वह आया है।

रात अधिक नहीं हुई। शायद आठ बजे होंगे। सभी काम में लगे हैं, राखाल की ओर शायद किसी ने देखा नहीं। रसोई का काम समाप्त करके शारदा चुपचाप बैठी थी। राखाल को कोठरी में आते देखकर चटपट उठकर बड़े आदर से अभ्यर्थना की और बिछौने पर बिठाकर बोली, "मैंने सोचा था, शायद आपको आने में रात हो जाएगी, या शायद भूल जाएँगे, आएँगे ही नहीं।"

"भूल जाऊँगा, ऐसा कैसे सोचा शारदा ! यह झूठ है।"

शारदा ने हँसते हुए सिर हिलाकर कहा, "हाँ, मैंने यह झूठ कहा। एक बार भी मैंने नहीं सोचा कि आप भूल जाएँगे। अच्छा, थाली परोसूँ ?"

"परोसिए।"

सब-कुछ पास ही तैयार रखा था। आसन बिछाकर उसने खाने को परोसा। सीमित आयोजन था, बाहुल्य कहीं भी नहीं।

राखाल ने प्रसन्न होकर कहा, "ठीक यही और ऐसा ही मैंने मन-ही-मन चाहा था शारदा, किन्तु इसकी आशा नहीं की थी। सोचा, और भी चार जनों के समान आदर-यत्न के साथ बहुत अधिक आडम्बर करोगी। कितनी ही चीजें शायद पड़ी ही रहेंगी—फेंकी जाएँगी। लेकिन यह चेष्टा तुमने नहीं की।"

शारदा ने कहा, "सामान तो मेरा नहीं है देवता, आप ही का है। अपना होता तो अधिकता करने में भय न लगता, शायद करती भी और सामान नष्ट भी होता।"

"तुम बुद्धिमान हो।"

"अच्छा ही तो है। नहीं तो आप सोचते कि इस औरत का अन्याय तो कम नहीं है। देना तो चुकाती नहीं और पराये रुपये पर रईसी दिखाती है।"

राखाल ने हँसकर कहा, "रुपयों का दावा मैंने छोड़ दिया शारदा। अब तुम्हें रुपये वापस न करने होंगे, उनके लिए चिन्ता भी न करनी होगी। केवल वह कापी दे दो, मैं लौटा दूँ।"

शारदा ने बनावटी गम्भीरता लाकर कहा, "तो यह कहिए कि छोड़ा-छोड़ी हो गई ? अब आप भी अपने रुपये न माँग सकेंगे और मैं भी कुछ न

माँग सकूँगी। पैसे के बिना मर जाऊँ तो भी नहीं, क्यों?"

राखाल ने कहा, "तुम बड़ी दुष्ट हो शारदा। सोचता हूँ, जीवन तुमको छोड़कर चला कैसे गया? वह क्या तुम्हें पहचान नहीं पाया?"

शारदा ने सिर हिलाकर कहा, "ना। यह मेरे भाग्य का लेख है देवता। स्वामी ने नहीं पहचाना, जो फुसलाकर निकाल लाए उन्होंने नहीं पहचाना और जिन्होंने यमराज के हाथों से छीन लिया वह भी नहीं पहचान पाए। क्या जाने मैं क्या हूँ, जो कोई पहचान नहीं पाता।" जरा रुककर फिर कहा, "मेरे स्वामी की बात छोड़िए, लेकिन जीवन बाबू की बात कहती हूँ। सचमुच ही वह मुझे पहचान नहीं सके। वह बुद्धि ही उनमें न थी।"

राखाल ने कुतूहल के साथ प्रश्न किया, "बुद्धि होती तो उन्हें क्या करना चाहिए था?"

"भागना नहीं चाहिए था। मुझसे कहना चाहिए था कि अब मेरे चलाये नहीं चलता, यह भार अब तुम ले लो।"

"तो तुम यह भार अपने ऊपर ले लेतीं?"

"लेती क्यों नहीं? आपने क्या यह सोचा है कि भार केवल मर्द ही ले सकते हैं, स्त्रियाँ नहीं? स्त्रियाँ भी ढो सकती हैं। मैं दिखा देती कि किस प्रकार घर-गिरस्ती का भार ढोना होता है।"

"इतना यदि जानती हो, तो आत्महत्या करने क्यों चली थीं?"

"शायद आपने सोचा है कि औरतें इसी के लिए आत्महत्या करती हैं? मर्दों की ऐसी ही समझ होती है।"—उसने उसी पल हँसकर कहा, "मैंने आत्महत्या इसलिए की थी कि आपको देख पाऊँगी, नहीं तो आपको नहीं पाती—आज भी आप मेरे लिए वैसे ही अपरिचित रहते।"

राखाल के मुँह तक एक बात आ रही थी, किन्तु वह उसे दबा गया। उसे और भी शिक्षा भले ही न मिली हो, किन्तु औरतों के आगे सावधान होकर बात करने की शिक्षा प्राप्त थी।

शारदा ने कहा, "देवता, आपने ब्याह क्यों नहीं किया? सच बताइए न?"

राखाल ने मुँह का कौर गले के नीचे उतारकर कहा, "तुमको इस बात के जानने से क्या लाभ है?"

शारदा ने कहा, "लाभ की बात नहीं जानती, जानने को मेरा जी बहुत चाह रहा है। आपको बताना ही होगा।"

राखाल ने कहा, "शारदा ! हमारे समाज में किसी का ब्याह होता है और कोई स्वयं ब्याह करता है। मेरा ब्याह इसलिए नहीं हुआ कि कोई देने वाला नहीं था और स्वयं मैंने ब्याह करने का साहस इसलिए नहीं किया कि मैं गरीब था। जानती हो, संसार में अपना कहने को मेरा कुछ भी नहीं है।"

शारदा ने बिगड़कर कहा, "देवता, आपका यह कहना अन्याय है। गरीब होने से क्या आदमी का ब्याह नहीं होता ? उसे क्या ब्याह करने का अधिकार नहीं है ? गरीब लोग क्या दुनिया में यों ही आएँगे और चले जाएँगे, कहीं घर नहीं बाँधेंगे, किन्तु यह बात नहीं है, वास्तव में आप बड़े कायर आदमी हैं—जरा भी साहस नहीं है।"

राखाल ने हँसकर इस अभियोग को स्वीकार कर लिया। कहा, "हो सकता है, तुम्हारा ही कहना सच हो, शायद सचमुच ही मैं कायर आदमी हूँ—अनिश्चित भाग्य पर निर्भर होकर खड़े होते भय करता हूँ।"

"देवता, भाग्य तो सदा ही अनिश्चित रहता है। वह छोटे-बड़े का विचार नहीं करता—अपने नियम से आप चला जाता है।"

"यह भी जानता हूँ, लेकिन मैं जो हूँ—वही हूँ। मैं अपने को तो बदल नहीं सकूंगा शारदा !"

"भले ही न बदलो। जो स्त्री होकर आपके पास आएगी, वह आपको बदलने का भार लेगी—नहीं तो वह स्त्री काहे की ? ब्याह आपको करना ही होगा।"

"करना ही होगा, क्यों ?"

शारदा ने स्वर में पहले से अधिक बल देकर कहा, "हाँ, करना ही होगा, नहीं तो मैं किसी प्रकार न छोड़ूँगी। अभी आप कह रहे थे कि कोई ब्याह कराने वाला आदमी न था, इसी से ब्याह नहीं हुआ। इतने दिन पश्चात् आपका वह आदमी मैं हूँ। मैं सिखा दूंगी कि किस तरह गरीब का घर चलता है, किस तरह वहाँ भी जो कुछ पाने का है सब पाया जाता है। कंगाल के समान आकाश में हाथ फैलाकर केवल हाय-हाय करके मरने के

लिए ही भगवान् ने गरीबों को नहीं जन्माया है—यह विद्या मैं उसे दे आऊँगी।"

राखाल को उसकी बातें सुनकर सचमुच बड़ा विस्मय हुआ। बोला, "यदि वह यह विद्या न सीख पाए—सीखना न चाहे, तो दुःख का भार कौन उठाएगा शारदा ! किसके पास जाकर शिकायत करूँगा ?"

शारदा अवाक्।

कुछ देर तक राखाल की ओर ताकती रहकर बोली, "देवता, किसी के पास नहीं। ऐसा हो ही नहीं सकता कि स्त्री होकर वह इस बात को न समझे, स्वामी के दुःख में भाग न ले, बल्कि उस दुःख को और बढ़ाए। यह मैं किसी प्रकार विश्वास नहीं करूँगी।"

एक बार राखाल ने अपनी जीभ को रोका। यह नहीं कहा कि मैंने कुछ कम औरतें नहीं देखी हैं शारदा, किन्तु वे तुम नहीं हो—शारदा को सभी नहीं पाते।

राखाल मौन हो खाने लगा। यह देखकर शारदा ने फिर पूछा, "क्यों; आपने तो कुछ नहीं कहा देवता ?"

तब राखाल ने सिर उठाकर हँसकर कहा, "सब प्रश्नों का उत्तर क्या तत्काल ही मिल जाता है ? सोचने में समय तो लगता है। किन्तु बताऊँ शारदा ? जिस दिन मैं स्वयं इस प्रश्न का उत्तर पाऊँगा उस दिन तुमको भी बता दूँगा।"

"यही अच्छा है।" कहकर शारदा चुप हो रही।

कोठरी के अन्दर एक आदमी चुपचाप भोजन कर रहा है और अन्य आदमी वैसे ही चुपचाप उसकी ओर ताक रहे हैं। खाना लगभग समाप्त होने को था, इसी समय एक लम्बी साँस के शब्द से चौंककर राखाल ने आँख उठाकर कहा, "यह क्या ? क्या बात है ?"

शारदा ने सलज्ज मृदु हँसी हँसकर कहा, "कुछ भी तो नहीं।" फिर कहा, "देवता, परसों शायद हम लोग हरिनपुर जा रहे हैं।"

"परसों ? तारक के पास ?"

"हाँ। कल शनिवार है। तारक बाबू रात की गाड़ी से आएँगे, दूसरे दिन रविवार को हम लोगों को ले जाएँगे।"

"जाना ठीक कैसे हुआ ?"

"कल वह स्वयं ही आए थे।"

"तारक कलकत्ते आया था ? कहाँ, मुझे तो मिला नहीं।"

"एक ही दिन की तो छुट्टी थी—दोपहर को आए और शाम की ही गाड़ी से लौट गए।" कुछ देर बाद कहा, "अच्छे आदमी हैं। वे बहुत विद्वान् हैं न ?"

राखाल ने कहा, "हाँ।"

"उनके समान आप भी विद्वान् क्यों नहीं हुए देवता ?"

राखाल ने हाथ से अपना माथा दिखाकर कहा, "यहाँ ऐसा ही लिखा था।"

शारदा कहने लगी, "और केवल विद्या ही नहीं, जैसा चेहरा-मोहरा है वैसा ही शरीर में बल भी है। बाजार से बहुत-सी चीजें कल खरीदी थीं—बहुत भारी बोझ था—जाते समय स्वयं ही उसे उठाकर गाड़ी में रख आए। आप कभी भी न उठा सकते थे देवता।"

राखाल ने स्वीकार किया, "ना, मैं नहीं उठा सकता शारदा, मेरे शरीर में बल नहीं है—मैं बहुत निर्बल हूँ।"

"लेकिन यह भी क्या भाग्य का लिखा है ? इसका अर्थ यह है कि आपने कभी चेष्टा नहीं की। तारक बाबू कहते थे कि चेष्टा से सब-कुछ होता है, संसार में सब-कुछ मिलता है।"

इस बात से हँसकर राखाल ने कहा, "किन्तु वह चेष्टा ही किस चेष्टा से मिलती है, यह उससे तुमने क्यों नहीं पूछा ? उसका उत्तर शायद मेरे काम आता।"

शारदा भी हँस दी। बोली, "अच्छी बात है, अब मैं उनसे पूछूँगी, लेकिन यह सब आपकी बातों का घुमाव-फिराव है। वास्तव में सच भी नहीं है और उनका उत्तर भी आपके किसी काम न आएगा। मुझे मालूम पड़ता है, आप तारक बाबू से अप्रसन्न हैं—क्यों ?"

राखाल विस्मय से कह उठा, "मैं तारक पर अप्रसन्न हूँ ! यह सन्देह तुमको कैसे हुआ ?"

"किसी प्रकार हुआ, लेकिन हुआ अवश्य, इसी से कह दिया।"

राखाल ने फिर प्रतिवाद नहीं किया।

शारदा कहने लगी, "उनकी इच्छा अब गाँव में रहने की नहीं है। एक छोटी-सी जगह में छोटे-से स्कूल में लड़कों को पढ़ाकर जीवन को बिता देना वह नहीं चाहते। वहाँ बड़े होने का सुयोग नहीं है, वहाँ उनकी शक्ति संकुचित हो गई है, बुद्धि सिर नीचा किए हुए है। इसी से शहर में लौट आना चाहते हैं। यहाँ ऊँचा होकर खड़े होना उनके लिए कुछ कठिन नहीं है।"

राखाल ने विस्मित होकर पूछा, "ये बात तुम्हारी है या तारक के मुँह की?"

शारदा ने कहा, "ना, मेरी नहीं है, उन्हीं के मुँह की है। माँ से कह रहे थे, मैंने सुनी है।"

"सुनकर नई-माँ ने क्या कहा?"

"माँ प्रसन्न ही हुईं। बोलीं, उस जैसे लड़के का गाँव में पड़े रहना अन्याय है। उन्हें वहाँ न पड़े रहना पड़े, इसका उपाय वह करेंगी।"

"कैसे करेंगी?"

शारदा ने कहा, "यह कुछ कठिन तो नहीं है देवता! माँ विमल बाबू से कह दें तो कोई ऐसी बात नहीं जो न हो सके।"

राखाल उसकी ओर ताकने लगा। अर्थात् उसने पूछना चाहा कि इसका अर्थ क्या है?

शारदा समझ गई।

राखाल अभी तक कुछ नहीं जानता। बोली, "आप खा चुके, अब हाथ-मुँह धोकर बैठिए···बतलाती हूँ।"

राखाल कई मिनट बाद हाथ-मुँह धोकर बिछौने पर आकर बैठा।

शारदा ने उसे पानी दिया, पान दिया। इसके बाद कुछ फासले से फर्श पर बैठकर कहा, "आप जानते हैं, रमण बाबू चले गए?"

"चले गए? कहाँ? मुझे तो सूचना नहीं। कहाँ गए?"

"कहाँ गए, यह वही जानें, लेकिन यहाँ अब नहीं आते। जाना उन्हें पड़ता ही, यह बोझ उठाने की शक्ति अब उनमें नहीं थी—किन्तु गए झूठा बहाना करके। इतने छोटे होकर शायद मेरे पास से जीवन बाबू भी नहीं

गए ।" इतना कहकर वह उस दिन से आज तक की सारी घटना सिलसिले से बताकर बोली, "यह तो होता ही, किन्तु उपलक्ष्य हुए आप । वह जो आप रेणु की बीमारी में दूसरे के नाम से रुपये माँगने आए और न पाकर बिना भोजन किए ही चले गए, इस अन्याय ने माँ का हृदय तोड़ दिया । इस व्यथा को वह आज भी भूल नहीं सकी हैं । मुझे बुलाकर बोलीं, 'शारदा, आज मुझे राजू मिलना ही चाहिए, नहीं तो मैं मर जाऊँगी । चलो तुम मेरे साथ ।' जो कुछ माँ के पास था, सब पोटली में बाँधकर हम दोनों जनी छिपके आपके डेरे पर गईं । उसके बाद ब्रज बाबू के घर गईं, किन्तु सब खाली था, सब शून्य । मकान किराये पर देने का नोटिस लटक रहा था । मालूम तो कुछ नहीं हुआ, समझ में सिर्फ यह आया कि कहीं किसी घर में, जिसका पता नहीं, उनकी लड़की बीमार पड़ी है, दवा के लिए पैसा नहीं है, सेवा करने को कोई आदमी नहीं है, शायद जीती है, शायद मर गई और वहाँ पहुँचने का उपाय भी नहीं—रास्ते का चिह्न पूरी तरह से मिट गया है ।

माँ को लौटा लाई । उस समय बाहर के घर में खाना-पीना, नाच-गाना और आनन्द-कलरव हो रहा था । करने को कुछ था ही नहीं, केवल बिछौने पर पड़कर दोनों आँखों से वह लगातार आँसू बरसाने लगीं । मैं सिरहाने बैठकर उनके माथे पर हाथ फेरने लगी । इसके सिवा उन्हें सांत्वना देने का मेरे पास था ही क्या ?

साधारण परिचित आमंत्रित अतिथि उस दिन विमल बाबू थे । उन्हीं के सम्मान के लिए था वह आनन्दोत्सव ।

रमण बाबू भीतर झपटते आए, बोले—'चलो महफिल में ।' माँ ने कहा, 'ना, मैं अस्वस्थ हूँ ।' वे बोले, 'विमल बाबू करोड़पति धनी हैं, मेरे मालिक हैं । वह खुद आवेंगे इस कमरे में मिलने के लिए ।'

माँ ने कहा, 'ना, यह न होगा । इससे अतिथि का अपमान होगा ।' माँ यह बात न जानती हों, ऐसा न था, किन्तु पछतावे से, व्यथा से, भीतर के गोपन धिक्कार से शायद उस समय उनके लिए किसी को मुँह दिखाना असम्भव था । लेकिन दिखाना ही पड़ा ।

विमल बाबू स्वयं आ पहुँचे । प्रशान्त सौम्य मूर्ति, बातें कोमल । बोले, 'शायद यह एक तरह से साधिकार प्रवेश हुआ, लेकिन जाने के पहले आए

बिना भी नहीं रह सका। कहिए, कैसी तबीयत है?'

माँ ने कहा, 'अच्छी हूँ।'

उन्होंने कहा, 'यह गलत बात है, आप स्वस्थ नहीं हैं। कुछ दिन पहले मैंने आपका चित्र देखा था और आज साक्षात् देख रहा हूँ। कितना अन्तर है, यह नहीं चल सकता, शरीर आपको स्वस्थ करना ही होगा। एक बार सिंगापुर चलिए न? वहाँ मैं रहता हूँ—समुद्र के पास ही मेरा एक बँगला है। खूब हवा आती है, प्रकाश की भी सीमा नहीं है। पहले का ही स्वास्थ्य फिर लौट आएगा—चलिए।'

माँ ने उत्तर में केवल यही कहा, 'ना।'

'ना क्यों? मेरी प्रार्थना स्वीकार न कीजिएगा?'

माँ चुप रहीं। जा कैसे सकती थीं, लड़की बीमार और स्वामी वेघर।

उस दिन रमण बाबू शराब पीकर प्रकृतिस्थ न थे। एकदम आग-बबूला होकर कह उठे, 'जाना ही होगा, मैं आज्ञा देता हूँ, तुम्हें जाना ही पड़ेगा।'

'ना, मैं नहीं जा सकूँगी।'

इसके बाद शुरू हुआ अपमान और कटु बातों का तूफान। वे बातें कितनी कटु थीं, यह मैं नहीं कह सकती देवता। बवंडर ने घूम-घूमकर भूतल पर जहाँ जितनी गन्दगी का कूड़ा था, सब वहाँ जमा कर दिया—यह प्रकट होने में देर नहीं लगी कि माँ उस आदमी की स्त्री नहीं, रखैल हैं। सती का नकाब डाले छद्म वेश में केवल एक गणिका हैं। तब एक किनारे खड़े-खड़े मैंने अपनी बात सोचकर मन-ही-मन कहा, 'धरती, तू फट जा! औरतों की यह कितनी बड़ी दुर्गति है, उसके पहले यह कौन जानता था!' "

राखाल एकटक अब तक शारदा की ओर देख रहा था, क्षणभर के लिए उसने उधर से आँख फेरी।

शारदा कहने लगी, "माँ पत्थर की मूर्ति के समान स्तब्ध होकर बैठी रहीं।

रमण बाबू चिल्ला उठे, 'जाओगी कि नहीं, बताओ? बैठी सोच क्या रही हो?'

माँ का स्वर पहले की अपेक्षा भी मृदु हो आया। बोलीं, 'क्या सोचती हूँ जानते हो मँझले बाबू? केवल यही सोचती हूँ कि तुम्हारे पास मेरे ये बारह साल कैसे कट गए? सोते-सोते क्या सपना देखती रही? लेकिन बस, अब और नहीं, मेरी नींद खुल गई है। अब तुम मेरे घर न आना, जिससे अब हम दोनों एक-दूसरे का मुँह न देख पाएँ।' कहते-कहते उनका सारा शरीर जैसे घृणा से बार-बार सिहर उठा।

अब की रमण बाबू पागल हो उठे। बोले, 'यह घर किसका है? मेरा है। मैंने तुमको दिया नहीं।'

माँ ने कहा, 'यही अच्छा है, तुमने दिया नहीं। यह घर मेरा नहीं, तुम्हारा ही है। मैं कल ही इसे त्यागकर चली जाऊँगी।'

किन्तु रमण बाबू ने इस उत्तर की आशा नहीं की थी। एकाएक माँ का मुँह देखकर उन्हें चेत हुआ—तब डरकर नाना प्रकार से समझाना चाहा कि यह केवल उन्होंने क्रोध में कह डाला है, इसका कोई अर्थ नहीं।

माँ ने कहा, 'तात्पर्य है मँझले बाबू। हमारा सम्बन्ध आज से समाप्त हो गया, अब किसी प्रकार न जुड़ेगा।'

रात हो गई। रमण बाबू चले गए। जो उत्सव सवेरे इतनी धूमधाम से आरम्भ हुआ था, वह इस तरह समाप्त होगा, यह किसने सोचा था!"

राखाल ने कहा, "उसके पश्चात्?"

शारदा ने कहा, "ये बातें तो छोटी हैं, इसके बाद की ही बात बड़ी है देवता। विमल बाबू की अभ्यर्थना उस दिन बाहर से समाप्त अवश्य हो गई, किन्तु भीतर की ओर से और रूप में लौट आई। माँ का यह अपमान उन्हें कुछ ऐसा लगा कि—वह गैर थे, सो बिलकुल आत्मीय हो गए। आज उनसे बढ़कर मित्र हम लोगों का कोई नहीं है। रमण बाबू को दाम देकर उन्होंने यह घर खरीदकर माँ को लौटा दिया, नहीं तो कौन जाने, हम लोग कहाँ जाते।"

लेकिन यह खबर राखाल को प्रसन्न नहीं कर सकी। उसका मन जैसे बैठ गया। बोला, "विमल बाबू के पास बहुत रुपये हैं। वह दे सकते हैं। यह शायद उनके लेखे कुछ भी नहीं है, लेकिन नई-माँ ने इसे लिया कैसे? दूसरे से दान लेना तो उनका स्वभाव नहीं है।"

शारदा बोली, "शायद अब गैर नहीं हैं—शायद लेने की अपेक्षा न लेने में कहीं अधिक न्याय होता।"

राखाल ने कहा, "इस भाव से समझना सीखने से सुविधा अवश्य होती है, किन्तु समझना मेरे लिए कठिन है।"

वह जबर्दस्ती की हँसी हँसते-हँसते उठ खड़ा हुआ। बोला, "रात हो गई, मैं जाता हूँ। तुम लोगों के लौट आने पर शायद फिर भेंट हो।"

शारदा ने बिजली की तेजी से उठकर रास्ता रोक लिया। बोली, "ना, मैं इस प्रकार आपको अचानक कभी न जाने दूंगी।"

"तुम 'अचानक' किसे कहती हो? रात हो गई है—जाऊँगा नहीं?"

"जाएँगे, लेकिन क्या माँ से मिलकर भी नहीं जाएँगे?"

"मेरी उन्हें क्या आवश्यकता है? भेंट करने की शर्त भी तो नहीं थी। चुपके-चुपके आकर चुपके से चला जाऊँगा, यही तो तुमसे बात हुई थी।"

शारदा ने कहा, "ना, वह शर्त अब मैं नहीं मानूंगी। मिलने की आवश्यकता नहीं है—आप कहते हैं? माँ की अपनी आवश्यकता न हो, क्या आपकी नहीं है?"

राखाल ने कहा, "मेरा जो प्रयोजन है वह हृदय में है—वह कभी न मिटेगा—किन्तु बाहर का प्रयोजन तो अब मैं कुछ देख नहीं पाता शारदा।"

राखाल अपनी गूढ़ वेदना को दबाने की चेष्टा करके भी छिपा नहीं सका, कण्ठ-स्वर से वह प्रकट हो गई। उसके मुख पर दृष्टि टिकाकर शारदा बड़ी देर तक मौन रही।

उसके बाद धीरे-धीरे बोली, "एक प्रार्थना करती हूँ देवता, क्षुद्रता और ईर्ष्या और चाहे जहाँ रहे, आपके मन में न रहे। देवता कहकर पुकारती हूँ, देवता ही आपको सदा मान सकूं। चलिए माँ के पास, आपके बिना कहे उनका जाना नहीं होगा।"

"मेरे कहे विना जाना न होगा? इसका तात्पर्य?"

"तात्पर्य मैंने भी पूछा था। उत्तर में माँ ने कहा, 'लड़का जब बड़ा हो जाता है तब उसकी राय लेनी होती है। मैं जानती हूँ कि राजू मना नहीं करेगा, लेकिन यदि वह आज्ञा न देगा तो न जा सकूंगी शारदा!'"

राखाल चुपचाप स्तब्ध हो रहा। हृदय के भीतर जो आग जल उठी

थी, उसने बुझना नहीं चाहा, तथापि दोनों आँखों में आँसू भर आए।

"उनके पास सरलता से जा सकूँ, वह साहस आज मैं मन में ढूंढ़े नहीं पाता शारदा। उनसे कहो, कल मैं चरण-रज लेने आऊँगा।" वह चटपट बाहर गया। उत्तर की प्रतीक्षा भी नहीं की।

सोलह

तारक शनिवार की रात को आया है और कल दोपहर की ट्रेन से नई-माँ को साथ लेकर यात्रा करेगा। साथ में दो दासियाँ और शारदा जाएँगी। अपने हरिनपुर वाले घर को तारक यथासम्भव ठीक करके आया है।

गाँव में शहर की सारी सुविधाएँ पाना कठिन है, फिर भी तारक ने इस बात का ध्यान रखा है कि अतिथियों को किसी प्रकार की कोई कठिनाई न होने पाए। यहाँ आकर उन्हें अपने अभ्यस्त जीवन के विपरीत कुछ न करना पड़े। वह जब से आया है, बराबर यही आलोचना हो रही है।

नई-माँ बहुतेरा कहती हैं कि बेटा, मैं भी गृहस्थी के घर की कन्या हूँ, गाँव में ही जन्मी हूँ, मेरे लिए तुम यों चिन्तित मत होओ। पर तारक सन्देह करके यही कहता है कि माँ, मुझे विश्वास नहीं होता कि जो कष्ट साधारण आदमी सहन कर सकते हैं, उन्हें आप सहन कर लेंगी। चाहे मुँह से कुछ न कहें लेकिन अन्दर-ही-अन्दर आपको कष्ट जरूर होगा।

"ना तारक, ना। मैं बिलकुल ठीक रहूँगी।"

"ईश्वर करे ऐसा ही हो माँ, लेकिन अगर आपको जरा भी कष्ट हुआ तो मैं आपको क्षमा नहीं करूँगा, यह मैं पहले बताये देता हूँ।"

"यही सही। तुम देखना कि मैं वहाँ से मोटी होकर लौटूँगी।"

गाँव के जीवन की कितनी ही छोटी-छोटी असुविधाओं की बात तारक के मन में आती है। भाँति-भाँति की खाने-पीने की वस्तुएं एकत्रित करके रख आया है, लेकिन खाना-पीना ही तो सब-कुछ नहीं है। कम-से-कम दो लालटेनों की जरूरत है। रात को आँगन में इधर-उधर चलते-फिरते कहीं

पर भी अँधेरा न रहे। खाने-पीने के बर्तनों में भी कुछ परिवर्तन करना है। खिड़कियों के पर्दे उसने धोकर रख छोड़े हैं, फिर भी दो नए पर्दे खरीद लेना है। नई-माँ चाय नहीं पीती हैं, लेकिन किसी दिन यदि पीने की इच्छा हुई तब क्या यही मैले-कुचैले टूटे प्याले उनके सामने रखे जाएँगे? उसके लिए एक नया 'सेट' चाहिए। भजन-पूजा की चीजें तो खरीदनी ही पड़ेंगी। अच्छी 'धूप' गाँव में नहीं मिलती, इसे भूलने से काम नहीं चलेगा, इसी प्रकार की कितनी आवश्यक और अनावश्यक छोटी-मोटी चीजें इकट्ठी करने के लिए वह बाजार गया है, अभी तक लौटकर नहीं आया है।

इधर बक्स और बिस्तर-बण्डल बाँधे जा रहे थे, कोई काम कल के लिए रख छोड़ना शारदा को भाता नहीं था कि विमल बाबू आ पहुँचे। आकर पूछा—"नई-बहू, कितने दिन ठहरोगी?"

"जितने दिन तुम चाहो, उतने ही दिन, उससे एक पल भी अधिक नहीं।" सविता ने कहा।

"इस बात को कोई अन्य सुनेगा तो कुछ दूसरा ही अर्थ लगाएगा नई-बहू।" विमल बाबू बोले।

"अर्थात् नई-बहू के सिर पर एक नया कलंक लगायेगा, यही तुम्हें भय है न?" कहकर सविता धीरे से हँसी।

विमल बाबू भी हँस पड़े और बोले, "भय तो है ही, लेकिन मैं उसे किस प्रकार होने दे सकता हूँ?"

"नहीं होने दे सकते यह मैं जानती हूँ और यह मुझे भरोसा भी है। इतने दिनों तक अपने विचार और बुद्धि से काम लिया। अब सोचती हूँ, इन दोनों की छुट्टी रखूँगी कि क्या मिलता है, भाग्य क्या दिखलाता है। तुम सोचते होगे, मुझे यह बुद्धि किसने दी? किसी ने नहीं। उस दिन जब तुम चले गए तो मैं ऊपर बरामदे में खड़ी होकर देखती रही, सड़क के नुक्कड़ पर जाकर तुम्हारी गाड़ी आँखों से ओझल हो गई, देखने के लिए कुछ न रहा, पर मन मेरा जैसे तुम्हारे पीछे हो लिया और तुम्हारे साथ-साथ वह कहाँ तक भागता चला गया, पता नहीं। फिर लौटकर कमरे में आ बैठी। अकेले बैठे-बैठे सहसा मन में बचपन से लेकर उस दिन तक की कितनी ही बातें आने-जाने लगीं और तब अचानक ही मेरा मन क्या बोल उठा, जानते

हो ? बोला कि सविता ! यौवन तेरा ढल चुका, रूप फीका पड़ गया, फिर भी यदि वे तुमसे स्नेह करते हैं तो वह 'मोह' नहीं सत्य है। सत्य कभी धोखा नहीं देता, उससे तुझे कोई डर नहीं है। जो स्वयं असत्य रूप नहीं है, वह किसी भी तरह तेरे सिर पर आपत्ति नहीं आने देगा, इसका विश्वास करो।''

''मैं तुम्हें सत्य स्नेह कर सकता हूँ, इस बात पर तुम्हें विश्वास है नई-बहू ?'' विमल बाबू बोले।

''हाँ, विश्वास है। नहीं तो तुम्हें मेरी आवश्यकता ही क्या थी ? मुझमें तो रूप-यौवन कुछ नहीं है।''

''ऐसा भी हो सकता है कि मेरी दृष्टि से तुम्हारे रूप की सीमा न हो। और रूप भी मैंने संसार में कम नहीं देखा नई-बहू !'' विमल बाबू ने हँसकर कहा।

सविता ने भी हँसकर उत्तर दिया, ''तुम विचित्र व्यक्ति हो, इसके अलावा और क्या कहूँ ?''

''तुम स्वयं भी कम विचित्र नहीं हो नई-बहू ! अभी उस दिन तो तुम इस तरह ठगी जा चुकी हो। इतना भारी आघात पा चुकी हो, तब भी फिर कैसे इतनी जल्दी मेरा विश्वास कर लिया, मैं यही बार-बार सोचता हूँ।''

''आघात मुझे लगा, यह सच है, लेकिन ठगी नहीं गई हूँ। जीवन-भर का काला पानी पाए हुए बन्दी का जीवन जैसे जेल में कटता है, और अचानक जैसे आंधी-तूफान उठा, बन्धन कट गया, जेल की चहारदीवारी खड़खड़ाकर गिर पड़ी। मैं जैसे किसी अनजाने पथ पर आ खड़ी हुई। उस समय जाने कहाँ से तुम आ गए। अपरिचित बन्धु ने आगे आकर मेरा हाथ पकड़ लिया और बोले, 'चलो !' क्या मैं इसी को ठगना कहूँ ? लेकिन यह तो बताओ कि मैं क्या कहकर तुम्हें पुकारा करूँ ?'' सविता बोली।

''मेरा नाम लेकर नहीं पुकार सकतीं ?''

''ना।''

''बचपन में मेरी बहिन ने मेरा एक और नाम रख दिया था। उसकी भी एक कहानी है, लेकिन वह नाम चाहे तुम्हें पुकारते समय और भी विचित्र लगे।''

"क्या नाम है, बताओ तो, देखूँ कह पाती हूँ या नहीं।"

"मुहल्ले-टोले वाले 'दयामय' कहकर पुकारते थे।"

"इस 'नाम' की कहानी मैं नहीं सुनना चाहती, उसकी मैं स्वयं ही कल्पना कर लूँगी। परन्तु यह नाम मुझे बहुत पसन्द है। अब आज से मैं भी तुम्हें 'दयामय' नाम से ही पुकारूँगी।" सविता बोलीं।

"यही कहकर पुकारना, लेकिन मैं जो तुमसे पूछ रहा था, उसका उत्तर नहीं दिया?"

"क्या पूछ रहे थे दयामय?"

"तुम इतनी जल्दी मुझसे स्नेह कैसे करने लगीं?"

घड़ी-भर सविता उनकी तरफ निहारती रहीं और फिर बोलीं, "स्नेह करती हूँ, यह तो मैंने नहीं कहा। कहा था, तुम मेरे बन्धु हो, मैं तुम्हारा विश्वास करती हूँ। कहा था, जो स्नेह करता है, उसके द्वारा कभी आपत्ति नहीं आ सकती।" क्षण-भर दोनों मौन रहे, फिर सविता ने कुण्ठित स्वर से कहा, "मेरी बात सुनकर चुप कैसे हो गए आप?"

विमल बाबू प्रत्युत्तर में हँसी हँसकर बोले, "कहने के लिए कोई बात नहीं है नई-बहू, तुमने सच ही कहा है। अपना स्नेह-पात्र कोई भी व्यक्ति अपने हाथों से अमंगल नहीं कर सकता। अपना कष्ट चाहे जितना हो, वह सहना ही पड़ेगा।"

"सहना ही पड़ेगा, इतना ही नहीं है, समझ लो, यदि तुम दुःख पाओ, तो मैं भी पाऊँगी।"

"दुःख पाना ही उचित है नई-बहू। फिर भी यदि दुःख पाओ तो उस वक्त तुम यह बात सोच लेना कि अकल्याण का दुःख इससे भी ज्यादा होता है।" विमल बाबू ने हँसकर कहा।

"यह बात तो तुम्हारे लिए भी लागू है दयामय।"

"ना, लागू नहीं है। इसका कारण, मेरे मन के अन्दर तुम कल्याण की मूर्ति हो, लेकिन तुम्हारे लिए मैं ऐसा नहीं हूँ। हो भी नहीं सकता। लेकिन इसके लिए मैं तुमको दोष भी नहीं देता, अभिमान भी नहीं करता। जानता हूँ नाना प्रकार के कारणों से दुनिया ऐसी है। तुम्हारे आ जाने से पिछले दिनों की त्रुटि दूर हो जाती, भविष्य हो जाता उज्ज्वल, मधुर, शान्त

उसका कल्याण अनेक दिशाओं में फैल जाता, मुझको बड़ा बना देता…।"

"परन्तु मैं किस स्थान पर खड़ी होऊँगी ?"

"तुम स्वयं किस स्थान पर खड़ी होगी ?" कहकर विमल बाबू बिलकुल ही मौन हो गए। फिर वे धीरे-धीरे बोले, "यह भी समझ सकता हूँ नई-बहू कि तुम हो जाओगी दूसरों की निगाहों में छोटी, वे लोग लोभी कहेंगे तुमको, कहेंगे और भी जो अन्य बातें, उनको सोचने में भी मुझे शर्म आती है, तो भी पूरे विश्वास से जानता हूं कि एक बात भी उनकी सत्य नहीं है, उससे तुम बहुत ही दूर हो, बहुत ही ऊपर हो।"

सविता की आँखों में जल भर आया। ऐसे समय में भी जो मनुष्य झूठ न बोल सका उसके प्रति श्रद्धा और कृतज्ञता से परिपूर्ण होकर उन्होंने पूछा, "दयामय, मैं लाऊँगी तुम्हारे जीवन में परिपूर्ण कल्याण और तुम लाओगे मेरे लिए परिपूर्ण अकल्याण, ऐसी अनोखी घटना किस प्रकार सच होती है? इसका उत्तर क्या है ?"

विमल बाबू ने कहा, "इसका उत्तर मुझे देना नहीं है नई-बहू। मेरे लिए यही है मेरा विश्वास। तुम्हारे लिए भी अगर ऐसा ही विश्वास कभी सच होकर दिखाई पड़े तो उसी समय केवल मन का द्वन्द्व मिट जाएगा, इसका उत्तर पाओगे, उसके पहले नहीं।"

सविता ने कहा, "उत्तर अगर कभी न मिले, सन्देह अगर न मिटे, तुम्हारा और मेरा विश्वास अगर चिर दिन ऐसे ही उलटे रास्ते से चलता रहे, तो तुम मेरा भार ढोते फिरोगे ?"

विमल बाबू ने कहा, "अगर उलटे रास्ते से ही चलने लगे, तो भी तुमको मैं दोष न दूंगा। तुम्हारा भार आज मेरे ऐश्वर्य का देने वाला है, लेकिन यह ऐश्वर्य यदि किसी समय थकावट का बोझ बनकर दिखाई पड़े तो उस दिन मैं तुमसे छुट्टी माँगूंगा। आवेदन स्वीकार करा, मित्र की ही तरह विदाई लेकर जाऊँगा, कहीं भी मालिन्य का चिह्नमात्र भी रखकर न जाऊँगा नई-बहू, आज मैं यही शपथ ले रहा हूँ।"

सविता उनके मुँह की ओर देखकर स्थिर होकर बैठी रहीं। दो-तीन मिनट के पश्चात् विमल बाबू ने हँसकर कहा, "क्या सोच रही हो, बताओ न ?"

"सोच रही हूँ कि संसार में ऐसी भयानक समस्या का उद्भव होता है क्यों? एक का प्रेम जहाँ असीम है, दूसरा उसको ग्रहण करने का रास्ता खोजने पर क्यों नहीं पाता?"

विमल बाबू ने हँसकर कहा, "खोज सच्ची होने पर ही मार्ग दृष्टि में पड़ता है, उसके पहले नहीं, वर्ना अन्धकार में सिर्फ टटोल-टटोलकर मरना पड़ता है। दुनिया में यह परीक्षा मुझे बहुत बार देनी पड़ी।"

"तुमको रास्ते का पता चल गया था?"

"हाँ, प्रार्थना में जहाँ कपटता नहीं थी, वहाँ ही मुझे पता चल गया था।"

"इसका क्या तात्पर्य?"

"तात्पर्य यह है कि जिस कामना में दुविधा है, दुर्बलता नहीं है, उसे अस्वीकार करने की शक्ति कहीं भी नहीं है। इसका ही एक नाम है विश्वास। सच्चा विश्वास संसार में व्यर्थ नहीं होता नई-बहू।"

सविता ने कहा, "मैं जो कुछ भी क्यों न करूँ दयामय, तुम्हारी अपनी चाह में तो छल नहीं है, तो फिर वह क्यों मेरे लिए व्यर्थ हो गया?"

विमल बाबू ने कहा, "व्यर्थ नहीं हुआ है नई-बहू। तुमको मैंने बड़ी मानकर माना था, यह मैं पा गया। तुमको पूर्ण रूप से मैंने नहीं पाया, यह मैं मानता हूँ परन्तु अपने जिस विश्वास को मैंने आज भी दृढ़ भाव से पकड़कर रखा है, लोभ के कारण, दुर्बलता के कारण उसको अगर छोटा न करूँ तो मेरी कामना एक दिन पूरी जरूर होगी। उस दिन तुमको परिपूर्ण रूप में ही मैं पाऊँगा। मुझे कोई भी वंचित न कर सकेगा, तुम भी नहीं।"

सविता चुपचाप देखती रहीं। जो असम्भव है वह किस तरह एक दिन सम्भव होगा, इसको वे सोचकर समझ नहीं सकीं।

दयामय के पास झुककर, छाती टेककर, चलने का रास्ता है, लेकिन स्वच्छन्दता से सीधा होकर चलने का रास्ता नहीं है?

शारदा ने आकर कहा, "राखाल बाबू आ गए हैं माँ।"

"राजू? कहाँ है वह?"

"यहाँ तो मैं हूँ।" कहकर राखाल ने प्रवेश किया। उनके पैरों की धूलि लेकर उसने प्रणाम किया, वाद को विमल बाबू को नमस्कार करके फर्श पर

बिछे गलीचे पर जा बैठा।

सविता ने कहा, "तारक मुझे ले जाने आया है। कल जाएँगी हम लोग हरिनपुर के मकान पर। तुमने सुना है राजू?"

राखाल ने कहा, "शारदा के मुँह से मैंने सुन लिया है माँ।"

"ना बेटा! उसको तो मैंने तुम्हारी राय लेने को कहा था।"

"क्या मेरी राय आपको शारदा ने बता दी है?"

सविता ने कहा, "ना। परन्तु जानती हूँ वह तुम्हारा मित्र है, उसके पास तुमको जाने में कोई आपत्ति न होगी।"

पहले तो राखाल चुप रहा। उसके पश्चात् बोला, "मेरे मतामत की आवश्यकता नहीं माँ। वह आप लोगों से बढ़कर मेरा मित्र है।"

इस बात से सविता ने आश्चर्य में पड़कर पूछा, "इसका क्या अर्थ है राजू!"

राखाल ने कहा, "सब बातों का अर्थ खोलकर बताना नहीं चाहिए। मुँह की भाषा में उसका अर्थ विकृत हो उठता है, उसे मैं बताऊँगा नहीं, लेकिन मेरे मतामत पर ही यदि आप लोगों का जाना या न जाना निर्भर करता हो तो आप लोगों का जाना न होगा। मेरी राय नहीं है।"

सविता ने अवाक् होकर कहा, "सब-कुछ हो गया है, राजू। मेरी स्वीकृति पाकर तारक सामान खरीदने दुकान पर गया है, हम लोगों ही के लिए अपने गाँव में वह सारी व्यवस्था कर आया है, हम लोगों को जिससे कष्ट न होने पावे। अब तो बिना गए उपाय नहीं है बेटा!"

राखाल ने सूखी हँसी हँसकर कहा, "उपाय नहीं है, इसे मैं जानता हूँ। मेरा मत लेकर आप कर्तव्य निर्धारित करेंगी यह उचित भी नहीं है, जरूरी भी नहीं है। कल शारदा ने बताया था, आपने शायद उससे कहा है, लड़के के बड़ा हो जाने पर उसका मत लेकर काम करना पड़ता है। आपके मुँह की यह बात मैं सदैव कृतज्ञता के साथ याद रखूँगा, लेकिन जिस लड़के के केवल दूसरों की बेगारी करते-करते ही सब दिन कटते रहे हैं, उसकी आयु कभी बढ़ती नहीं। दूसरों के लिए भी नहीं, माँ के लिए भी नहीं। मैं आपका वही बेटा हूँ नई-माँ।"

सविता नत-मस्तक चुपचाप बैठी रहीं।

राखाल ने कहा, "मन में आप दुःख मत मानियेगा नई-माँ, लोगों की अवज्ञा के नीचे लोगों का बोझ ढोते फिरना मेरा भाग्य है। आपके चले जाने के बाद मुझे यदि कुछ करने का हो तो आदेश दे जाइए। माँ की आज्ञा की मैं किसी भी कारण अवहेलना न करूँगा।"

शारदा मौन होकर सुन रही थी। अब वह मानो और सह न सकी, बोल उठी, "आप बहुतों का बहुत कुछ ही करते हैं, लेकिन इस प्रकार माँ को आघात देना ठीक नहीं है।"

सविता ने उसको आँख के इशारे से मना करके कहा, "शारदा, मुझे कहने दो, कहने दो राजू को, ऐसी बात मेरे मुँह से कभी न निकलेगी।"

राखाल ने कहा, "इसका अर्थ है आप तो शारदा नहीं हैं माँ। शारदाएँ मैंने बहुत देखी हैं। वे लोग कड़ी बात का अवसर मिलने पर उसे छोड़ नहीं सकतीं। उससे कृतज्ञता का उनका बोझ हल्का हो जाता है। सोचती हैं, लेन-देन चुकता हो गया।"

सविता ने सिर हिलाकर कहा, "ना वेटा, उसके प्रति तुमने बहुत ही अविचार कर दिया। संसार में शारदा एक ही है, अनेक नहीं हैं राजू।"

शारदा माथा झुकाए बैठी थी, चुपचाप उठकर चली गई।

सविता ने मीठे स्वर में पूछा, "तारक के साथ क्या तुम्हारा झगड़ा हुआ है राजू?"

"ना माँ, उसके साथ मेरी भेंट ही नहीं हुई है।"

"हम लोगों को लिवा जाने की बात उसने तुमको नहीं बताई?"

"ना। शारदा कहती है, मेरे मकान पर जाने का उसके पास समय नहीं। अब माँ, मेरे जाने का समय हो गया, मैं चलता हूँ।" यह कहकर राखाल उठकर खड़ा हुआ।

विमल बाबू ने उस समय तक एक भी बात नहीं कही थी। इस बार उन्होंने बात की। सविता को लक्ष्य करके उन्होंने कहा, "अपने लड़के के साथ मेरा परिचय करा दोगी नई-बहू?"

सविता ने कहा, "वह मेरा बेटा है, यही उसका परिचय है। लेकिन तुम्हारा परिचय उससे मैं क्या दूं दयामय, मैं स्वयं भी तो अभी तक नहीं जानती।"

"जब जान सकोगी तब दोगी ?"

"दूँगी। उसके लिए मेरी छिपी बात कुछ भी नहीं है। अपने सब दोष-गुणों को लेकर ही मैं उसकी नई-माँ हूँ।"

राखाल ने कहा, "बचपन में जब कोई भी मेरा अपना नहीं रहा, तब मुझे उन्होंने आश्रय दिया था, पाल-पोसकर आदमी बनाया था, माँ कहना सिखाया था, तब से उन्हें माँ कहकर ही जानता हूँ। सदैव माँ कहकर ही जानूँगा।" यह कहकर झुककर उसने फिर एक बार माँ के चरणों की धूलि ले ली।

विमल बाबू ने कहा, "तारक के यहाँ तुम्हारी नई-माँ जाना चाहती हैं कुछ दिनों के लिए। यहाँ अच्छा नहीं लग रहा है। इसी कारण मैं कहता हूँ जाना ही अच्छा है। सम्मति है ?"

राखाल ने हँसकर कहा, "है।"

"सच कहो राजू ! क्योंकि तुम्हारी असम्मति से उनका जाना न होगा, मैं मना करूँगा।"

"आपकी मनाही वे सुनेंगी ?"

"कम-से-कम अपने-आपसे नई-बहू ने यही प्रतिज्ञा की है।" यह कहकर विमल बाबू जरा हँस पड़े।

सविता ने उसी समय स्वीकार करके कहा, "हाँ, यही प्रतिज्ञा मैंने की है। तुम्हारा आदेश उल्लंघन न करूँगी।"

यह सुनकर राखाल की आँखों की दृष्टि कुछ देर के लिए रूखी हो गई, लेकिन उसी समय अपने को शान्त करके सहज स्वर से उसने कहा, "अच्छी बात है, आप लोगों की समझ में जो अच्छा जान पड़े कीजिए, मुझे आपत्ति नहीं है नई-माँ।" यह कहकर वह किसी प्रश्न के पहले ही नीचे चला गया।

शारदा नीचे रास्ते में एक ओर खड़ी थी। उसने आकर कहा, "एक बार मेरे कमरे में चलना होगा देवता।"

"क्यों ?"

"शारदाओं को बहुत देखा है, आप कह चुके हैं। आपसे उन लोगों का परिचय लूँगी।"

"लेकर क्या होगा ?"

"स्त्रियों के प्रति आपके मन में भयानक घृणा है। कृतज्ञता का ऋण वे लोग किस वस्तु से चुकाती हैं आपके पास बैठकर उसकी कहानी सुनूंगी।"

राखाल ने कहा, "कहानी सुनाने का समय मेरे पास नहीं है, मुझे काम है।"

शारदा ने कहा, "मुझे भी काम है। लेकिन मेरे कमरे में अगर आज न चलिएगा, कल सुन लीजिएगा शारदाएँ अनेक नहीं थीं, दुनिया में सिर्फ एक ही थी।"

उसके स्वर के अचानक परिवर्तन से राखाल सहम गया। उसे याद आ गई, वही प्रथम दिन की बात, जिस दिन शारदा प्राण देने जा रही थी।

शारदा ने पूछा, "बतलाइए, क्या कीजिएगा ?"

राखाल ने कहा, "रहने दो काम-काज। चलो, तुम्हारे ही कमरे में चलें।"

सत्रह

राखाल शारदा के कमरे में जाकर बिछौने पर बैठ गया।

उसने पूछा, "क्यों बुलाकर लाई हो ?"

शारदा ने कहा, "जाने के पहले और एक बार आपके पैरों की धूलि लेनी पड़ेगी, इसलिए।"

"धूलि तो पड़ गई, अब तो उठूं ?"

"इतनी हड़बड़ी ? दो-चार बातें कहने का भी समय न दीजिएगा ?"

"शारदा, उन बातों को तो अनेक बार कह चुकी हो। तुम कहोगी, 'देवता, अपने मेरी प्राण-रक्षा की, बीस-पच्चीस रुपये देकर चावल-दाल खाने को दिए हैं, नई-मां से कहकर शेष किराया छुड़वा दिया है, आपके प्रति मैं कृतज्ञ हूं। जितने दिन बचूंगी आपका ऋण चुका न सकूंगी।' इसमें नया कुछ भी नहीं है। तो भी, जाने के पहले फिर एक बार कहना चाहती हो तो कह डालो। जल्दी करो। मेरे पास अधिक समय नहीं है।"

शारदा ने कहा, "बातें नई भले ही न हों, बहुत मीठी हैं। जितनी वार सुनी जाती हैं पुरानी नहीं होतीं—ठीक है न देवता ?"

"हाँ, ठीक है। मीठी बात तुम्हारे मुँह से और भी मीठी सुनाई पड़ती हैं, मैं यह अस्वीकार नहीं करता। समय रहने से बैठा-बैठा सुनता रहता। लेकिन अब समय नहीं है। इसी समय जाना पड़ेगा।"

"जाकर रसोई पकानी पड़ेगी ?"

"हाँ।"

"उसके पश्चात् खाकर सो रहना पड़ेगा ?"

"हाँ।"

"उसके बाद आँखों में नींद न आएगी, बिस्तर पर पड़कर सारी रात छटपटाना पड़ेगा न देवता !"

"यह बात तुमसे किसने कही ?"

"किसने कही जानते हैं ? जो शारदा दुनिया में केवल एक ही है, उसी ने।"

राखाल ने कहा, "तो इस दशा में उस शारदा ने भी तुमसे गलत वताया है। मैंने ऐसा कोई भी अपराध नहीं किया है कि दुश्चिन्ता से बिस्तर पर पड़कर छटपटाना पड़ता है। मैं लेट जाता हूँ और सो जाता हूँ। मेरे लिए तुमको सोचना न पड़ेगा।"

शारदा ने कहा, "अच्छी बात है, अब न सोचूंगी। आपकी ही बात सुनूंगी, लेकिन मैंने ही क्या अपराध किया है जिसके कारण सो नहीं सकती, सारी रात जागकर काटती हूँ।"

"यह तो तुम ही जानती हो।"

"आप नहीं जानते ?"

"ना। दुनिया में कहाँ किसकी नींद में बाधा पड़ रही है, यह जानना सम्भव नहीं और इसके लिए मेरे पास समय भी नहीं है।"

"समय नहीं है क्यों—?" शारदा क्षण-भर चुप रही। फिर एकाएक हँस पड़ी। बोली, "अच्छा देवता, आप इतने डरपोक क्यों हैं ? क्यों नहीं कहते कि शारदा, हरिनपुर तुम्हारा जाना न होगा। नई-माँ का जी चाहे तो

वह चली जाएँ, लेकिन तुम नहीं जाओ। इतना कहना भी क्या इतना भी कठिन है ?"

राखाल को न सूझा कि इसके उत्तर में क्या कहना चाहिए। इसी से कुछ हत्‌बुद्धि की तरह बोला, "तुम लोगों ने जाना तय कर लिया है, तब मैं व्यर्थ किसलिए रोकने की चेष्टा करूँ ?"

शारदा ने कहा, "केवल इसीलिए कि आपकी इच्छा नहीं है कि मैं जाऊँ। यही तो सबसे बड़ा कारण है देवता।"

"ना। किसी एक आदमी की इच्छा को ही 'कारण' नहीं कहते। तुम्हें मना करने का अधिकार मुझे नहीं है।"

शारदा ने कहा, "भले ही न हो, किन्तु वही आपका अधिकार है। मुँह खोलकर कहिए कि शारदा, तुम हरिनपुर न जाने पाओगी।"

राखाल ने सिर हिलाकर उत्तर दिया, "ना। व्यर्थ अधिकार मैं किसी पर नहीं लादता।"

"नाराजगी से तो नहीं कह रहे हैं ?"

"ना। मैं सत्य ही कहता हूँ।"

शारदा उसके मुँह की ओर ताककर बोली, "ना, यह सत्य नहीं है—किसी तरह सत्य नहीं है। मुझे मना कीजिए देवता, मैं माँ से जाकर कह आऊँ कि मेरा हरिनपुर जाना नहीं होगा, देवता ने मना कर दिया है।"

राखाल ने प्रत्युत्तर में उत्तर दिया, "ना, तुम्हें मैं मना न कर सकूँगा, मुझे यह अधिकार नहीं है।"

शारदा ने कहा, "अधिकार तो है, लेकिन अब मैं कहूँगी कि हमेशा केवल परायी आज्ञा मानते-मानते आप स्वयं आज्ञा देने की शक्ति खो बैठे हैं। विश्वास नष्ट हो गया है। जो आदमी दावा करते घबराता है, उसका सारा जीवन दूसरों का दावा पूरा करते-करते ही बीतता है। शुभाकांक्षिणी शारदा की यह बात याद रखिएगा।"

"यह तुम किससे कहती हो ? मुझसे ?"

"हाँ, आपसे ही।"

"हो सका तो स्मरण रखूँगा। किन्तु मैं पूछता हूँ कि तुम्हें रोकने या मना करने से मुझे लाभ क्या है ? यह यदि समझा सको तो शायद अब भी

मैं सचमुच तुम्हें मना कर सकता हूँ ।"

"क्या यह सत्य जानने को भी तुम्हारा जी नहीं चाहता कि अपनी इच्छा से तुम्हारी दासता स्वीकार करने वाला एक आदमी ही इस संसार में है ?"

"जानकर क्या होगा ?"

क्षण-भर राखाल के मुख की ओर ताकते रहकर शारदा ने कहा, "शायद कुछ भी न होगा । शायद मेरे भी समझने का समय आ गया है । एक बात कहती हूँ देवता, अकारण निर्दय हो सकना ही पुरुष का पौरुष नहीं है ।"

राखाल ने उत्तर दिया, "यह मैं भी जानता हूँ । किन्तु अकारण अति कोमलता भी मेरी प्रकृति में नहीं है ।"

कुछ स्थिर रहकर, उसने पहले से भी अधिक रूखे स्वर में कहा, "देखो शारदा, अस्पताल में जिस दिन तुम्हें चेत आया था, तुम स्वस्थ हो गई थीं, उस दिन की बात तुम्हें कुछ याद आती है ? तुमने छल करके बताया कि तुम अल्पशिक्षित सहज-सरल देहात की लड़की, गरीब भले घर की बहू हो । तुमने कहा कि मैं न बचाऊँ तो तुम्हारे बचने का कोई उपाय नहीं है । मैंने तुम पर अविश्वास नहीं किया । उस दिन जितना या जो कुछ मैं कर सकता था उसे करना मैंने अस्वीकार भी नहीं किया । किन्तु आज वह सब तुम्हारे लिए हँसने की चीज है । उन सब बातों को तुमने अवहेलना में डाल दिया । आज आए हैं विमल बाबू—जिनके ऐश्वर्य की सीमा नहीं है—आया है तारक, आई हैं नई-माँ । उस दिन का अब कुछ शेष नहीं है । इस छलना का क्या प्रयोजन था, जरा स्पष्ट करो ।"

शारदा अभियोग को सुनकर विस्मय से अभिभूत हो गई ।

उसके बाद धीरे-धीरे बोली, "मेरे कहने में झूठ था, किन्तु किसी प्रकार की छलना नहीं थी देवता । वह झूठ भी केवल इसलिए था कि मैं एक स्त्री हूँ । उसकी लज्जा को ढकने के लिए । इसको जब मेरा चरित्र समझकर आपने भूल की, तब मैं और भिक्षा नहीं माँगूँगी । कल माँ ने मुझे कुछ रुपये दिए हैं वस्तुएँ खरीदने के लिए । लेकिन, मुझे उनकी कोई आवश्यकता नहीं है । जो रुपये आपने मुझे दिए थे, उन्हें लौटा दूं ?"

राखाल ने और भी कठोर होकर कहा, "तुम्हारी इच्छा। किन्तु रुपये मिलने से मुझे सुविधा होगी। मैं बड़ा आदमी नहीं हूँ शारदा, बहुत ही गरीब हूँ—यह तुम जानती हो।"

शारदा ने तकिए के नीचे से रूमाल में बँधे रुपये निकालकर, गिनकर, राखाल के हाथ में देकर कहा, "तो ये लीजिए। लेकिन मैं इतनी नासमझ नहीं हूँ कि रुपयों से आपका ऋण उतर जाएगा। तो भी बिना दोष के आपने जो दण्ड मुझे दिया, उस अन्याय का किसी प्रकार आपका परित्राण न होगा।"

"और कुछ कहोगी?"

"ना।"

"तो जाऊँ? रात हो गई है।"

शारदा प्रणाम करते समय राखाल के पैरों पर सिर रखकर रो पड़ी। इसके बाद आप ही आँखें पोंछकर उठ खड़ी हुई।

"जाता हूँ।"

"अच्छा।"

राखाल मार्ग में सोच न पाया कि अभी-अभी वह जो पुरुष के अयोग्य सब मान-अभिमान का खेल समाप्त करके आया है, वह किसलिए? काहे के लिए यह सब नाराजी? शारदा ने क्या किया है? उसके अपराध को बताना जैसे कठिन है, वैसे ही उसके अपने हृदय में यह जलन किस जगह है; उसे उँगली से दिखाना भी कठिन है।

राखाल का हृदय चोट करके उससे बार-बार कहने लगा कि शारदा भली है, शारदा बुद्धिमती है, शारदा जैसा रूप सहज ही नहीं दिखाई पड़ता। शारदा उसके निकट कितनी कृतज्ञ है, इस बात को बहुत बार वह बुरी तरह से जता चुकी है। आज भी पैरों पर सिर रखकर इस बात को जताने में उसने त्रुटि नहीं की। और भी कुछ जैसे वह बारम्बार आभास से जताती है, उसका अर्थ केवल कृतज्ञता ही नहीं है, शायद और भी गहरा, और भी बड़ा भाव है। शायद वह प्रेम है।

राखाल का मन भीतर-ही-भीतर संशय से डोल उठा। वह बहुत दिन, बहुत-सी नारियों के संस्पर्श में, बहुत तरह से आया है, किन्तु किसी स्त्री ने

किसी दिन उसे प्यार किया हो—यह बात ऐसी अचिंतित है कि वह आज प्रायः असम्भव ही जान पड़ती है। आज क्या वही वस्तु शारदा उसे देना चाहती है? लेकिन वह किस लज्जा से उसे ग्रहण करेगा? शारदा विधवा है, शारदा निन्दित कुल-त्यागिनी है। इस प्रेम में न गौरव है, न सम्मान।

राखाल अपने को समझाकर कहने लगा—मैं गरीब हूँ, इस कारण कंगाल की वृत्ति और प्रवृत्ति तो नहीं ग्रहण कर सकता। अन्न का अभाव है, इससे राह की जूठन उठाकर मुँह में डाल लूँगा? यह नहीं हो सकता—यह असम्भव है।

तब भी हृदय के भीतर जैसे कोई निरन्तर कहता है कि बाहर की घटना जरूर ऐसी है, किन्तु भीतर का जो परिचय उस पहले दिन से निरन्तर ही जो उसने पाया है, उसके विचार की धारा क्या उस आईने की किताब खोलने से उसमें मिलेगी? जिन स्त्रियों के संसर्ग में अब तक उसके दिन बीते हैं, उनमें शारदा की तुलना कहाँ है? निष्कपट नारीत्व की इतनी बड़ी महिमा कहाँ ढूंढ़े मिलेगी? और उसी शारदा का आज वह किस बुरी तरह से अपमान कर आया।

उसने घर पहुँचकर देखा कि बुढ़िया दासी उपस्थित है। कुछ विस्मित होकर ही उसने पूछा, "तुम अभी तक नहीं गईं?"

दासी ने कहा, "ना भैया, उस वेला तुमने कुछ खाया-पिया नहीं, इस वेला सब तैयारी कर रखी है। पाव-भर मांस भी खरीद लाई हूँ—सब ठीक-ठाक करके जाऊँगी।"

सवेरे सचमुच ही उसने कुछ नहीं खाया था। खाने में मक्खी पड़ जाने से विघ्न पड़ गया था, किन्तु राखाल को याद नहीं था। इसके पहले भी कितने ही दिन ऐसा हुआ है, तब इसी दासी ने सवेरे के स्वल्प आहार को रात के भोजन की तैयारी करके पूरा कर दिया है। यह कुछ नया नहीं है, तथापि उसकी बात सुनकर राखाल की आँखों में आँसू भर आए।

उसने कहा, "तुम बूढ़ी हो नानी, मर जाओगी तो मेरी कैसी दुर्दशा होगी, बताओ? संसार में और कोई नहीं जो तुम्हारे इस भैया की सुधि ले।"

इस स्नेह से दासी की आँखों में भी आँसू आ गए। उसने कहा, "सच

ही तो है। बूढ़ी हुई हूँ, मरूँगी नहीं? न जाने कितनी बार तुमसे कह चुकी हूँ, पर तुम सुनते ही नहीं, हँसकर टाल देते हो। अब मैं कुछ नहीं सुनूँगी, ब्याह तुमको करना ही होगा। दो-चार दिन जीती हूँ, अपनी आँखों देख जाऊँगी। नहीं तो मरकर भी सुख नहीं पाऊँगी भैया।"

राखाल ने हँसकर कहा, "तब तो उस सुख की आशा नहीं है नानी, मेरे घर-द्वार नहीं है, माँ-बाप या अपना कोई नहीं है, बड़ी तनखा की नौकरी नहीं है। मुझे कौन भला अपनी लड़की देगा?"

"वाह! लड़की की चिन्ता? एक बार तुम अपने मुँह से कहो तो अनेक सम्बन्ध आ जाएँगे।"

"तो फिर एक सम्बन्ध कर न दो नानी!"

"समझते हो कि कर नहीं सकती? मेरे हाथ में एक आदमी है, कल ही उसको इस काम में लगा दे सकती हूँ।"

राखाल हँसने लगा, बोला, "यह तुमने जैसे लगा दिया, लेकिन बहू आकर खाएगी क्या? बताओ? गोते खाएगी क्या?"

दासी ने बिगड़कर उत्तर दिया, "गोते किसलिए खाएगी भैया? गिरस्त घरों में जो सब खाते हैं, वह भी वही खाएगी। तुमको चिन्ता न करनी होगी। जिन्होंने जीवन दिया है वही आहार भी देंगे।"

राखाल ने कहा, "यह व्यवस्था पहले के युग में थी नानी, अब नहीं है।" यह कहकर राखाल ने फिर हँसकर रसोई में मन लगाया। वह कुकर में खाना पकाता है। शौकीन आदमी है—उसके पास छोटे, बड़े, मँझले अनेक आकार-प्रकार के कुकर हैं। आज खाना पकाया बड़े कुकर में। तीन-चार पात्रों में तरह-तरह की तरकारियाँ और मांस दासी ने पहले ही बनाकर रख दिया था। बहुत दिनों से इस काम में दासी पक्की हो गई है—उसे कुछ बताना नहीं पड़ता।

दासी चौका लगाकर, थाली रखकर जब घर जाने लगी तो पेट-भर खाने के लिए राखाल को अपने सिर की शपथ देती गई। बोली, "सवेरे आकर अगर देखूँगी कि तुमने सब नहीं खाया, बचा पड़ा है, तो अप्रसन्न होऊँगी।"

राखाल ने कहा, "ऐसा ही होगा नानी, पेट भरकर खाऊँगा और जो

चाहे करूँ, तुमको दु:खी नहीं करूँगा।"

दासी के जाने पर राखाल ईजी चेयर पर लेट रहा।

खाना तैयार होने में लगभग दो घण्टे की देर थी। समय काटने के लिए राखाल ने एक पुस्तक उठा ली, पर किसी प्रकार पढ़ने में मन नहीं लगा सका।

उसे बार-बार शारदा का ही ध्यान आने लगा। याद आने लगी, अपनी अकारण अधीरता। वह अपने को सँभाल नहीं सका और भीतर के क्रोध और क्षोभ की ज्वाला रूढ़ भाव के साथ निरन्तर बाहर फूट निकली —बच्चों की तरह। बुद्धिमती शारदा के समझने को कुछ बाकी नहीं है। इस प्रकार अपने को पकड़ा देने की क्या आवश्यकता थी? अपने को शारदा की दृष्टि में छोटा बनाने की क्या आवश्यकता थी? मन-ही-मन उसकी लज्जा की सीमा नहीं रही। जी चाहा कि अगर किसी तरह आज की सारी घटना को पोंछ दे सके।

अपने जीवन की वह कहानी शारदा आज तक किसी से नहीं कह सकी, केवल उसी को सुनाई है। उस निश्छल विश्वास का प्रतिदान भला उसने क्या पाया? पाई केवल अश्रद्धा और अकारण लांछना। शारदा ने उसकी क्या क्षति की थी? शारदा ने उसकी एक भी बात का प्रतिवाद नहीं किया, केवल निरुत्तर रहकर सहती गई। निरुपाय रमणी के इस अपमान ने इतनी देर में लौटकर जैसे उसी का अपमान किया। उत्तेजना से चंचल होकर राखाल कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ और बोला—"रहने दो खाना। इसी रात को जाकर उससे क्षमा-प्रार्थना कर आऊँ। उससे स्पष्ट करके कहूँगा कि कहाँ मेरे जलन है, कहाँ मेरे व्यथा है, यह मैं ठीक-ठीक नहीं जानता शारदा, किन्तु जो सब बातें मैं तुमसे कह गया हूँ, वे सच नहीं हैं, एकदम झूठ हैं।"

कुकर में खाना पकता रहा। घर की रोशनी जलती रही।

राखाल ने चादर उठाकर कंधे पर डाली, द्वार में ताला लगाया और बाहर निकल पड़ा।

उसे पहुँचने में अधिक देर नहीं लगी। सीधे शारदा की कोठरी के सामने आकर देखा, दरवाजे पर ताला लटक रहा है, वह घर में नहीं है। तब वह

ऊपर पहुँचा। सामने ही दीख पड़ा, दो कुर्सियों पर आमने-सामने सविता और विमल बाबू बैठे हैं। बातें हो रही हैं। उसे देखकर कुछ विस्मित होकर सविता ने ही प्रश्न किया, "तुम क्या अब तक यहीं थे राजू?"

"ना माँ, डेरे पर चला गया था।"

"डेरे से फिर लौट आए? क्यों?"

राखाल चट से उत्तर न दे सका। फिर बोला, "कुछ काम है माँ, सोचा तारक से बहुत दिनों से भेंट नहीं हुई, जरा एक बार मिल आऊँ। कल तो फिर समय मिलेगा नहीं।"

"ना। हम लोग सवेरे ही रवाना हो जाएँगे।"

विमल बाबू ने पूछा, "तारक क्या लौट आया है?"

सविता ने कहा, "ना, पर वह लड़का हमारे लिए इतना क्या-क्या खरीदेगा, मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है।"

इस बात का जवाब विमल बाबू ने दिया। बोले, "वह जानता है कि उसके अतिथि कोई साधारण आदमी नहीं हैं। उसे उनकी मर्यादा के अनुसार आयोजन करना चाहिए।"

सविता ने हँसकर कहा, "उसे तुमसे सामान की लिस्ट लिखा लेनी चाहिए थी।"

विमल बाबू हँसे। बोले, "मेरी लिस्ट उसके साथ कैसे मेल खाएगी नई-बहू! वह तो पृथक्-ही-पृथक् हुआ करती है। तभी मन प्रसन्न होता है।"

इस आलोचना में राखाल योग न दे सका। एकाएक उसका मन भीतर से जैसे जल उठा। पल-भर बाद अपने को कुछ शान्त करके उसने पूछा, "शारदा को तो मैंने उसकी कोठरी में नहीं देखा नई-माँ!"

सविता ने कहा, "आज क्या वह घर में ठहर सकती है! भैया तारक भोजन करेगा। रसोई बनाने वाले महाराज को हटाकर वह दोपहर से ही एक प्रकार से भोजन में लग गई है। न जाने क्या-क्या प्रबन्ध किया है, कुछ ठिकाना नहीं।"

विमल बाबू ने कहा, "उसने मुझसे भी भोजन करने के लिए कहा है नई-बहू।"

"तुम्हारा भी निमन्त्रण है क्या ?"

"हाँ। तुमने तो कभी खाने के लिए कहा नहीं, लेकिन उसने मुझे किसी प्रकार खाए बिना जाने नहीं दिया।"

"इसी से शायद आज अब तक बैठे हुए हो? मैं समझी थी, शायद मुझसे बातें करने के लोभ से बैठे हो।" यह कहकर सविता होंठों में हँस दीं।

विमल बाबू ने भी हँसकर कहा, "झूठ बात पकड़ ली जाए तो खोंचा नहीं देना चाहिए नई-बहू। बड़ा पाप लगता है।"

राखाल ने मुंह फेर लिया। इस हास-परिहास से फिर एक बार उसका जी जल उठा।

सविता ने पूछा, "शारदा ने तुमसे भोजन करने के लिए नहीं कहा राजू ?"

"ना माँ।"

सविता ने अप्रतिभ होकर कहा, "तो जान पड़ता है, वह भूल गई।" यह कहकर वह स्वयं ही शारदा को पुकारने लगीं। उसके आने पर पूछा, "मेरे राजू से खाने के लिए नहीं कहा शारदा ?"

"ना।"

"क्यों नहीं कहा? स्मरण नहीं रहा शारदा ?"

शारदा चुप ही रही।

सविता ने कहा, "याद ही नहीं था राजू। किन्तु यह भूलना भी अन्याय है।"

राखाल ने कहा, "याद न रहना दुर्भाग्य हो सकता है नई-माँ, किन्तु उसे अन्याय नहीं कहा जा सकता। शारदा ने मुझसे पूछा था कि घर पर जाकर अब शायद आपको रसोई बनानी पड़ेगी? मैंने कहा, 'हाँ।' फिर प्रश्न किया, 'उसके बाद खाना होगा?' मैंने कहा, 'हाँ।' किन्तु इसके बाद भी मुझसे खाने को कहने की बात उसे याद नहीं आई। मगर यह जान रखिएगा नई-माँ कि याद न रहना न्याय-अन्याय के अन्तर्गत नहीं है, चिकित्सा के अन्तर्गत है।" इतना कहकर राखाल नीरव हँसी में तीक्ष्ण विद्रूप मिलाकर बरबस हँसने लगा।

सविता सोच न पाई कि क्या कहे। शारदा वैसी ही चुपचाप खड़ी रही।

राखाल ने मन-ही-मन समझा कि अन्याय हो रहा है, उसकी बात मिथ्या न होकर मिथ्या से बढ़कर हो रही है, तो भी रुक न सका। बोला, "तारक यहाँ आने पर भी मुझसे मिल नहीं पाता। शारदा कहती है कि उनके पास समय नहीं है। यह सच भी हो सकता है, इसी से समय निकालकर मैं ही उससे मिलने आया हूँ—खाने नहीं आया नई-माँ!"

जरा रुककर कहा, "शारदा को शायद सन्देह है कि तारक मुझे प्रेम नहीं करता, मेरे साथ खाने के लिए बैठना उसे अच्छा नहीं लगेगा। मैं उसे दोष नहीं दे सकता माँ। तारक यहाँ अतिथि है, उसकी सुख-सुविधा को ही पहले देखना आवश्यक है।"

शारदा वैसी ही मौन रही।

सविता ने व्याकुल होकर कहा,"तारक अतिथि है, किन्तु तुम तो भैया, मेरे घर के लड़के हो राजू। मैं असुविधा में किसी को डालना नहीं चाहती, जिसकी जो इच्छा हो करे, किन्तु मेरे घर मेरे पास बैठकर आज तुमको खाना ही होगा।"

राखाल ने सिर हिलाकर अस्वीकार किया। बोला, "ना, यह नहीं हो सकता।" फिर कहा, "मेरी बूढ़ी नानी जीती रहे, मेरा कुकर बना रहे, उसका पका भोजन ही मेरे लिए अमृत है। बड़े घर के बढ़िया भोजन का मुझे लोभ नहीं है नई-माँ।"

सविता ने कहा, "लोभ के लिए नहीं कहती राजू। किन्तु यदि बिना खाए आज तुम चले जाओगे तो मुझे असीम दुःख होगा। यह मैं तुमसे कहे देती हूँ।"

मगर अपराध अधिक बढ़ गया।

राखाल ने निर्मम होकर कहा, "विश्वास नहीं होता नई-माँ। जान पड़ता है, यह केवल बात-की-बात है, कहना चाहिए, इसीलिए कही गई। मैं कौन हूँ जो मेरे बिना खाए चले जाने से आपको असीम दुःख होगा? आपको किसी के लिए भी दुःख-बोध नहीं होता। यही आपका स्वभाव है।"

सविता के मुख से असह्य विस्मय से केवल इतना ही निकला कि "कहते क्या हो राजू?"

"कोई नहीं कहता, इसी से मैंने कह दिया नई-माँ। आपके सौजन्य की,

सहृदयता की, आपकी विचार-बुद्धि की तुलना नहीं है। आप आर्त की परम हितैषिणी और बन्धु हैं, लेकिन आप दुःखी की माँ नहीं हैं। दुःख का अनुभव केवल आपका बाहर का ऐश्वर्य है, अन्तर का धन नहीं है। इसी से आप जैसे सहज ही किसी को ग्रहण करती हैं, वैसे ही अवहेलना के साथ छोड़ भी देती हैं। आपको हिचक नहीं होती।"

विस्मय से आँखें फाड़ विमल बाबू स्तब्ध भाव से ताकते रहे।

राखाल ने कहा, "आपने मेरे लिए बहुत किया है नई-माँ, उसे मैं सदैव स्मरण रखूँगा। केवल जबानी बातों से नहीं, देह और मन की सारी शक्ति से। आपसे शायद अब फिर मेरी भेंट न होगी। हो, यह इच्छा भी मेरी नहीं है। किन्तु यदि मुझसे कुछ पुण्य बन पड़ा हो तो उसके बदले भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि अबकी बार वह आप पर दया करे, 'अनजाने' के बीच से 'जाने' के भीतर वह आपको स्थान दे।" अन्तिम शब्द कहते समय एकाएक उसका गला भर आया।

सविता एकटक उसकी ओर ताक रही थीं, बात सुनकर क्रोध नहीं किया, बल्कि गहरे स्नेह के स्वर में बोलीं, "वही हो राजू, भगवान् तुम्हारी ही प्रार्थना स्वीकार करे—मेरे भाग्य में वही घटित हो।"

"चलता हूँ नई-माँ!"

सविता ने उठकर उसका हाथ पकड़कर कहा, "राजू, क्या हो गया है बेटा?"

"होगा क्या नई-माँ?"

"ऐसा कुछ जिसने तुम्हें ऐसा अस्थिर कर दिया है। तुम तो निष्ठुर नहीं हो—कटु बात कहना तो तुम्हारा स्वभाव नहीं है।"

राखाल ने झुककर केवल सविता के पैरों की रज माथे से लगाई, कुछ नहीं कहा। जब वह चलने को उद्धत हुआ, तब विमल बाबू ने कहा, "राजू, हम दोनों का विशेष परिचय नहीं है, किन्तु मुझे तुम अपना हितैषी बन्धु ही समझो।"

राखाल ने इसका भी उत्तर नहीं दिया, धीरे-धीरे नीचे उतर गया। कल की तरह आज भी सीढ़ियों के पास शारदा खड़ी थी। पास आते ही धीमी आवाज में उसने कहा, "देवता!"

"क्या चाहती हो तुम ?"

"आपने कहा था कि अनेक शारदाओं में मैं भी एक हूँ। शायद आपकी बात ही सच है।"

"यह मैं जानता हूँ।"

"नाना प्रकार से दया करके आपने मुझे बचाया था। आप अनेक आदमियों का बहुत कुछ करते हैं, मेरा भी उपकार किया, इससे आपकी कोई क्षति तो नहीं हुई ? यदि जीती रही तो केवल इतना ही याद रखना चाहती हूँ।"

राखाल मौन रहा। हठात् बाहर निकल गया।

अठारह

दूसरा दिन !

सवेरे हरिनपुर जाने का प्रवन्ध जव सम्पूर्ण हो चुका तो सविता ने शारदा को बुलाकर कहा, "अपना सामान ऊपर भेज दो शारदा, तारक सारे सामान की लिस्ट वना रहा है।"

शारदा ने दुःखी स्वर में कहा, "मेरा सामान नहीं जाएगा माँ।"

तारक नीचे से स्टूल पर बैठा नोटबुक में जल्दी-जल्दी माल-असबाब की लिस्ट वना रहा था। शारदा का उत्तर उसके कानों में पहुँचा। झुके हुए सिर को ऊपर उठाकर वह विस्मित स्वर में वोला, "सामान न जाएगा कैसे !"

सविता भी शारदा की बात से विस्मित हुई थीं। धीमे स्वर में बोलीं, "क्या साथ ले जाने योग्य सामान तुम्हारे पास नहीं है शारदा ? तो पहले क्यों नहीं वताया—मैं उसका प्रवन्ध करा देती।"

शारदा ने मलिन हँसी हँसकर कहा, "विछौना मेरा पुराना और फटा हुआ अवश्य है, तो भी उसे साथ ले जाने में मुझे कोई लज्जा न थी। पर हरिनपुर मेरा जाना न होगा माँ।"

तारक और सविता प्रायः एक साथ कह उठे, "यह क्या ?"

शारदा ने सूखी हँसी हँसकर कहा, "मैं यहाँ से कहीं हिल नहीं सकती,

लाचार हूँ। नहीं तो माँ की सेवा से अपने को वंचित करके इस शून्यपुरी में अकेले पड़े रहने का दण्ड मैं कभी न भोगती।"

सविता अवाक् हो तीव्र दृष्टि से शारदा के मुँह की तरफ ताककर जैसे कुछ खोजने लगीं।

तारक उत्तेजित होकर कह उठा, "कैसे? कल तो नई-माँ के साथ हरिनपुर जाने के लिए आप तैयार थीं और आज सवेरे ही यह घर छोड़कर हिल नहीं सकतीं, यह तय कर डाला! ना, ये सब व्यर्थ की बातें नहीं चलेंगी। कोई औरत-लड़का साथ न जाने से तुम्हें देहात में अकेली…नहीं, यह नहीं हो सकता।"

शारदा ने उदास स्वर से कहा, "मैं सच ही कह रही हूँ तारक बाबू। जाने का मुझे समय नहीं है। यह व्यर्थ का बहाना नहीं है।"

तारक ने अविश्वास-भरे कण्ठ से प्रश्न किया, "क्यों, सुनूँ तो?"

शारदा स्थिर दृष्टि से पाषाण-प्रतिमा के समान खड़ी रही। कुछ भी उत्तर उसने नहीं दिया।

कुछ देर चुप रहकर तारक ने कहा, "उत्तर क्यों नहीं देतीं?"

शारदा फिर भी शान्त रही।

तारक ने हताश भाव से हाथ की नोटबुक को कमरे के फर्श पर फेंककर कहा, "तो अब किसी प्रकार दोपहर की ट्रेन से आपका जाना न होगा नई-माँ! साथ में कोई भी स्त्री-बच्चा न रहने से उस देहात में अकेली आप कैसे रह सकेंगी?"

सविता ने इतनी देर तक कोई बात नहीं कही थी। उन्होंने मीठी हँसी हँसकर कहा, "तारक, देहात में मेरा जन्म हुआ था, जीवन का अधिकांश भाग देहात में ही बीता है, वहाँ मुझे कोई कष्ट नहीं होगा।"

तारक ने व्यंग्य के स्वर से कहा, "कौन है वह महान् व्यक्ति? क्या मैं जान सकता हूँ जिनकी आज्ञा के बिना आप नई-माँ के साथ इस घर को छोड़कर न जा सकेंगी? राखाल बाबू हैं न?"

तारक की असंयत उक्ति से शारदा का मुख अपमान से लाल हो उठा। दूसरी दिशा की ओर स्थिर नयनों से देखते हुए शान्त स्वर से उसने कहा, "जो मुझको इस घर में रख गए हैं उनकी आज्ञा के बिना मेरा अन्यत्र जाना

सम्भव नहीं है तारक बाबू ! आप व्यर्थ ही क्रोध कर रहे हैं।"

शारदा के उत्तर से सविता चौंक पड़ीं। लेकिन तारक ने अपने कण्ठ-स्वर को बहुत कुछ नीचे उतारकर आश्चर्ययुक्त स्वर में कहा, "परन्तु वे तो बहुत दिनों से लापता हैं।"

शारदा ने तारक की ओर दृष्टि न करके सविता के सामने जाकर झुककर प्रणाम करके कहा, "माँ, भले ही और सभी मुझे गलत तरीके से समझें, पर आप गलत रूप में न समझेंगी, यह मुझे विश्वास है।"

सविता ने कहा, "सोने को पीतल कहकर सदा कोई गलत नहीं कर सकता। आज चाहे न समझें, एक दिन सभी तुमको समझ लेंगे।"

शारदा के नयनों में आँसू आ गए थे, शायद कुछ कहने को तत्पर होकर भी वह कह न सकी। नीचा मुँह किए प्रबल चेष्टा से चुपचाप वह आँसू रोकने का प्रयत्न करने लगी।

सविता ने शारदा को अपने पास खींचकर कहा, "तुमको कुछ भी कहना न पड़ेगा शारदा ! मेरे साथ तुम्हारा जाना नहीं हो सकता। इसके लिए तुमको कितना दुःख होगा यह मैं जानती हूँ।"

गाड़ी छूटने के डेढ़ घण्टा पहले तारक सविता को लेकर स्टेशन पहुँचा। बिस्तर-सामान गिनकर, कुली ठीक करके, पुराने दरबान महादेव की निगरानी में दे दिए हैं। ब्रेक वाले असबाबों को वजन के बाद रेलवे कम्पनी को सौंप रसीद को यत्नपूर्वक जेब में रखकर तारक ने निश्चिन्त चित्त से सैकेण्ड क्लास लेडीज वेटिंग-रूम के सामने जाकर पुकारा, "नई-माँ !"

सविता कमरे से दरवाजे के सामने आकर खड़ी हो गईं।

तारक ने रूमाल से माथे का पसीना पोंछते-पोंछते कहा, "बिस्तर-असबाब वजन कराकर ब्रेक में रखवाकर रसीद ले आया हूँ। इस प्रकार का झंझट समाप्त हो गया। अब गाड़ी प्लेटफॉर्म पर आ जाने से ही काम हो जाएगा। आपको बिस्तर बिछाकर बैठा देने पर निश्चिन्त हो जाऊँगा।"

सविता ने हँसकर कहा, "नई-माँ का पीछे कहीं हरिनपुर जाना रुक न जाए, इसलिए तुम्हारे भय और चिन्ता की सीमा ही नहीं है, ठीक है न तारक ?"

तारक ने हँसते हुए उत्तर दिया, "जब तक लड़के की मड़ैया में माँ की

पद-धूलि नहीं पड़ती, तब तक मैं अपने भाग्य के ऊपर विश्वास न करता माँ !"

गाड़ी छूटने के समय से आधा घण्टा पहले प्लेटफॉर्म पर आ लगी।

तारक ने वेटिंग-रूम के द्वार के पास जाकर घबराहट के साथ ऊँचे स्वर से पुकारा, "नई-माँ, बाहर आ जाइए। गाड़ी आ गई है।"

महादेव दरबान वेटिंग-रूम के बाहर कितने ही बक्स-बिस्तरों के गट्ठर पर बैठकर तम्बाकू मल रहा था। झटपट तम्बाकू को मुँह में डालकर पगड़ी को ठीक करते-करते घबराहट के साथ उठ खड़ा हुआ।

सिल्क की चादर ओढ़े सविता ने शिवू की माँ दासी के साथ गाड़ी की ओर तारक का अनुसरण करते-करते कहा, "मुझे तो इस इण्टर क्लास में औरतों के डिब्बे में बैठा देना तारक। शिवू की माँ भी मेरे साथ बैठेगी।"

तारक ने ठिठककर खड़े होकर कहा, "आपके लिए मैंने सैकेण्ड क्लास का टिकट ले लिया है नई-माँ। इण्टर क्लास के जनाने डिब्बे में बड़ी गंदगी है, आप उसमें कैसे बैठ सकेंगी ?"

सविता ने कहा, "जनाने डिब्बे में यात्रा करने की मेरी आदत थी।"

तारक ने जिद करके सैकेण्ड क्लास के डिब्बे में सविता को बैठा दिया।

डिब्बा छोटा था। उस समय तक कोई भी दूसरा यात्री चढ़ा नहीं था। तारक ने व्यस्त भाव से गाड़ी में चढ़कर अपनी धोती की कूँची से प्लेटफॉर्म की ओर की बेंच को झाड़कर साफ बिस्तर बिछा दिया। हावड़ा स्टेशन से जाना पड़ेगा। केवल वर्दवान तक। लेकिन तारक ने यात्रा-पथ का आयोजन किया है मानो दिल्ली या लाहौर तक जाना है।

सविता अन्यमनस्क चित्त से बिस्तर पर जाकर बैठ गईं। तारक शायद मन-ही-मन आशा कर रहा था कि नई-माँ उसके इस सतर्कतापूर्ण उद्योग सेवा बन्धन में विशेष कुछ सस्नेह अनुयोग करेंगी। लेकिन धुली हुई साफ धोती की कूँची वेंच की धूलि से लिप्त होकर मलिन वर्ण धारण कर देने पर भी नई-माँ ने एक भी बात नहीं की, इससे तारक का मन बहुत कुछ दुःखी हो उठा। तो भी बड़े उत्साह के साथ उसने ऊपर के पटरे पर सूटकेस, बक्स आदि सजाकर रख दिए। वेंच के नीचे फलों की टोकरी और दूसरी वस्तुओं को उसने सुरक्षित रख दिया। कुलियों को विदा करके तारक ने सविता के

सामने आकर धीमे कण्ठ से कहा, "आप तनिक बैठ जाइए नई-माँ ! मैं आपके लिए एक गिलास लेमनेट वर्फ डालकर ले आऊँ या एक प्लेट आइस-क्रीम लेता आऊँ जो कहें ।"

अब तक सविता वाहर प्लेटफॉर्म की ओर उद्देश्यनीय दृष्टि से देख रही थीं । तारक की बातों से जैसे उन्हें चेत हुआ ।

उन्होंने घबराहट-भरे स्वरों में कहा, "ना तारक ! कुछ भी लाना न पड़ेगा । मुझे प्यास नहीं लगी है ।"

तारक ने उस निषेध को अनसुनी बात बनाकर सिर हिलाकर कहा, "वाह, ऐसा क्या होता है ? प्यास नहीं है कहने से मैं मान जाऊँगा कैसे नई-मां ? मुँह आपका कैसा सूखकर रह गया है यह तो मैं देख ही रहा हूँ ।"

सविता ने मुस्कराकर कहा, "लेमनेट सोडा या आइसक्रीम यह सब मैं कभी नहीं पीती । गाड़ी में पानी तक भी जीवन में नहीं छुआ । तुम व्यर्थ उन सब चीजों को मत लाना वेटा ।"

सभी विषयों का प्रतिवाद करना और अपनी इच्छा को दूसरे की इच्छा या अनिच्छा के विरुद्ध तर्कों और युक्तियों से ठीक सिद्ध कर देना ही तारक की प्रकृति थी । लेकिन नई-माँ के कण्ठ-स्वर ने उसको किसी पर भी तत्पर होने नहीं दिया । इसलिए वह मन-ही-मन दुःख की अपेक्षा अस्वस्ति ही वहुत अधिक अनुभव करने लगा ।

प्लेटफॉर्म की कार्यव्यस्त जनता को देखकर सविता की दोनों आँखें अकस्मात् उज्ज्वल हो उठीं । दूर से विमल बाबू आते हुए दिखाई पड़े । प्रशान्त सौम्यमूर्ति है, पदक्षेप कुछ तेज है । गाड़ी के डिब्बों में खोजभरी दृष्टि रखते हुए अग्रसर होते चले जा रहे हैं । देखते-देखते सविता का चेहरा और नयन आनन्द की स्निग्ध किरणों से चमक उठे ।

विमल बाबू सविता के डिब्बे के सामने आ खड़े हुए । तारक झटपट प्लेटफॉर्म पर कूद पड़ा और प्रसन्न-कण्ठ से बोला, "हम लोगों को आशा थी कि भेंट करने अवश्य आइएगा ।"

विमल बाबू ने सविता के चेहरे की ओर दृष्टि स्थापित करके शान्त स्वर से तारक से पूछा, "हम लोगों का क्या मतलब है ?"

विमल बाबू के प्रश्न से तारक सविता के मुँह की तरफ देखकर एका-

एक घबरा उठा। बात बहुवचन में न कहने से ही शायद अच्छी सुनाई पड़ती। छिः! नई-माँ ने शायद क्या ध्यान किया हो!

नई-माँ ने तारक को इस लज्जा से छुड़ा दिया। मधुर हँसी के साथ उन्होंने कहा, "तारक ने ठीक ही कहा है। आज प्रातःकाल वहाँ हम लोगों ने तुम्हारा आना सम्भव समझ रखा था, शारदा ने भी कहा था तुम्हारे विषय में।"

विमल बाबू ने शारदा के लिए डिब्बे में एक बार अपनी दृष्टि घुमाकर कहा, "शारदा कहाँ है?"

सविता का उत्तर मिलने के पहले ही तारक रूखे स्वर में बोल उठा, "हाँ, वे क्या शहर के पाइप का जल, बिजली-बत्ती छोड़कर सड़े देहात में रहने जाएँगी? लेकिन इस बात को कृपापूर्वक शुरू में ही कह देतीं तो अच्छा करतीं। हम लोग इतनी असुविधा में न पड़ते।"

विमल बाबू ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "शारदा क्या तुम्हारे साथ हरिनपुर नहीं जा रही है?"

सविता ने उदास हँसी हँसकर चुपचाप सिर हिलाकर इशारे से बताया कि शारदा आ नहीं सकी है।

विमल बाबू डर गए। बायां हाथ उठाकर हाथ में बँधी सोने की रिस्ट-वॉच की तरफ दृष्टि निबद्ध करके घबराहट-भरे स्वर से उन्होंने कहा, "बहुत समय है। अभी तुरन्त मोटर लेकर जाऊँ और शारदा को लिवा लाऊँ नई-बहू? मैं जाकर कहूँगा तो वह मना नहीं कर सकती।"

सविता ने रोककर कहा, "तुम्हारे अनुरोध करने पर भी वह आ न सकेगी। सिर्फ उसका दुःख ही बढ़ेगा।"

विमल बाबू ने ठिठककर खड़े होकर विस्मित कण्ठ से पूछा, "इसका क्या अर्थ?"

सविता ने कहा, "किसी दूसरे दिन सुन लेना।"

विमल बाबू सविता के मुँह की ओर कुछ देर तक देखते रहे, फिर बोले, "मामला क्या है नई-बहू?"

सविता ने कहा, "उसके आने का उपाय नहीं है दयामय। नहीं तो मेरे साथ आने से मैं स्वयं भी उसे रोक सकती थी या नहीं इसमें सन्देह है। जो

हो. ऐसा मेरा एक अनुरोध तुम्हारे ऊपर रहा। शायद अकेली रही, बीच-बीच में तुम उसकी खोज-खबर लेना।"

तारक शारदा के व्यवहार से उस पर इतना असन्तुष्ट हो गया था कि नई-माँ ने शारदा की अकृतज्ञता का उल्लेख-मात्र भी न करके वरन् विमल वावू से उसकी देखभाल करने का अनुरोध किया देखकर वह मन-ही-मन जल उठा। मन की विरक्ति पीछे कहीं इन लोगों के सामने खुल न जाए, इसलिए वहाँ से जाने की इच्छा से उसने कहा, "शिबू की माँ और दरबान गाड़ी पर अच्छी प्रकार चढ़ चुके हैं या नहीं, देख आऊँ।"

वह अनावश्यक तेज चाल से दूसरी ओर चला गया।

विमल बावू ने सविता की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि रखकर कहा, "क्या हो गया है बताओ? तारक कुछ उत्तेजित-सा दिखाई पड़ रहा है!"

सविता ने हँसकर कहा, "शारदा के मेरे साथ न आने के कारण तारक उसके ऊपर बहुत ही अप्रसन्न हो गया है। उसका विचार है कि मैं देहात में तरह-तरह की असुविधाओं के बीच जा रही हूँ, शारदा साथ होती तो मुझे बहुत सुविधा होती।"

विमल बावू ने कहा, "यह बात केवल तारक ही सोच रहा है ऐसा नहीं है, मैं भी ठीक वही बात सोच रहा हूँ नई-बहू!"

सविता ने करुण हँसी के साथ कहा, "लेकिन मैं आज ठीक विपरीत बात सोच रही हूँ।"

विमल बावू ने सविता के चेहरे पर इतनी करुण हँसी पहले कभी नहीं देखी थी। उनकी छाती के अन्दर वेदना से मानो टीस होने लगी।

सविता ने भर्राई हुई आवाज से कहा, "सभी बातें ही तुमको एक दिन बताऊँगी यह मैंने सोच रखा है। और कोई भी तो मेरा दाह-अन्तर्दाह समझ न सकेगा, शायद विश्वास न करना चाहेगा। मुझे बहुत जान लेने को शेष है। इन तेरह वर्षों से लगातार दिन-पर-दिन रात के बाद रात क्रमशः जो प्रश्न मेरे हृदय के अन्दर पछाड़ खा रहा है, आज तक भी उसका उत्तर मुझे नहीं मिला। भगवान् के चरणों में मैंने बार-बार कहा है, भगवान्! तुमसे छिपी बात तो कुछ भी नहीं है, इतनी बड़ी निर्मल जिज्ञासा को मेरे हृदय में तुमने ही भेजा है। इसके लिए मैं तुम्हारी शिकायत न करूँगी। सिर्फ इसका

ठीक उत्तर भी तुम मुझे इस जीवन में दे देना। इसके अलावा प्रार्थना के लिए कुछ भी तो तुमने नहीं छोड़ा है। जितना बड़ा दुःख ही क्यों न दो मैं उसको तुम्हारे हाथ का दान मानकर सीधी होकर ही चल सकती थी, लेकिन मेरे जीवन में तो तुमने दुःख भेजा नहीं है, भेजा है सिर्फ तीव्र परिहास। मनुष्य का परिहास सहना कठिन नहीं है, लेकिन तुम्हारा यह परिहास तो सहन नहीं होता था।"

विमल बाबू के आनन्द-भरे सौम्य चेहरे पर एक वेदनानुभूति की छाया गहरी हो उठी। उन्होंने एक बात भी नहीं कही।

दूसरी ओर अपनी दृष्टि घुमाकर स्थिर भाव से खड़े रहे। वह दृष्टि मानो इस लोक से लोकान्तर को निरूदृष्टि थी।

बहुत समय बीत गया। सविता ने पुकारा, "दयामय !"

विमल बाबू ने भारी गले से उत्तर दिया, "नई-बहू !"

सविता एकाएक चौंक पड़ीं। चेहरे पर उद्वेग और वेदना का चिह्न फूट उठा।

विमल बाबू के चेहरे की ओर पूर्ण दृष्टि से देखकर विनयपूर्ण स्वर से उन्होंने कहा, "एक बात कहूँ, बुरा तो न मानोगे ?"

एकाएक विमल बाबू सविता की बातों का कुछ भी उत्तर न दे सके। थोड़ी देर तक चुप रहकर धीरे-धीरे उन्होंने कहा, "नई-बहू, मैं जानता नहीं था। लेकिन छोड़ो उस बात को। क्या कहना चाहती हो, कहो।" कुछ शरमाकर सविता ने कहा, "तुम मुझे नई-बहू कहकर मत पुकारना।"

विमल बाबू ने शान्त स्वर से कहा, "ऐसा ही होगा।"

विमल बाबू की ओर देखने पर दिखाई पड़ा कि सविता के दोनों सुन्दर नयन शिशिर-सिक्त कमल की पंखुड़ियों के समान आँसू के भार से झलक रहे हैं।

विमल बाबू को कोई बात कहना चाहती थीं पर चुप रहीं। विमल बाबू ने इसे लक्ष्य किया।

प्लेटफॉर्म के ऊपर से डिब्बे के अन्दर जाकर वे सविता के सामने बेंच पर बैठ गए।

उन्होंने कहा, "मुझे तुम अपना नाम लेकर पुकारने का अधिकार दे

सकोगी ? संकोच मत करो। यदि कोई बाधा हो, मैं जरा भी दुःखी न हूँगा, जान लो। केवल यह बता देना, क्या कहकर पुकारने से तुम्हारे मन में चोट न लगेगी, स्मृति का दाह जाग न उठेगा। मैं तो अधिक कुछ नहीं जानता। हो सकता है कि अनजाने में तुमको आघात पहुँचा रहा हूँ।"

इस बार उमड़े हुए आँसुओं को सविता रोक न सकीं। झर-झर करके आँसू गिरने लगे। झटपट आँखें पोंछकर उन्होंने दूसरी तरफ मुँह फेर लिया। कौन-सी एक बात बार-बार कहने की चेष्टा करने पर भी लज्जा और दुःख से गला रुँध जाने लगा।

विमल बाबू ने फिर कहा, "लज्जित मत होना। बताओ, क्या कहकर पुकारने से तुम सहज में उत्तर दे सकोगी ?"

सविता फिर भी निरुत्तर ही रहीं।

उसके बाद संकोच को भी जान से हटाकर मृदु स्वर से उन्होंने कहा, "मुझको तुम रेणुका की माँ कहकर पुकारो।"

विमल बाबू के चेहरे पर कोमल सहानुभूति की करुणा खिल उठी। उन्होंने स्निग्ध कण्ठ से कहा, "सच है! बहुत सुन्दर है! मैं अवाक् हो जा रहा हूँ यह सोचकर कि तुम्हारा इतना बड़ा परिचय इतने दिनों तक मेरे मन में आया क्यों नहीं, बोलो तो!"

सविता चुप हो रहीं।

विमल बाबू ने मधुर स्वर से कहा, "यह जो तुमने कितना बड़ा दान आज मुझे दे दिया, इसे तुम शायद स्वयं भी नहीं जानतीं रेणुका की माँ! तुम्हारे दिये हुए सम्मान की मर्यादा रख सकूँ, यही कामना है।"

शायद विमल बाबू और भी कुछ कहते, लेकिन गाड़ी छूटने की संकेत-सूचक घण्टी बज गई।

हाथ-घड़ी की ओर देखकर वे उठ खड़े हुए। बोले, "अब जाता हूँ। हरिनपुर में रहना यदि अच्छा न लगे तो लौट आने में कोई दुविधा मत करना। तारक को अगर पहुँचा जाने के लिए छुट्टी न मिले तो मेरे पास सूचना भेजना। राजू जाकर लिवा लावेगा। आवश्यकता पड़ने पर मैं भी आ सकूँगा।"

विमल बाबू गाड़ी से उतर पड़े।

तारक धीरे-धीरे आ रहा था। उसके हाथ में एक गिलास बर्फ के टुकड़ों से भरा शर्बत था।

उसने विमल बाबू के हाथ में गिलास देकर कहा, "नई-माँ के मुँह में तो एक बूंद पानी भी न दे सका। आप ही स्वीकार कीजिए।"

विमल बाबू ने हँसकर कहा, "लाओ।"

विमल बाबू के हाथ में गिलास देकर तारक ने जेब से पत्ती में लिपटा हुआ पान का बीड़ा निकाल लिया।

गार्ड की सीटी सुनाई पड़ी। अन्तिम घण्टी बज गई।

सविता बोल उठीं, "गाड़ी तो अभी छूटेगी तारक। चढ़ जाओ अब, तुम्हारी इस अतिथि-सेवा के बीच मैं किस प्रकार समय बिताऊँगी यही सोच रही हूँ।"

तब भी विमल बाबू अपने शर्बत को पी न सके थे। हँसने लगे तो हिचकी आ गई।

सविता व्यग्र भाव से बोल उठीं, "ओह !"

विमल बाबू सविता की ओर देखकर ठहाका मारकर हँस पड़े।

गाड़ी का चलना शुरू हो गया था तत्काल।

तारक चलती गाड़ी पर चढ़ गया। जाते-जाते उसने कहा—"नमस्कार विमल बाबू।"

उन्नीस

व्रज बाबू गाँव पहुँचे। उनके भतीजे और चचेरे भाई नवीन बाबू बारह-तेरह साल से गाँव के घर-द्वार के, जगह-जमीन पर कब्जा जमाये हुए थे।

अचानक इतने दिनों के बाद बेटी सहित व्रज बाबू को गाँव आया देख वे लोग बिलकुल ही प्रसन्न नहीं हो पाए।

व्रज बाबू का देहात में अपना दुमंजिला घर था। बगीचा था, पोखरी थी और खेत-जमीन थी।

इन सभी पर इतने दिनों से अधिकार करके ये ही लोग रह रहे थे।

जो प्रधान हिस्सेदार हैं, कहना चाहिए कि वास्तविक स्वामी हैं, वे ही आज सहसा आकर उपस्थित हो गए इससे विचलित होने की तो बात ही है। फिर भी ब्रज बाबू के भतीजों और चचेरे भाई नवीन बाबू को ब्रज बाबू के गाँव आने का विरोध करने का साहस नहीं हुआ।

अभी कुछ ही महीने पहले ब्रज बाबू ने ही उन लोगों को एक मूल्यवान इलाका लिख-पढ़कर दान किया था, जिसकी सालाना आमदनी करीब एक हजार रुपये की है।

वे लोग अपनी गृहस्थी में, घर के भीतर तो ब्रज बाबू और रेणुका को जगह नहीं दे सकते। इस कारण बहुत सोच-विचार करके उन लोगों ने बैठकखाना खाली कर दिया था।

बैठकखाना एकतल्ला बना था। उसमें दो बड़े-बड़े कमरे थे। कमरों के साथ अन्दर की तरफ बरामदा था और बाहर की ओर खुला हुआ था।

बरामदे के दोनों छोरों पर एक-एक छोटी-छोटी कोठरियाँ थीं। एक थी नौकरों को तमाखू-हुक्का पीने के लिए और दूसरी थी बत्ती-लालटेन रखने के लिए। यहीं था बैठकखाना।

मकान के कमरे में झाड़ू लगवाकर, धुलवाकर, दो चौकियाँ बिछवा-कर, मिट्टी के नये घड़े में पीने का जल भरवाकर भतीजों ने इलाका देने वाले चाचा के प्रति अपना कर्तव्य-पालन किया था।

उस दिन ब्रज बाबू और रेणुका के भोजन आदि की एक जून की व्यवस्था भी उन्हीं लोगों के यहाँ हुई थी। लेकिन यह घर के अन्दर नहीं हुई। खाद्य-सामग्री बाहरी घर में ही भेजी गई थी।

ब्रज बाबू के विशेष ध्यान न करने पर भी इस व्यवस्था का अर्थ सम-झने में बुद्धिमती रेणुका को देर नहीं लगी। वह जन्म के समय से ही अल्प-भाषिणी और सहनशील थी। किसी बात से मन में आघात लगने अथवा अपमानित होने पर भी उनको लेकर अधीरता प्रकट करना उसकी प्रकृति के विरुद्ध बात थी।

चाचाजी के मकान पर पहुँचते ही भतीजों ने प्रणाम और कुशल-प्रश्नादि के बाद पहले ही जान लेना चाहा कि किस कारण वे इतने दिनों के बाद घर वापस आए हैं।

जब यह मालूम हो गया कि विशिष्ट धनवान चाचा व्रज वावू आज सर्वस्व खोकर और गृहहीन होकर अविवाहिता सयानी वेटी के साथ गाँव को लौट आए हैं, शेष जीवन-काल यहीं बिताने के लिए—तव वे लोग विधिवत् शंकित हो गए।

व्रज वावू के शरीर की जैसी दशा है, अन्त तक वह सयानी अविवाहिता वेटी उनके ही कन्धे पर पड़ जा सकती है। इलाका दान करके अन्त में क्या चाचाजी अपनी सयानी वेटी का भी भार भतीजों को ही दान कर जाएँगे? ऐसा हो जाने पर भी हो सकता है, लेकिन कुल-त्यागनी जननी की इस अनूढ़ा वेटी को गृहस्थी में आश्रय देकर कौन दुःख सहन करेगा।

गृह-देवता गोविन्दजी को व्रज बावू अपने साथ ही ले आए थे। पारिवारिक पूजा-घर में गोविन्दजी को ले जाने का प्रवन्ध होने पर चचेरा भाई नवीन, सबके प्रतिनिधित्व के रूप में सामने आकर हाथ जोड़कर व्रज बावू से बोला, "मँझले भैया, एक वात आपको न बताने से काम न चलेगा। मुँह से निकालने में यद्यपि छाती फटती जा रही है, तो भी विना वताए उपाय ही नहीं है। आप ढाढ़स दें तो हम लोग खोलकर कह सकते हैं।"

व्रज बावू भाई की इस विनय से घबरा उठे। बोले, "यह क्या कहते हो नवीन, भरोसा देने की क्या बात है? कहो और अभी कह डालो—तुम लोगों को क्या सुविधा-असुविधा हो रही है? वही तो—कैसी कठिनाई है—तुम लोग अन्त को..."

व्रज वावू के पूरी वात भाषा में व्यक्त न कर पाने पर भी तीक्ष्ण-बुद्धि नवीनचन्द्र और भतीजों ने उनका मनोभाव समझ लिया। उत्साहित होकर नवीन बावू ने और भी आडम्वर के साथ लम्बी भूमिका बाँध दी। बहुत-सी व्यर्थ वातें और अपनी निर्दोषिता के वहुत-से प्रमाण पेश करते हुए उन्होंने जो कुछ बताया उसका सारांश यह है कि व्रज वावू और रेणु को यदि नवीन बावू और भतीजे अपने परिवार में—अपने घर में स्थान देते हैं तो गाँव में उन्हें पतित होना पड़ेगा। गाँव-भर के सभी लोग जानते हैं कि इस रेणु को ही तीन वर्ष की अवस्था में छोड़कर उसकी माता एक दूर के नाते के ननदोई रमण बावू के साथ प्रकट रूप से कुल-त्याग कर गई थी। सिर्फ बारह-तेरह वर्ष पहले की घटना है। गाँव का कोई भी व्यक्ति इस बात को नहीं भूला है।

दुःखी ब्रज बाबू सिर झुकाए बैठे रहे।

उनके मुख का वह असहाय भाव देखकर बहुत बड़ा कठोर हृदय व्यक्ति भी व्यथित हुए बिना नहीं रह सकता।

नवीनचन्द्र के हृदय को भी चोट पहुँची। किन्तु वह क्या कर सकते हैं। एकमात्र आशा यह थी कि ब्रज बाबू बहुत बड़े धनी हैं—गाँव में धन खर्च कर सकने पर बहुतों का मुँह बन्द किया जा सकता है। किन्तु जब ब्रज बाबू आज कंगाल हैं, धनहीन हैं। अतएव सयानी लड़की को इतने दिन अविवाहित रखने का अपराध गाँव में कोई भी क्षमा नहीं करेगा—विशेषतः जिस कन्या की लगन चढ़ जाने पर भी ब्याह नहीं हुआ और जिसकी माँ कलंकिनी है।

नई-बहू के गृह-त्याग करने पर गाँव के निन्दा-आन्दोलन के मारे ही ब्रज बाबू को गाँव का घर छोड़कर गोविन्दजी और शिशु कन्या के साथ कलकत्ते में जाकर रहने के लिए लाचार होना पड़ा था। उसी गाँव में लौट-कर आने के पहले इस बात का ध्यान क्यों नहीं आया, यह सोचकर ब्रज बाबू को सचमुच बड़ा आश्चर्य हुआ।

गाँव के इस अप्रिय आन्दोलन की खबर रेणु को नहीं थी। होती तो वह ब्रज बाबू को गाँव आने की सलाह कभी न देती। किन्तु इस अवस्था में यहाँ रहा भी तो नहीं जा सकता। अब जाएँ तो कहाँ?

ब्रज बाबू के चिन्ताग्रस्त नवीन बाबू और कृतज्ञ भतीजे बार-बार दुःख प्रकट करके कहने लगे, "वे सम्पूर्ण निरपराध हैं, कन्या-सहित ब्रज बाबू को अपने सम्मान के साथ ग्रहण करने का अत्यन्त आग्रह रहने पर भी कोई उपाय नहीं है—यह हम लोगों के दुर्भाग्य के सिवा और कुछ नहीं है।"

ब्रज बाबू ने कुंठित होकर कहा—"नवू, तुम लोग लज्जित न होना। मैं सब समझ गया हूँ। मुझे पहले ही सोच लेना चाहिए था भाई। चाहे जो हो, जान पड़ता है, यह भी गोविन्दजी की ही परीक्षा है। देखूँ, उनकी इच्छा अब कहाँ ले जाती है।"

ब्रज बाबू के ज्येष्ठ भतीजे बोले, "लेकिन मँझले काका, सबसे अधिक चिन्ता हम लोगों को रेणु के ब्याह के लिए है।"

ब्रज बाबू ने धीमे स्वर में जवाब दिया—"इसकी चिन्ता न करो भैया;

मैं उसे और अपने गोविन्दजी को लेकर वृन्दावन चला जाऊँगा। गोविन्दजी की छत्रछाया में माँ के अपराध के लिए लड़की को कोई दोषी नहीं ठहराता। जव तक वृन्दावन जाने की व्यवस्था न कर सकूँगा, तब तक यहीं, इस बैठकखाने के कमरे में ही पृथक् रहूँगा। किसी को कोई असुविधा न होने दूँगा।"

जाति वालों की बातचीत से यह जाना गया कि भीतरी घर के ठाकुरद्वारे में अपनी पहले की वेदी पर गोविन्दजी को स्थापित करने में कोई बाधा नहीं है। बाधा रेणु के ठाकुरघर में प्रवेश करने और ठाकुरजी का भोग तैयार करने में है।

इस घटना से व्रज बाबू को सचमुच ही दुर्दान्त पीड़ा हुई। उनके सारे जीवन के प्रधान लक्ष्य, परम प्रियतम गोविन्दजी भी अपनी पूजा के मन्दिर में प्रवेश नहीं कर सकें, बैठकखाने के घर में पड़े रहें, इस क्षोभ और दुःख से व्रज बाबू आहत हो गए।

संसार की अनेक उलट-फेर यहाँ तक कि सर्वस्व चले जाने और गृहहीन होने की अवस्था भी उनके हृदय को इस तरह व्याकुल नहीं कर सकी थी।

गाँव में जब से आई, रेणु को बिलकुल ही अवकाश नहीं रहा। गोविन्दजी की सेवा और पिता की देख-भाल, सेवा-सुश्रूषा में ही उसे सर्वदा व्यस्त रहना पड़ता है। अन्य किसी भी बात या काम की ओर देखने का समय बहुत कम है; शायद और किसी ओर ध्यान देने की उसकी इच्छा भी नहीं होती।

दोनों कमरों में एक स्थान गोविन्दजी के लिए और दूसरा पिता के लिए उसने ठीक कर लिया। पिता के शयनगृह के ही एक कम चौड़े तख्त पर ही उसने अपने सोने की व्यवस्था कर ली है। छोटी-छोटी दो कोठरियों में से एक में खाने-पीने की सामग्री का भण्डार है और दूसरी में रसोई बनती है। आँगन के एक कोने में थोड़ी-सी जगह बेड़े से रेणु ने स्नान की जगह बना ली है।

व्रज बाबू व्याकुल चित्त से सोचते हैं—गोविन्दजी, अन्त को मैंने तुम को ही तुम्हारे अपने मन्दिर के बाहर लाकर असम्मान के बीच डाल दिया...। यह क्या मुझसे उचित काम हुआ प्रभु? किन्तु मेरी रेणु का तुम्हारे

सिवा और कोई भी नहीं है। उसे तुम्हारी सेवा से वंचित कर देता तो वह क्या लेकर जीवित रहती ? पतितपावन, अन्त को क्या तुम भी हम लोगों के साथ पतित बन गए ?

संध्या-आरती के समय आरती करते-करते ब्रज बाबू इसी प्रकार की चिन्ता से आत्म-विस्मृत हो पड़ते हैं। दाहिने हाथ का पंचदीप (आरती) और बाएँ हाथ का घण्टा निश्चल हो जाता है। गालों से आँसू ढुलक पड़ते हैं, उनका ध्यान ही नहीं रहता।

रेणु पुकारती है, "बाबा !"

ब्रज बाबू चौंक उठते हैं। सलज्ज काँपते हाथ से फिर आरती करने लगते हैं।

कभी संशय से उमड़ते हुए चित्त से सोचते हैं, 'गोविन्द, सन्तान के स्नेह से अंधे होकर तुम्हारे प्रति चूक करके धर्म का, प्रत्यवाय का भागी तो मैं नहीं हुआ प्रभु !'

ब्रज बाबू का चित्त इस प्रकार अत्यधिक मानसिक संघात से जब अस्त-व्यस्त हो रहा था, उसी समय एक दुर्घटना हो गई।

एक दिन दोपहर को पूजा की कोठरी से बाहर निकलकर आते ही ब्रज बाबू के सिर में चक्कर आ गया। वह पृथ्वी पर गिरकर मूर्छित-से हो गए।

रेणु यद्यपि भय, आशंका और उद्वेग से कातर हो उठी, तथापि अपनी स्वाभाविक धीरता के साथ ही आधे बेहोश पिता से उसने पूछा, "बाबा, नबू काका को या दादा को बुलाऊँ ?"

ब्रज बाबू ने बड़े कष्ट से केवल राजू का नाम लिया।

रेणु ने उसी दिन राखाल को आने के लिए तार कर दिया।

गाँव के डॉक्टर मेडिकल कॉलेज की छठे साल की एम० बी० परीक्षा फेल थे। गाँव में उनकी डॉक्टरी कम नहीं चलती।

ब्रज बाबू को देखकर, परीक्षा करके बोले, "मस्तिष्क में रक्त का दबाव बहुत अधिक बढ़ जाने से ऐसा हुआ है। सावधानी के साथ सेवा और चिकित्सा की जाए तो अब की बच जाएंगे किन्तु भविष्य में फिर ऐसी घटना हुई तो फिर जीवन की आशा कम ही है। अब से विशेष सावधानी रखने की आवश्यकता है।"

बीस

अपने मित्र योगेश के मेस से राखाल उस दिन रात को साढ़े ग्यारह बजे के लगभग डेरे को लौटा।

योगेश ने किसी प्रकार भोजन कराए बिना नहीं छोड़ा।

दिल्ली में कहीं एक स्थान पर विवाह के योग्य क्वाँरी लड़कियाँ राखाल को उसके आपत्ति करने पर भी दिखाई गई थीं। उन्हीं में से एक लड़की के काका कलकत्ते के एक दफ्तर में नौकर हैं। दिल्ली से कन्या के पिता के कहने के अनुसार कन्या के काका ने आकर योगेश को पकड़ा है—"राजू बाबू के साथ उनकी भतीजी का ब्याह उसे करा ही देना होगा।"

उस भले आदमी ने इस तरह योगेश का पीछा पकड़ा है, वह इस तरह अनुनय-विनय कर रहा है कि योगेश स्वयं यदि विवाहित और दूसरी जाति का न होता तो शायद इस अरक्षणीया कन्या की रक्षा का भार ग्रहण करके उसके काका के इस अनुनय-विनय के उत्पात से आत्मरक्षा कर डालता।

राखाल को कन्या का एक फोटो भी योगेश ने दिखाया है। लड़की का चेहरा राखाल को कहीं ठीक याद न आ सके, इसलिए काका यह फोटो योगेश के पास छोड़ गए हैं।

राखाल ने इस प्रसंग को हँसकर ही उड़ा दिया था, किन्तु योगेशचन्द्र नाछोड़ बन्दा है। उसने प्राणपण से तर्क और युक्ति के द्वारा समझाना शुरू कर दिया कि यदि कन्या की अवस्था, चेहरा, शिक्षा और उसके पिता के कुल के सम्बन्ध में कोई बात नापसन्द न हो तो वह यह ब्याह क्यों नहीं करेगा?

योगेश जानता है कि राखाल ब्याह में दहेज लेने की प्रथा का हृदय से विरोध करता है। संसार में राखाल की अपेक्षा कम आय वाले भी ब्याह करके स्त्री-पुत्र-कन्या आदि का पालन-पोषण करते हैं। स्वयं योगेशचन्द्र ही तो उन्हीं में से एक है। हाँ, मध्यवित्त विवाहित व्यक्ति की जीवनयात्रा प्रणाली बड़े आदमियों के अनुकरण पर शायद नहीं चल सकती जैसी कि उनकी अविवाहित अवस्था में चलती है। किसी मित्र के विवाह में या

बाँधवी के जन्म-दिन पर न्यू मार्केट के फूलों के बास्केट अथवा मरक्को चमड़े की जिल्द वाले मूल्यवान राज संस्करण की रवीन्द्र ग्रन्थावली या शैली और ब्राउनिंग के ग्रन्थ भेंट देने में बाधा पड़ सकती है। विलायती सैलून में आठ आने देकर बाल कटाने के बदले देशी नाई से दो आने में बाल कटाने के लिए तब शायद लाचार होना पड़ सकता है। किन्तु विवाह की योग्यता से सम्पन्न पुरुष यदि ब्याह के योग्य अवस्था में केवल उत्तरदायित्व उठाने के भय से अथवा अपनी विलास और स्वतन्त्रता में बाधा पड़ने की आशंका से ब्याह न करना चाहे, तो कहना होगा कि उससे बढ़कर डरपोक संसार में बिरला ही होगा। हिसाब लगाकर देखा जाता है कि ब्याह के लिए अयोग्य व्यक्ति ब्याह करके जितना अपराध करते हैं उनसे अधिक दोषी और अश्रद्धा के पात्र वे हैं जो योग्यता रहने पर भी अपनी स्वतन्त्रता में विघ्न या बन्धन की आशंका से और उत्तरदायित्व से बचने के लिए ही चिरकुमार रहना चाहते हैं।

राखाल निर्विकार भाव से हँसते हुए मुख से अपने बन्धु की भर्त्सना और सब युक्तियों को चुपचाप निगल गया।

अन्त को भोजन आदि के लिए डेरे को लौटते समय योगेश के बार-बार जोर देने पर उत्तर में उसने कहा, 'मुझे जरा सोचकर देखने का समय दो भाई !"

योगेश ने उत्साहित होकर कहा, "अच्छा-अच्छा, यह तो अच्छी ही बात है। तो फिर अनुमानतः कब तक तुम्हारा उत्तर मिल जाएगा?"

राखाल ने हँसकर कहा, "मिल जाएगा भाई, मिल जाएगा।"

योगेश ने कुछ लज्जित होकर कहा, "ना-ना, यह बात नहीं है लेकिन जानते हो, उन्हें कन्या के ब्याह की बड़ी चिन्ता है न ! कुछ अधिक व्याकुल हो रहे हैं। तुम्हारा यह सोचकर देखने का थोड़ा समय भी उनके लिए वैसी ही दम घोटने वाली प्रतीक्षा होती है, जैसी खूनी अभियुक्त की जज की राय के लिए होती है। इसी से कह रहा था।"

राखाल ने कहा, "तुम व्यस्त न होना। मैं कुछ दिनों में ही अपना निर्णय बता जाऊँगा।"

योगेश को प्रसन्न करके राखाल उसके मेस से बाहर निकला।

तब रात के दस बज गए थे। मित्र के साग्रह अनुरोध की बात सोचते-सोचते वह मार्ग में चलने लगा।

वह दिल्ली में विवाह की पात्री को अपनी आँख से देख आया है। अवस्था यही अठारह-उन्नीस वर्ष की होगी। खूब मोटी-सोटी और गदबदी है। रंग गोरा न होने पर भी उसे काला नहीं कहा जा सकता। चेहरे पर स्वास्थ्य का लावण्य है। मोटे तौर पर लिखी-पढ़ी है। सिलाई और रसोई वनाने आदि घर के कार्यों में अच्छी प्रकार निपुण कहकर कन्या के पिता ने उच्छ्वसित सर्टीफिकेट अपने मुख से बिना माँगे दे दिया था।

लड़की राखाल और योगेश को नमस्कार करके बहुत ही गम्भीर मुख से और भी अधिक सिर झुकाए निश्चेष्ट से उसकी पत्नी होकर घर में आवे तो कैसी फबेगी? लड़की का वह अति गम्भीर मुख और ऊँचा करके बाँधे गए टीले जैसे बड़े जूड़े के साथ बहुत ही लुका हुआ सिर याद आ जाने से राखाल को अचानक ही बड़ी हँसी आई।

जीवन की सब अवस्थाओं में, सब प्रकार के सुख-दुःख में पास खड़े होकर हँसते हुए मुख से आश्वासन दे सके—धीरज बँधा सके, आनन्द और तृप्ति दे सके, क्या ऐसी आशा की जा सकती है इस लड़की से? क्या ऐसा भरोसा किया जा सकता है इस लड़की के ऊपर?

दिल्ली में और भी जो कई लड़कियाँ राखाल को दिखाई गई थीं, वे भी कोई कम, कोई अधिक ऐसी ही थीं।

राखाल के मानसपटल में सोचते-सोचते बहुत-सी बालिका, किशोरी, तरुणी कन्याओं के रूप की तरह की छवि प्रकट होने लगी।

उन सबमें एक भी ऐसी लड़की स्मरण नहीं कर सका, जिसके ऊपर हमेशा के लिए अपने जीवन के सुख-दुःख का सारा भार डालकर निश्चिन्त निर्भरता प्राप्त करना सम्भव हो।

एक कोमल शान्त और बुद्धि से प्रदीप्त सुन्दर मुख सब चेहरों की आड़ में बार-बार उसके मानसपट पर उदय होने लगा। विवाह की पात्री चुनने के मामले में वह मुख याद पड़ने का कोई अर्थ नहीं होता—इस बात को और किसी की अपेक्षा राखाल आप ही अच्छी तरह जानता है।

वह चाहे जो हो, राखाल के प्रति गहरे विश्वास और श्रद्धा से उस मुख

की कान्ति ही और प्रकार की है, जिसकी आज और किसी के साथ तुलना नहीं की जा सकती।

केवल विश्वास और श्रद्धा ही नहीं, बहुत ही निकट के आत्मीय जन की-सी गहरी सहानुभूति का माधुर्य, जो उन दोनों आँखों की स्निग्ध दृष्टि और निर्दोष स्वच्छ हँसी के ढंग से आप-ही-आप बरस पड़ता था, उसके साथ संसार में और किसी की क्या तुलना की जा सकती है ?

राखाल उसी की एकान्त श्रद्धा से युक्त अकुंठ निर्भरता प्राप्त करके ही आज अपने को विवाह के दायित्व से सम्पन्न व्यक्ति, क्षण-भर के लिए भी, सोचने में समर्थ हुआ है।

राखाल सोचते-सोचते शारदा के ही विषय में सोचने लगा।

उस दिन रात को शारदा ने कहा था, "आप अनेक लोगों का बहुत कुछ करते हैं, मेरा भी उपकार किया है, उससे आपकी हानि नहीं हुई। यदि मैं जीती रही तो केवल इतना ही जान रखना चाहती हूँ।"

परन्तु सचमुच क्या यही बात है ? राखाल बहुतों का ही बहुत कुछ करता है, यह बात शायद सत्य है, शारदा का भी कुछ साधारण उपकार या सहायता की है, किन्तु उससे क्या राखाल की कोई क्षति नहीं हुई ? यदि क्षति न होती तो क्यों वह उस दिन रात को इस तरह अपने को रोकने में—आत्म-संभरण में असमर्थ हो गया ? उसने केवल शारदा का ही कड़ा तिरस्कार नहीं किया, अपनी मातृस्वरूपिणी नई-माँ तक को कटु बात सुना दी, वह भी एक दूसरे व्यक्ति के सामने ही।

यदि तारक का शारदा आदर करती है, तो उसमें राखाल के क्षुब्ध होने की क्या बात है ? शारदा के लिए राखाल जो भी है, तारक भी वही है। बल्कि राखाल की अपेक्षा तारक विद्वान् है, बुद्धिमान है, विलक्षण है। उसके इन सब गुणों का ही शारदा ने उल्लेख किया था। इसमें उसने ऐसा क्या अपराध किया था जिसके लिए राखाल इस प्रकार जल उठा—आपे से बाहर हो गया ? उसने क्यों अपने को अकस्मात् वंचित और क्षतिग्रस्त अनुभव किया ?

सोचते-सोचते उसका मुख, आँखें और कान जलने लगे। पास ही एक पार्क के भीतर जाकर एकान्त कोने में पड़ी हुई एक सूनी बेंच पर राखाल

लम्बा होकर लेट गया।

वह आँखें मूँदकर सोचने लगा—दो-तीन दिन पहले एस्प्लेनेड रोड के मोड़ पर वह ट्राम की प्रतीक्षा में खड़ा था। एक चलती हुई मोटर के भीतर से झुककर विमल बाबू ने हाथ हिलाकर उसकी दृष्टि अपनी ओर आकर्षित की।

राखाल ने जब विमल बाबू की ओर ताका, तब उन्होंने मोटर रोककर हाथ के इशारे से उसे अपने पास बुलाया। वे उतरकर मार्ग में खड़े हो गए।

राखाल के पास जाने पर विमल बाबू ने सबसे पहले पूछा था—"अपने काका बाबू और रेणुका का क्या कोई पत्र तुमने पाया है राजू?"

राखाल ने बहुत ही विस्मित होकर कहा था—"क्यों, बताइए तो?"

विमल बाबू ने कहा था, "उनके साथ मेरा परिचय है। वहाँ गाँव में वे कैसे हैं, इसकी कोई सूचना नहीं मिली, इसलिए पूछता हूँ।"

राखाल ने उत्तर दिया था, "वे लोग सकुशल से ही हैं।"

विमल बाबू ने कहा था, "चिट्ठी कब आई?"

उसने उत्तर दिया था, "यही कोई तीन-चार दिन हुए।"

इसके बाद मौखिक सौजन्य के रूप में उसने विमल बाबू से पूछा था कि "आप कहाँ जा रहे हैं?"

विमल बाबू ने उत्तर दिया था, "जरा शारदा बेटी का समाचार लेने जा रहा हूँ।"

इससे अत्यन्त विस्मित होकर वह अकस्मात् पूछ बैठा था, "कौन शारदा?"

विमल बाबू को कुछ आश्चर्य हुआ।

उन्होंने उत्तर दिया, "शारदा को तो तुम जानते हो!"

राखाल ने सूखे स्वर से कहा था, "वह तो यहाँ नहीं है। नई-माँ के साथ तारक के पास हरिनपुर गई है।"

विमल बाबू ने कहा था, "यह क्या? तुम क्या नहीं जानते कि शारदा तुम्हारी नई-माँ के साथ हरिनपुर नहीं गई?"

राखाल ने कहा था, "जी नहीं। मैं उनके जाने के पहले दिन, रात तक शारदा का वहाँ जाना पक्का सुन आया था।"

विमल बाबू ने कहा था, "पक्का जरूर था, लेकिन मैंने स्टेशन जाकर देखा, शारदा नहीं आई। तुम्हारी नई-माँ ने कहा—'उसके जाने का उपाय नहीं है।' मुझसे जाते समय कह गईं, शारदा अकेली है, बीच-बीच में सुध लेते रहना। इसी से बीच-बीच में मैं उसकी खबर लेने चला जाता हूँ।"

राखाल फिर प्रश्न कर बैठा था, "आप जानते ही हैं कि शारदा हरिनपुर क्यों नहीं गई?"

विमल बाबू ने कहा था, "शारदा से पूछने पर सुना कि उसके लिए स्वामी की आज्ञा के विना घर से हिल सकने का कोई उपाय नहीं है।"

राखाल ने विमूढ़ भाव से कह डाला था, "कौन स्वामी?"

विमल बाबू ने उत्तर दिया था, "यह तो मैं ठीक-ठीक नहीं जानता। शायद उसका लापता स्वामी ही हो।"

राखाल आँखें मूंदे पार्क की बेंच पर लेटे-लेटे एस्प्लेनेड पर रोड विमल बाबू के साथ की भेंट और बातचीत को क्रमशः सोचने-विचारने लगा।

शारदा हरिनपुर क्यों नहीं गई? उसने कहा है कि स्वामी की आज्ञा के बिना अन्यत्र जाने का उपाय नहीं। वह स्वामी कौन है? विमल बाबू या और कोई? शारदा के लापता स्वामी जीवन बाबू का वह व्यक्ति भले ही अनुमान कर ले, किन्तु एकमात्र राखाल स्वयं निश्चित रूप से जानता है कि और चाहे जिसको शारदा अपना स्वामी बतलावे; पर भागे हुए विश्वासघाती जीवन चक्रवर्ती को उसने अपना स्वामी कभी नहीं कहा।

उसे समझने को कुछ शेष नहीं रहा, तो भी राखाल के मन के भीतर कहीं पर जैसे कोई विरोध बाधा देने लगा।

पार्क के चौकीदार ने ग्यारह बज जाने पर आकर राखाल से चले जाने के लिए कहा।

बोझिल मन से वह जब डेरे पर पहुँचा, तब साढ़े ग्यारह बज चुके थे। बिस्तर पर लेटकर सोने के पहले उसने मन में पक्का कर लिया कि कल सवेरे उठते ही वह एक बार शारदा से मिल आवेगा। चाय डेरे पर नहीं पिएगा। शारदा से ही चाय तैयार कर देने के लिए कहेगा।

इस निर्णय पर पहुंचने के बाद राखाल मन-ही-मन बहुत ही मुक्ति का अनुभव करने लगा।

इसके बाद अनेक सम्भव-असम्भव कल्पनाएँ करते-करते वह निद्रादेवी की गोद में सो गया।

इक्कीस

दूसरा दिन !

जब राखाल जागा तब सूरज बहुत चढ़ आया था ।

फेरीवालों की ऊँची आवाजों से गली गूंज रही थी। दीवाल की घड़ी की ओर ताककर राखाल बहुत ही लज्जित भाव से उठ बैठा। मुँह-हाथ धो चुकने के बाद शेव बनाई।

धुली धोती और कुर्ता निकालकर उसने कपड़े बदले। मन लगाकर बालों पर ब्रुश फेरते-फेरते उसे चाय पीने का तकादा करती हुई जम्हाई बार-बार आने लगी।

राखाल ने हँसकर स्टोव की ओर ताककर धीरे से कहा—"तुम्हें इस समय छुट्टी है।"

यथासम्भव छोटे-मोटे काम फुर्ती से निबटाकर वार्निश किये हुए चमचमाते जूतों को पुराने रद्दी मैले रूमाल से अच्छी प्रकार झाड़-पोंछकर पैरों में डाल ही रहा था कि बाहर से डाक-पियून ने पुकारा, "तार है।"

राखाल ने जूते वहीं पड़े रहने दिए और आग्रह से दौड़ पड़ा।

दस्तखत करके तार खोलकर पढ़ते-पढ़ते उसके चेहरे पर अँधेरा आ गया। व्रज बाबू बहुत बीमार हैं, रेणु ने शीघ्र आने का अनुरोध किया है।

जरा देर तार हाथ में लिए, वह दुविधाग्रस्त होकर कमरे में खड़ा रहा, सोचने लगा, अब शारदा से मिलने जाय या नहीं। टाइम टेबल निकालकर ट्रेन का समय देख डाला। नौ बजे एक ट्रेन है, लेकिन वह पकड़ी न जा सकेगी, साढ़े आठ हो चुके हैं। बेदाना, अंगूर, सन्तरे आदि फल और रोगी के लिए आवश्यक और-और चीजें भी खरीदनी होंगी। अतएव नौ बजे की गाड़ी मिलनी असम्भव है। अगली ट्रेन साढ़े बारह की है, उसके लिए पर्याप्त समय है।

दरवाजे पर ताला लगाकर राखाल चिन्तित मुख से शारदा से मिलने के लिए चल पड़ा। कलकत्ता छोड़कर बाहर जाने के पहले एक वार उसे यह बता जाना उचित है। सोचा कि वहाँ ही जल्दी से चाय पीकर लौटते समय आवश्यकता की चीजें खरीदकर साढ़े बारह की गाड़ी से रवाना हो जाऊँगा।

शारदा के घर पर पहुँचकर राखाल ने देखा, दरवाजे के सामने चबूतरे पर चटाई बिछाए शारदा चार-पाँच छोटे-छोटे लड़की-लड़कों को पढ़ा रही है।

कोई स्लेट पर लिख रहा है, कोई हिज्जे सीख रहा है; कोई पद्य रट रहा है। राखाल को देखकर शारदा न तो व्यस्त हुई और न विस्मित।

धीरे-धीरे उठकर खड़ी हो गई और पढ़ने वाले बच्चों से बोली, "जाओ, अब तुम लोगों की छुट्टी है। आज दोपहर को पढ़ाई होगी।"

बच्चों के चले जाने पर शारदा ने चबूतरे से आँगन में उतरकर राखाल को प्रणाम किया और कहा, "खड़े क्यों हैं, भीतर चलकर बैठिए।"

राखाल ने सूखे गले से कहा, "ना, बैठने का अब समय नहीं है, दो-एक बात पूछकर ही चला जाऊँगा।"

राखाल ने शायद मन-ही-मन आशा की थी कि शारदा मुझे देखकर आश्चर्य और आनन्द से अभिभूत हो जाएगी, लेकिन शारदा के व्यवहार से मालूम हुआ कि राखाल आज इस समय आएगा, यह बात वह मानो पहले से ही जानती थी।

पहले तो रेणुका का तार पाकर उसका मन था उद्विग्न, चंचल। उस पर से शारदा की सहज शान्त अभ्यर्थना ने राखाल के मन को फीका बना दिया। एक ऐसा अकारण अभिमान मन के अन्दर घूमने लगा जिसका कारण स्पष्ट रूप से बताना कठिन है।

राखाल ने कहा, "सुना है, तुम नई-माँ के साथ हरिनपुर नहीं गईं?"

शारदा चुप ही रही।

राखाल ने फिर कहा, "क्यों नहीं गईं क्या मैं जान सकता हूँ?"

शारदा को चुप देखकर राखाल के मन में क्रमशः उत्ताप बढ़ता जा रहा था। उसका मौन तोड़ देने के लिए शायद वह इस बार बोल उठा, "मेरा

कर्ज तो उस दिन कौड़ी-पाई तक तुमने चुका दिया। इसलिए बात का उत्तर न देने से भी काम चलेगा, लेकिन नई-माँ का कर्ज भी इसी समय के बीच क्या तुमने चुका दिया है शारदा ?"

शारदा के चेहरे पर वेदना का चिह्न स्पष्ट हो उठा, तो भी उसने कठिन उपहास का उत्तर नहीं दिया। उसने मृदु कण्ठ से कहा, "आपको जो कुछ कहना हो कमरे में चलकर कहिए। यहाँ खड़े रहकर बीच बाजार में मत कहिए। कमरे में चलकर बैठिए। तुरन्त आ रही हूँ। चले मत जाइएगा।"

शारदा एक ही क्षण में चबूतरे के दूसरी ओर घेरा डाले हुए दूसरे किरायेदारों के हिस्से में अन्तर्हित हो गई।

विरक्त राखाल उसको लक्ष्य करके घबराहट-भरी आवाज से कहने लगा, "ना, ना, मुझे बैठने का समय बिल्कुल नहीं है। अभी तुरन्त मुझे जाना पड़ेगा, जो कहने आया हूँ—सुनकर जाओ···।"

लेकिन शारदा तव तक चली गई थी।

राखाल थोड़ी देर तक आँगन में खड़ा रहकर चला जाय या और थोड़ी देर तक प्रतीक्षा करे इसी दुविधा में पड़ गया।

अन्त में खिन्न-मन से शारदा के कमरे में जाकर बैठ ही गया। पाँच आदमियों के घर में चिल्लाकर शारदा को बार-बार पुकारा भी नहीं जा सकता, खड़ा रहना और भी भद्दा लगता है।

राखाल के कमरे में बैठ जाने के एक मिनट के अन्दर ही शारदा एक छोटी एल्युमिनियम की केटली की डण्डी पर धोती का आँचल लपेटकर उसे मुट्ठी में पकड़कर कमरे में आ गई। ढक्कन से दबाई हुई केटली से थोड़ी गरम भाप निकल रही थी। कमरे के कोने में केटली रख देने के बाद खिड़की के ऊपर के ताख से एक सफेद चमकाहट-भरा काँच का प्याला, प्लेट और एक नया चम्मच उतार लिया। चाय का टीन बिल्कुल ही नया है, पैकिंग खोला नहीं गया है।

शारदा ने लेबिल फाड़कर तेज हाथ से टीन खोलकर केटली के जल में चाय की पत्ती डालकर ढक्कन से दबा दिया।

उसके बाद प्याला, प्लेट और चम्मच को बाहर से धोकर ले आई।

उसके साथ ही ले आई कागज की पुड़िया में चीनी और छोटे-से काँच के गिलास में दूध ।

कुर्सी पर बैठकर राखाल मौन ही शारदा का काम करना देख रहा था ।

दिन काफी चढ़ आया है, लेकिन चाय पीना नहीं हुआ है । सिर में दर्द है, उठने की नौबत आ रही है । इसलिए शारदा का चाय का आयोजन देखकर उसकी विरक्ति और अभिमान बहुत ही घट गया था । फिर भी भ्रम मिटाने के लिए उसने कहा, "इतना ठाठ करके चाय किसके लिए बन रही है ?"

शारदा ने चाय छानते-छानते मुस्कराकर गर्दन घुमाकर एक बार राखाल की ओर देखा । उसके बाद वह फिर अपने काम में जुट गई ।

राखाल मन-ही-मन लज्जित होने पर भी तब यह न कह सका—'मैं न पीऊँगा ।' तब तक शारदा दूध-चीनी मिली सुनहरे रंग की गरम चाय में चम्मच हिलाते-हिलाते प्लेट को राखाल के सामने रख चुकी थी ।

चाय लेने में कुछ हिचक दिखाकर राखाल ने कहा, "इसके लिए इतनी देर तक मुझे रोक रखना तुम्हारे लिए ठीक नहीं हुआ शारदा, कुछ भी इसकी आवश्यकता नहीं थी ।"

शारदा ने अज्ञानी की तरह मुँह बनाकर कहा, "मैं यह जानती नहीं थी । इच्छा न हो तो रहने दें, वापस ले जाऊँ ।"

होंठों के छोर पर दबी हुई दुष्ट हँसी छिपी थी ।

राखाल उस हँसी को पहचानता है । उसका हृदय काँप उठा । हाथ बढ़ाकर बोला, "जब ला ही चुकी हो मेरे लिए तो वापस ले जाना ठीक न होगा ।"

इस बार होंठ दबाकर हँसते-हँसते शारदा ने चाय का प्याला हाथ में उठा लिया और राखाल को देकर चुपचाप बाहर चली गई ।

थोड़ी देर में सफेद काँच की एक प्लेट में कई गरम सिघाड़े और दो ताजे राजभोग, रसगुल्ले लेकर लौट आई । राखाल ने देखकर कहा, "यह सब फिर क्यों ले आईं ?"

शारदा ने गम्भीर मुख से कहा, "चाय के साथ जलपान के लिए ।

लेकिन चाय के प्याले को तो खाली कर देना पड़ेगा, इस बार और एक प्याला चाय आपको छानकर दूँगी। मेरे यहाँ दूसरा प्याला नहीं है।"

इस बार राखाल ने फिर आपत्ति नहीं की। एक ही साँस में बाकी चाय पीकर प्याले को फर्श पर रख दिया। उसके बाद निर्विवाद ही जलपान की प्लेट को उठा लिया।

शारदा चाय की दूसरी प्याली ले आकर सामने खड़ी हो गई तो राखाल ने खाते-खाते मुँह ऊपर न उठाकर ही प्रश्न किया, "अच्छा शारदा, तुम स्वयं तो चाय पीती नहीं हो, लेकिन मकान में चाय का सामान किसके लिए रखा है?"

शारदा ने कहा, "यही मान लीजिए, तारक बाबू···।"

राखाल ने कहा, "अच्छा, समझ गया।" हाथ के आधे सिंघाड़े को समाप्त करके जलपान समेत प्लेट को राखाल ने नीचे उतारकर रख दिया।

शारदा घबराकर झुक पड़ी और अकृत्रिम व्यग्रता से बोल उठी, "यह क्या, रसगुल्ला तो आपने बिल्कुल छुआ ही नहीं। ना-ना, यह नहीं होगा देवता। प्लेट उठा लीजिए। सब ही न खाने से मैं सिर पटककर मर जाऊँगी, कहे देती हूँ।"

अचानक शारदा की इस आन्तरिक चंचलता से राखाल अवाक्-विमूढ़ की तरह बोला, "लेकिन मुझे तो सचमुच ही खाने की रुचि नहीं है शारदा! सब जलपान न खाने से सचमुच ही क्या तुमको कष्ट होगा?"

शारदा ने अप्रसन्नता के साथ कहा, "हाँ, हाँ, होगा। कहती हूँ आप खाइए। रसगुल्ला आप कितना पसन्द करते हैं क्या मैं नहीं जानती? सवेरे रोज ही तो आप चाय के साथ गरम सिंघाड़े मँगाकर खाते हैं। बताइए, खाते नहीं?"

राखाल ने विस्मित होकर कहा, "लेकिन तुम इन सब गुप्त बातों को जान कैसे गईं?"

शारदा ने शान्त भाव से कहा, "मैं जानती हूँ।" उसके बाद वह हँसते-हँसते बोली, "अच्छा, शपथ करके बताइए तो, एक प्याला चाय पीने से आपकी प्यास किसी दिन बुझती है? दो प्याला चाय न मिलने से मन खट-खट करता है या नहीं?"

राखाल ने रसगुल्ले से भरे हुए गाल से भारी स्वर में कहा, "हूँ, समझ गया। लेकिन मैं जो अपने घर पर चाय पीता हूँ ठीक इसी प्रकार के बड़े प्याले में, तारक यह सूचना भी तुमको दे गया है?"

शारदा ने उत्तर नहीं दिया। राखाल का चाय पीना और जलपान हो जाने पर मुँह धोने के लिए जल और सुपारी-इलायची लाकर दे दिया।

हाथ-मुँह पोंछने के लिए एक अँगोछा हाथ में देकर शारदा बोली, "आँगन के बीच में खड़े होकर ऊँची आवाज से जो बात करना चाहते थे, अब वह कहिए।"

राखाल ने लज्जित होकर कहा, "शारदा, मैं देखता हूँ कि तुम आज-कल प्रत्येक बात में मेरा मजाक करती हो।"

शारदा ने जीभ दबाकर कहा, "बाप रे! क्या कहते हैं, देवता! इतना बड़ा दुस्साहस मुझमें नहीं है। ब्रह्मतेज से क्या मैं भस्म न हो जाऊँगी?"

राखाल ने गम्भीर मुँह से कहा, "मैं जानने आया था, तुम नई-माँ को अकेली हरिनपुर भेज किस आवश्यक काम से कलकत्ते में रह गईं? तुमको इसका सही उत्तर देना होगा।"

थोड़ी देर तक शारदा चुप ही रही। फिर बोली, "पहले आप एक बात का सही उत्तर देंगे, बताइए?"

"दूँगा।"

"जो प्रश्न आपने मुझसे पूछा है, स्वयं ही क्या सचमुच उसका उत्तर आप नहीं जानते?"

राखाल कठिनाई में पड़ गया। रुक-रुककर बोला, "मैंने जो अनुमान किया है वह ठीक है या नहीं, जान लेने के लिए तो तुमसे पूछ रहा हूँ शारदा!"

शारदा ने कहा, "तो आप जान रखिए, अपने मन से जो उत्तर आपको मिला है, वही सही है। अपना हृदय कभी मनुष्य को धोखा नहीं देता।"

राखाल चुप होकर बैठा रहा। शारदा जूठा प्याला और प्लेट वगैरह उठाने की तैयारी कर रही थी, उसी तरफ देखकर राखाल ने कहा, "तो भी अपने मुँह से तुम साफ नहीं बतला सकीं, गईं क्यों नहीं?"

शारदा ने हँसकर हाथ का जूठा प्याला और प्लेटों को इशारे से दिखा-

कर कहा, "इसी के लिए नहीं गई। अब स्पष्ट उत्तर मिला तो···।" यह कहकर वह बाहर चली गई।

राखाल चुपचाप बैठा रहा। सोचने लगा कि कुछ दिन पहले मैंने कहा था—संसार में शारदाओं को बहुत देख चुका हूँ। लेकिन सचमुच ही क्या बात है? इस शारदा की बराबरी की क्या एक भी स्त्री से जीवन में भेंट हुई है? जीवन-दान के मूल्य में इस तरह निःशब्द जीवन उत्सर्ग और कौन कर सकती है?

माँजे हुए बर्तनों को लाकर ताख पर सजाकर रखते-रखते शारदा ने कहा, "पहले जिस दिन मेरे घर में आपके पैरों की धूलि पड़ी थी देवता, आपको चाय बनाकर मैंने पिलाना चाहा था। आपने कहा था—असमय में चाय पीना मुझसे सहा नहीं जाता। मिठाई लाकर देना चाहा था। मेरा आग्रह देखकर आपको दया आ गई थी। आपने कहा था—फिर जिस दिन समय पाऊँगा, मैं स्वयं ही माँगकर तुम्हारी चाय, तुम्हारी मिठाई खा जाऊँगा, तभी मैंने चाय का सामान जुटाकर घर में रख छोड़ा है। जानती थी, एक-न-एक दिन आप मकान में बैठकर मेरे हाथ की चाय और मिठाई ग्रहण करेंगे ही। लेकिन आपने कहा था कि स्वयं ही माँगकर खाऊँगा। मेरे भाग्य में वह अब नहीं हुआ।"

राखाल मौन होकर बैठ रहा। उसे याद पड़ गया। वह आज घर से बाहर निकला था चाय-मिठाई माँगकर खाने के ही विचार से।

बहुत समय चुप रहने में बीत गया।

राखाल को एकाएक याद आया कि बाजार करके जल्दी घर लौट जाना आवश्यक है। चौंक के साथ उठकर खड़ा होकर बोला, "आज मैं जा रहा हूँ शारदा! साढ़े बारह बजे मुझे गाड़ी पकड़नी है।"

शारदा ने आश्चर्य में पड़कर पूछा, "कहाँ जाइएगा?"

"बड़े बाबू बहुत बीमार हैं। रेणुका ने वहाँ आने के लिए तार भेजा है।"

शारदा ने चिन्तित चेहरे से कहा, "नई-माँ के पास आपने सूचना भेज दी है?"

"ना, नई-माँ तो हरिनपुर में हैं। तुम उनकी चिट्ठी-पत्री पाती हो कभी ?"

"हाँ। वे हर चिट्ठी में चाचाजी और रेणुका का समाचार जानना चाहती हैं। आपका कुशल समाचार प्रत्येक पत्र में पूछती हैं।"

राखाल ने कहा, "तो तुम उनके पास यह सूचना भेज देना। मुझे उन्होंने चिट्ठी-पत्री नहीं लिखी।"

शारदा ने कहा—"लिख दूंगी। जरा ठहरिए देवता! मुझे लौटने में देर न लगेगी।"

शारदा टीन का बक्स खोलकर कुछ कपड़े लेकर कमरे से बाहर चली गई।

राखाल को अधिक देर प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। कुछ मिनटों में ही शारदा मिल की साफ धोती और एक छोटी-सी पोटली हाथ में लेकर कमरे में आई।

आश्चर्य में पड़ा हुआ राखाल शारदा के मुँह की तरफ देखने लगा तो शारदा ने कहा, "मुझे तो आपके साथ चलना पड़ेगा।"

राखाल ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "तुम कहाँ जाओगी मेरे साथ ?"

"व्रज बाबू बीमार हैं। रेणुका अकेली है। मैं वहाँ जाने पर बहुत-से कामों में लग सकूंगी।"

राखाल ने भौंहें टेढ़ी करके कहा, "लेकिन···।"

शारदा ने बीच ही में रोककर कहा, "ऐसा मत कीजिए देवता! दोनों पैरों पर गिरती हूँ। बड़े बाबू मुझे पहचानते हैं, रेणुका भी मुझे जानती है, मेरे जाने से वे लोग नाराज नहीं होंगे।"

राखाल खड़ा होकर सोचने लगा। सोचकर उसने देख लिया, शारदा को साथ ले जाने से लाभ के अलावा कोई हानि न होगी।

उसने कहा, "अच्छा, तो चलो। लेकिन तुम्हारा खाना-पीना तो हुआ ही नहीं। मैं बाजार से लौट आता हूँ। तुम ग्यारह बजने के पहले स्नान-भोजन करके तैयार हो जाओ।"

शारदा ने पूछा, "आपके भोजन का क्या होगा ?"

"मैं स्टेशन पर होटल में खा लूंगा।"

"मेरी रसोई चढ़ी हुई है। आप साढ़े दस बजने के पहले खाना तैयार पाइएगा। यहीं आज थोड़ा-सा खा लीजिए न देवता !"

"ना-ना ! मेरे खाने के लिए तुमको झंझट करना न पड़ेगा। मैं दुकान से खाने की चीज खरीद लाऊँगा।"

"आपको भात खाना ही पड़ेगा। गरम पूड़ी बना दूंगी। पूड़ी खाने में आपको आपत्ति क्या है ?"

"आपत्ति कुछ भी नहीं है। अभी उस दिन तो रात को तुम्हारे पास खाया था। अभी पेट के अन्दर चाय-मिठाई हजम नहीं हुआ है।"

"तो इस दशा में दो-चार पूड़ियाँ ही बना दूं ?"

"अगर खाऊँगा तो भात खाऊँगा, पूड़ी नहीं। जात का भय मुझे नहीं है। मैं तारक बाबू नहीं हूँ।"

शारदा ने हँसकर कहा, "तारक बाबू पर इतने नाराज क्यों हैं देवता ?"

राखाल ने हँसकर कहा, "तुम जानती हो कि तारक जिसके-तिसके हाथ का अन्न ग्रहण नहीं करता।"

शारदा हँसने लगी।

राखाल ने फिर कहा, "तो मैं जा रहा हूँ। सब चीज-सामान खरीदकर एक बार घर पर स्नान करके बक्स-बिस्तर लेकर लौटूंगा। तुम तैयार रहना।"

राखाल बाहर चला गया।

प्रायः पौने बारह बजे लौट आया। एक फल की टोकरी में नारंगी, बेदाना, अंगूर आदि तालमिश्री, बार्ली, साबूदाना, एक टीन उत्कृष्ट मक्खन, एक टीन रोगी के लिए पथ्य, हल्का बिस्कुट आदि खरीद लाया है। इसके अलावा हॉट वाटर बैग, ऑयल-बैग, ऑयल-क्लाथ आदि रोगी के लिए आवश्यक कुछ सामान भी उसने खरीद लिए हैं। साथ में हैं उसका अपना बिस्तर और बक्स।

राखाल ने लौट आने के साथ ही भात माँगा।

शारदा ने अपने कमरे के फर्श पर आसन बिछाकर चौका लगा दिया।

राखाल ने पूछा, "तुम तैयार हो न शारदा ?"

शारदा ने उत्तर दिया, "मैं तो बहुत देर से ही तैयार हूँ।"

राखाल आसन पर बैठकर चुपचाप भोजन करने लगा।

भोजन अत्यन्त साधारण ही था। लेकिन उसके पीछे जो आन्तरिकता और सयत्न आग्रह विद्यमान था, उसका परिचय राखाल के हृदय को अज्ञात नहीं रहा। तृप्तिपूर्वक भोजन कर उठने पर शारदा ने लोटे का पानी हाथ पर डाल दिया।

राखाल जीवन में किसी दिन ऐसी सेवा लेने का आदी नहीं है। इसलिए उसे हिचक-सी मालूम हो रही थी, लेकिन शारदा के इस एकान्तिक आग्रह-पूर्ण सेवा-यत्न में बाधा देने की प्रवृत्ति उसे नहीं हुई। आचमन का जल हाथ पर डालकर दाँत साफ करने की सींक उसने दी। उसके बाद अँगोछे को राखाल के हाथ पर रखकर शारदा ने कई पान के सजे बीड़े लाकर सामने धर दिए।

राखाल ने कहा, "इसे ही विधाता की कृपा कहते हैं। कहाँ स्टेशन पर खरीदा हुआ खाना और कहाँ शारदा के हाथ का बना खाना! साथ ही आचमन का जल, दाँत साफ करने की सींक, हाथ पोंछने का अँगोछा, कमरे में सजा हुआ पान, आज मैंने उठकर किसका मुँह देखा था?"

शारदा केवल मुस्कराने लगी। राखाल की जूठी थाली, कटोरी बाहर ले जाते-जाते कह गई, "आप जरा बैठिए। मैं दस मिनट में आती हूँ।"

राखाल एक सिगरेट जलाकर खाली चौकी के एक कोने में बैठकर तृप्ति के साथ पीने लगा। उसने देखा, शारदा एक मैली छोटी दरी से लपेटे हुए बिस्तर का छोटा बण्डल चौकी पर रख गई है। चारों ओर निगाह करके देखा तो कपड़े-लत्ते की गठरी या बक्स नहीं मिला।

शारदा सचमुच ही दस मिनट के अन्दर लौट आई।

राखाल ने पूछा, "तुम्हारा भोजन हो चुका शारदा?"

शारदा ने कहा, "भोजन करने ही तो गई थी।"

"यह क्या? इतने ही समय में भोजन हो गया! जान पड़ता है तुमने अच्छी प्रकार भोजन नहीं किया है।"

शारदा ने हँसकर कहा, "आज मैंने सबसे अच्छी तरह भोजन किया है। देवता का प्रसाद क्या हीन बताया जाता है? अब लीजिए, उठिए। सब तैयार है। आपका तो देखती हूँ सामान अधिक है। एक है सूटकेस, एक

बिस्तर, एक फल की टोकरी।"

राखाल ने शारदा के मजाक का उत्तर न देकर कहा, "तुम्हारा बिस्तर तैयार है, देखता हूँ। कपड़े-लत्ते का बक्स कहाँ है?"

शारदा ने कहा, "तीन साड़ियों को भी उस बिस्तर के साथ ही मैंने बाँध दिया है।"

राखाल ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "उससे काम कैसे चलेगा?"

शारदा ने मुस्कराकर कहा, "काफी हैं। गन्दा हो जाने पर साबुन से साफ कर दूँगी। ऐसा तो रोज ही यहाँ करती हूँ।"

राखाल कुछ चुप हो रहा, बार-बार उसे ध्यान आने लगा, कपड़ों का तुमको इतना अभाव है, यह क्या मुझसे बता देने से तुम्हारा अपमान होता शारदा? लेकिन मुँह खोलकर वह कुछ भी न कह सका। क्रोध की झोंक में रुपया वापस लेने की बात याद पड़ जाने से वह अपने को अपराधी सोचने लगा।

राखाल ने उदास होकर कहा, "कहो तो अब टैक्सी ले आऊँ?"

शारदा चौंक पड़ी, "अरे दादा, बतलाना ही भूल गई देवता—आपके बाजार चले जाने के थोड़ी देर बाद ही विमल बाबू आए थे। वे कह गए हैं कि एक आवश्यक काम से जा रहे हैं, अभी तुरन्त ही लौट आएँगे। आपसे उन्हें कुछ आवश्यक काम है। वे अपनी मोटर से हम लोगों को स्टेशन तक पहुँचाने को कह गए हैं।"

राखाल के मुँह के भाव की कोमलता उड़ गई। उसने रूखे स्वर से कहा, "आज अब उनसे भेंट करने का समय नहीं है शारदा! लौट आने पर भेंट होगी, देर करने से काम नहीं चलेगा। मैं टैक्सी लाने जा रहा हूँ।"

राखाल की बात समाप्त होने से पहले ही सदर दरवाजे के सामने मोटर का हॉर्न सुनाई दिया और बाहर आँगन से विमल बाबू का स्वर भी सुनाई पड़ा, "शारदा बेटी!"

शारदा ने बाहर निकलकर कहा, "आइए।"

विमल बाबू ने कमरे में प्रवेश करके कहा, "लो, राजू आ गया। भाग्य अच्छा था कि आज इस ओर आवश्यक काम से आया था। सोचा कि निकट ही जब आ गया हूँ; शारदा बेटी को एक बार देख आऊँ। यहाँ आकर मैंने

सुना कि ब्रज बाबू की बीमारी का तार पाकर तुम लोग आज ही रवाना हो रहे हो। चलो, तुम लोगों को स्टेशन पहुँचा आऊँ। आज बड़ी मोटर लेकर बाहर निकल पड़ा हूँ। सामान ले जाने में दिक्कत न होगी।"

राखाल इच्छा न रहने पर भी आपत्ति न कर सका। सब सामान गाड़ी पर रखे जाने पर विमल बाबू ने राखाल का हाथ पकड़कर कहा, "राजू, मेरा एक अनुरोध मान लो, ब्रज बाबू की बीमारी में यदि किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता तुम समझो, मुझे तार भेजना, भूलना नहीं। बीमारी में अर्थ-बल और जन-बल दोनों ही आवश्यक है। तुम सूचना दोगे तो उसी क्षण बड़े डॉक्टर को लेकर रवाना हो सकूँगा। मैं ब्रज बाबू और रेणुका का अनजान हितैषी हूँ, विश्वास करने में शंका मत करना।"

विमल बाबू के स्वर की दृढ़ता से राखाल शायद कुछ अभिभूत हो गया था, इसीलिए कुछ आश्चर्य के भाव से ही उसने उनके मुँह की तरफ ताका।

विमल बाबू ने कहा, "मैं जानता हूँ राजू, तुमसे बढ़कर दूसरा मित्र आज उन लोगों का कोई नहीं है। तो भी मुझसे यदि उन लोगों का किसी ओर से कोई भी उपकार तिल-मात्र भी सम्भव समझो, मुझे सूचना देने में मत भूल जाना। इतनी ही बात तुमको बतलाए देता हूँ।"

राखाल कुछ कहने जा रहा था।

विमल बाबू ने बीच में कहा, "रेणुका और ब्रज बाबू आज कितने अधिक असहाय हैं, मैं यह जानता हूँ राजू!"

राखाल की दोनों आँखें सजल हो उठीं।

उसने कहा, "यदि आपके प्रति मैंने अविचार किया हो, मुझे क्षमा करें। चाचाजी की बीमारी में यदि किसी सहायता की आवश्यकता होगी, आपको मैं तुरन्त खबर भेज दूंगा।"

बाईस

सविता का थका हुआ मन तारक की सेवा, देखभाल और अच्छे व्यवहार से बहुत-कुछ स्वस्थ हो गया। सविता तारक के प्रत्येक व्यवहार, प्रत्येक

मर्म, प्रत्येक बातचीत में आश्चर्यजनक विशेषता लक्ष्य करके मुग्ध हो रही थी।

तारक भी सविता की केवल अपनी माँ के ही समान नहीं, बल्कि जैसे भक्त देवता की त्रुटिहीन सेवा करता है उसी प्रकार सेवा-टहल करता है।

सविता ने एक दिन बातचीत में तारक से पूछा, "तारक, तुम तो मुझे हरिनपुर में ले आए बेटा, राजू को क्या तुमने वह बात नहीं बताई ?"

तारक ने कुछ दुःखी भाव से उत्तर दिया, "ना माँ।"

सविता ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "लेकिन उसको ही तो अपनी सेवा के पहले सूचना हमें देना उचित था तारक।"

तारक ने कहा, "उसे मैंने सूचना क्यों नहीं दी, उस बात को मैं किसी दूसरे दिन आपको बता दूँगा माँ।"

सविता ने आश्चर्य से कहा, "तुम दोनों मित्रों में इसी बीच कौन-सी ऐसी बात हो गई, जिसमें माँ को भी बताने में शर्म लग रही है बेटा !"

तारक ने मुँह नीचा करके कहा, "राखाल शायद वह अभियोग आपसे बता चुका है, यदि उसने न बताया होगा तो जल्दी ही एक दिन बताएगा ही। इसीलिए मैं भी आपको सब बताऊँगा।"

तारक के उदास मुख की ओर क्षण-भर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते रहकर सविता ने कहा, "सुना है, राजू के तुम अभिन्न मित्र हो। मैं जानती थी, तुम उसे पहचानते हो। लेकिन अब समझ में आ रहा है कि तुम मेरे राजू को नहीं पहचान पाए भैया !"

तारक ने व्यग्र होकर कहा, "क्यों माँ ?"

सविता ने कहा, "किसी ने उसके साथ चाहे जितना बड़ा अन्याय क्यों न किया हो, राजू ने दुनिया में किसी के पास किसी के नाम पर कभी शिकायत नहीं की और कभी करेगा भी नहीं। शिकायत करने की शिक्षा जीवन में उसने नहीं पाई तारक, सहन करने की ही शिक्षा पाई है।"

तारक और भी कुण्ठित हो पड़ा, बोला, "मुझे क्षमा कीजिए माँ, कहने के दोष से कुछ गलत न समझिएगा। मैंने कहना चाहा था—मेरा मतलब था कि राखाल से आपने मेरे सम्बन्ध में जो घटना सुनी है या सुनेंगी, वह बाहर से सत्य होने पर भी सम्पूर्ण सत्य नहीं है।"

सविता ने हँसकर कहा, "मैंने राजू से कुछ भी नहीं सुना भैया, किसी

दिन सुन भी न पाऊँगी, इस सम्बन्ध में तुम निश्चिन्त रह सकते हो।"

अकस्मात् तारक कुछ उत्तेजित होकर भाषण देने की मुद्रा से हाथ-मुँह हिलाकर कहने लगा, "किन्तु यह मैं किसी प्रकार न मान सकूँगा माँ कि आपसे भी हम लोगों के विच्छेद का कारण छिपाना उसके लिए उचित हुआ है। आपने उसे केवल स्नेह के रस और अन्न के रस से ही नहीं पुष्ट किया है, आप ही के निकट उसने अपनी सारी शिक्षा-दीक्षा जो कुछ है, सब पाई है। वह जो पृथ्वी पर अब भी जी रहा है और भले आदमियों के समान रहकर जी रहा है, इसके लिए वह किसका भारी ऋणी है? किसके उदार असाधारण मन और असाधारण जीवन ने राखाल की दृष्टि को और मन को इतना प्रसारित कर दिया है? किसका अपार स्नेह, आड़ में विधाता की करुणा की तरह ही, उसके जीवन की रक्षा सतर्क रहकर करता आ रहा है? उसी माँ से सत्य को छिपाना न्याय न मान सकूँगा माँ, आपके कहने से भी नहीं।"

एक साँस में इतना भाषण करके तारक साँस लेने लगा।

तारक की ओर सविता स्थिर दृष्टि से ताकती हुई सुन रही थीं।

फिर बोलीं, "तारक, तुम दोनों में क्या बात हुई है भैया?"

"तो फिर कहता हूँ, सुनो माँ! राखाल ने मुझे आपका जो परिचय दिया था, सो यदि वह आपको सत्य ही अपनी माँ मानता होता तो वैसा परिचय कभी न दे सकता।"

सविता ने कुछ नहीं कहा। उनके मुस्कराते हुए चेहरे के भाव में कुछ परिवर्तन नहीं देखा गया।

तारक फिर उत्साह के साथ कहने लगा, "आपने कहा था माँ, किसी के सम्बन्ध में बिना पूछे, उपचारक होकर कोई बात कहना उसका स्वभाव नहीं है। लेकिन मैंने तो इसके विपरीत ही प्रमाण पाया है। उसने उपचारक होकर ही मुझको अपनी नई-माँ का ऐसा परिचय दिया था, जिसके जानने का मुझे कोई प्रयोजन नहीं था। लेकिन वह मूर्ख यह नहीं समझा कि आग को राख बताने से पहले शायद सुनने वाला भूल सकता है, लेकिन भूल ज्यादा देर तक नहीं टिकती। अग्नि अपना परिचय आप दे देती है।"

सविता ने अब भी उत्तर नहीं दिया। पहले ही की तरह प्रश्न की दृष्टि

से देखती हुई मौन रहीं।

तारक कहने लगा, "अवश्य मैं यह स्वीकार करता हूँ माँ कि उसने जब बहुत-कुछ अतिरंजित कहानी सुनाकर मुझसे प्रश्न किया था कि यह सब सुनकर मुझे घृणा होती है कि नहीं, तब मैंने उत्तर दिया था कि घृणा होना ही तो स्वाभाविक है राखाल। तब तो मैं जानता न था कि उसका अर्थ ही आपके ऊपर अश्रद्धा उत्पन्न कर देना था। यह बात न होती तो सब बातें कहने की तो उसे आवश्यकता न थी।"

इस बार सविता ने शान्त स्वर से ही कहा, "राजू झूठ नहीं बोलता तारक। उसने जो कुछ तुमसे कहा है, सब सत्य है।"

तारक का मुँह उतर गया। सकुचाते हुए स्पष्ट स्वर में सूखे गले से उसने कहा, "आप जानतीं नहीं माँ कि वह कैसी भयानक बात है।"

सविता ने कहा, "जानती हूँ। तुमने चाहे जो कुछ क्यों न सुना हो तारक, राजू के मुख की कोई भी वात मिथ्या नहीं है।"

तारक के गले की नली को जैसे किसी ने सख्त मुट्ठी में दवाकर स्वर-रोध कर दिया। चेष्टा करने पर भी उसके कण्ठ से एक शव्द भी नहीं निकला।

सविता धीरे-धीरे रोने लगीं, "तुमने राजू के सम्बन्ध में केवल गलती ही नहीं की, अविचार भी किया है। उसने तुम्हें कुछ गलत समझाना नहीं चाहा वल्कि तुम्हीं कुछ गलत न समझ लो; इसी भय से शुरू से ही सब घटना खुलासा करके तुमसे कह दी है। यदि तुमने समझा हो कि उसकी बात झूठ है तो तुमने बड़ी गलती की है।"

तारक ने सूखे स्वर में कहा, "लेकिन माँ, मैंने तो कुछ जानना ही नहीं चाहा था। फिर उसने उपचारक होकर क्यों···"

सविता ने मलिन हँसी हँसकर कहा, "तुम उच्चशिक्षित और बुद्धिमान हो। सब ओर मन लगाकर सोचकर भले-बुरे का विचार करने की शक्ति ही तुममें रहना संभव है। संसार को सतह से देखने में अनेक वस्तुओं को शायद हम एक ही प्रकार की देख पाते हैं किन्तु सादृश्य रहने पर भी वे सभी वास्तव में एक नहीं होतीं। इसके सिवा, यह तो जानते हो कि बाहर की ओर से भीतर का विचार करना कभी ठीक नहीं होता। ऐसे मामलों में यह

बात साधारण लोग नहीं समझ पाते और समझना भी नहीं चाहते। किन्तु तुम तो उन लोगों में नहीं हो। राजू इस बात को जानता है, इसी से उसने अपनी नई-माँ के दुर्भाग्य की कहानी तुम्हारे आगे खोलकर कह दी।"

बहुत देर तक सिर झुकाए तारक चुप बैठा रहा। फिर सिर उठाकर बोला, "राखाल ने एक दिन मुझसे कहा था माँ कि संसार में हजार में से नौ सौ निन्नानवे स्त्रियाँ साधारण हैं, कहीं कभी एकाध असाधारण स्त्री देखने को मिलती है। नई-माँ वही नौ सौ निन्नानवे के बाद कभी कहीं मिल जाने वाली एक स्त्री हैं। इच्छा करने पर भी कोई उनका अनादर या अवहेलना नहीं कर सकता। उसने सत्य ही कहा था।"

सविता मौन रहीं, अन्यमनस्क भाव से दूसरी ओर ताकती रहीं। तारक जरा हिल-डुलकर बैठकर, कण्ठस्वर में बहुत-सा जोश लाकर कहने लगा, "ज्ञान होने के पहले ही शिशु अवस्था में मेरी माता नहीं रही थी—पहचानता था केवल पिता को। पिता ने ही अपने हाथ से पाल-पोसकर मुझे बड़ा किया है। वही पिता जब अपने सुख के लोभ से मातृहीन सन्तान के लिए एक सौतेली माँ ले आए, तब दुःख, अभिमान और घृणा के मारे मैं घर छोड़कर चला आया। पिता का मुख फिर नहीं देखा, घर का भी नहीं। आपको पाकर माँ, जीवन में फिर नए सिरे से पिता-माता के स्नेह का स्वाद पाया। मेरे लिए आप माँ के सिवा और कुछ नहीं हैं। आपके जीवन में चाहे जो आँधी-तूफान, चाहे जो आघात, चाहे जो गुरुतर परीक्षा ही आई हो, आपके हृदय में अपरिमेय मातृ-स्नेह को वह बूंद-भर भी नही सुखा सकी। सन्तान के लिए यही सबसे बढ़कर 'वरदान' है।"

सविता ने कहा, "तुम्हारे पिता अभी जीवित हैं?—मगर तुमने तो एक दिन मुझसे अपने को अनाथ कहा था।"

तारक ने हँसकर कहा, "ठीक ही कहा था माँ! मेरे जन्मदाता शायद अब भी जीवित रह सकते हैं, लेकिन मेरे पिता जीवित नहीं हैं। पिता की मृत्यु हुए बिना मातृहीन अभागी सन्तान के जीवन में विमाता का आविर्भाव नहीं होता—मेरा यही विश्वास है।"

सविता विस्मित नयनों से तारक को देखती रहीं।

तारक कहने लगा, "जीवन में मेरी बड़ी-बड़ी आशाएँ और अनेक उच्च

आकांक्षाएँ हैं। केवल खा-पीकर, पहनकर किसी तरह जीवन धारण करके जीते रहना मैं नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ—हर चीज की बहुतायत के बीच, ऐश्वर्य के बीच सार्थक सुन्दर जीवन लेकर जीना। हजार आदमियों के बीच मेरे ही ऊपर सबकी दृष्टि पड़े, हजार नामों के बीच मेरे ही नाम को लोग जानें। कर्म जीवन की सार्थकता से, यश-गौरव के सम्मान से, प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि से अधिक उन्नत जीवन लेकर जिऊँ—यह मैं चाहता हूँ। केवल धन कमाना ही मेरे जीवन की एकान्त कामना नहीं है, केवल स्वच्छन्द जीविका-निर्वाह ही मेरा चरम लक्ष्य नहीं है।"

सविता ने प्रेम-भरे स्वर में कहा, "यह तो वहुत अच्छा है भैया। मर्द के जीवन में ऐसी ही ऊँची आकांक्षा होनी चाहिए। लक्ष्य जितना उच्च और विराट रहेगा—जीवन भी उतना ही विराट होगा।"

तारक ने उत्साहित होकर कहा, "आपको तो मैंने वता दिया है माँ कि कितने दुःख और कष्ट से कितनी वाधाओं के बीच, अपने ऊपर ही निर्भर रहकर—अपने ही भरोसे विश्वविद्यालय की सीढ़ियों पर चढ़ा हूँ—परीक्षाएँ पास की हैं। मैं वड़ा जिद्दी हूँ माँ। जो काम करने का मन में विचार करता हूँ, वह जव तक पूर्ण या सिद्ध नहीं होता तब तक चैन नहीं लेता।"

सविता मुस्कराते मुख से तारक के यौवनोचित आशा, आकांक्षा और उत्साह से दमक रहे मुख की ओर ताककर अन्यमनस्क भाव से जैसे कुछ सोचने लगीं।

"अपने जीवन की सारी कहानी केवल आप ही से खोलकर कही है माँ। जाने क्यों, समय-समय पर मन में आता है कि जीवन में शायद कुछ भी नहीं मिला—कुछ भी नहीं पाया। सोचता हूँ कि यदि किसी दिन लाखों रुपया पैदा भी कर लिया, तो उससे और क्या लाभ होगा? यश भी यदि देश-देशान्तर में फैल गया तो उससे ही क्या होगा? सम्मान और प्रतिष्ठा-पूर्ण प्रसिद्धि की चरम सीमा पर चढ़ने से भी क्या मेरी बचपन से चली आ रही अतृप्त तृष्णा मिटेगी? चिरदिन जो अभिमान, जो दुःख अपने गोपन के भीतर ही मैं अकेला धारण किए रहा, विधाता तक से जिसके लिए नालिश नहीं की वह वेदना क्या किसी दिन मेरे इस धन, मान, यश या कर्मजीवन की सफलता से दूर होगी? सारा हृदय जैसे हाय-हाय कर उठता है, काम

करने का उत्साह और उद्दीपन ठण्डा पड़ जाता है। मन में आता है कि भाग्य-देवता ने जिस मनुष्य को पृथ्वी पर भेजकर बचपन में ही माता के स्नेह से वंचित कर दिया है, वह कितना बड़ा दुर्भाग्य लेकर मनुष्यों के इस बाजार में आया है, यह किसी को समझाकर कहने की अपेक्षा नहीं रखता। जीव-जगत् की सृष्टि करने वाले का सबसे श्रेष्ठ दान माता का स्नेह है। उसी स्नेह से जो जन्म से ही वंचित है उसका फिर···" वेदना के आवेग से तारक का गला रुँध गया।

सविता की आँखों की कोरों में आँसू भर आए थे। उसने कुछ भी नहीं कहा। सांत्वना भी नहीं दी। उसके मुख पर गहरी सहानुभूति की छाया सुस्पष्ट हो उठी। जो गाढ़ी वेदना वह चुपचाप बहुत ही छिपाकर हृदय के एकान्त कोने में धारण करती रही है, दीर्घकाल से उसके उसी वेदना के स्थान को तारक ने आज बिना जाने छू लिया। तारक के अन्त के कुछ शब्दों ने सविता के सारे हृदय को मथ डाला। चुपचाप आँखें नीची किए वह अपने अशान्त हृदय के आवेग को संयत करने लगी।

सदर दरवाजे पर डाकिए ने आवाज दी—चिट्ठी—

तारक बाहर जाकर चिट्ठी ले आया।

सविता के नाम चिट्ठी थी।

शारदा ने लिखी है।

सूचना दी है कि विमल बाबू से राजू की भेंट मार्ग में हुई थी। उसके मुँह से विमल बाबू को सूचना मिली है कि गांव की कन्या-सहित व्रज बाबू कुशलपूर्वक हैं।

सविता ने पत्र पढ़कर, हँसकर कहा, "जान पड़ता है, राजू शारदा के यहाँ नहीं जाता। जाए ही कैसे?—वह तो शायद जानता ही नहीं कि शारदा मेरे साथ हरिनपुर नहीं आई।"

तारक कुछ बोला नहीं।

सविता ने फिर कहा, "देखूं, मैं ही उसको न हो तो एक चिट्ठी लिख दूं। एक काम करो न तारक, तुम उसे यहाँ आने का निमन्त्रण देकर चिट्ठी लिख दो, मैं भी उसी में उसे यहाँ आने के लिए लिख दूंगी। यहाँ उसके आने से तुम दोनों मित्रों के मन-अभिमान की भी मीमांसा हो जाएगी।"

तारक ने कहा, "अच्छा तो है। मैं आज ही लिखे देता हूँ।"

सविता ने स्नेहपूर्ण स्निग्ध कण्ठ से कहा, "राजू मेरा बड़ा अभिमानी, तुनकमिजाज लड़का है। लेकिन उसके हृदय की तुलना मैंने कहीं नहीं देखी।"

सविता ने यह बात सहज भाव से ही कही, किन्तु तारक के मन में इसने और अर्थ में चोट पहुँचाई।

उसे जान पड़ा कि नई-माँ ने शायद मेरे ही अन्तःकरण के साथ तुलना करके राजू के सम्बन्ध में यह बात कही है। उसके मुँह पर अँधेरी छा गई और वाक्य हो गए निस्तब्ध।

सविता इस ओर लक्ष्य न करके ही विगलित स्वर से कहने लगीं, "राजू के बारे में जब मैं सोचती हूँ तारक, तब विचार होता है कि मेरा राजू अधिक स्नेह का धन है या रेणुका? राजू और रेणु, दोनों में कौन अधिक है और कौन कम, मैं ठीक नहीं कर पाती।"

तारक कह उठा, "तब तो आप अपने हृदय को अभी तक पहचान नहीं सकीं माँ। रेणुका के साथ राजू की कोई तुलना ही नहीं हो सकती।"

सविता ने कहा, "क्यों, भला वताओ?"

"राजू को चाहे जितना सन्तान के तुल्य क्यों न मानें, तो भी वह सन्तान के 'तुल्य' ही रह जाएगा—'तुल्य' शब्दों को वाद देकर सम्पूर्ण रूप से अपनी सन्तान न हो जाएगा। हो भी नहीं सकता।"

सविता ने कहा, "सभी स्थान पर सब मामले एक प्रकार नहीं होते तारक।"

"यह मैं जानता हूँ माँ। तो भी कहता हूँ, सुनिए। आप स्वयं ही विचार करके देखिए, आपके हृदय के स्नेह के अधिकार में रेणु और राजू का समान दावा चाहे जितना हो, दोनों में भिन्नता या अन्तर कितना अधिक है यह मैं वताये देता हूँ। आप अपने इस हरिनपुर आने को ही ले लीजिए। चलने के पहले दिन, रात को सुना, राखाल ने आपको हरिनपुर आने के लिए मना किया था। चूंकि आपने कहा था कि लड़का जब सयाना हो तब उसकी सम्मति लेने की आवश्यकता है और यह सुनकर उसने असम्मति प्रकट की थी। पर आप उसको न मानकर मेरे यहाँ चली आईं।

लेकिन माँ, यदि रेणु आपके यहाँ आने के सम्बन्ध में अपनी अनिच्छा का जरा-सा भी आभास देती, तो आप हरिनपुर आना निश्चय ही बन्द कर देतीं।"

सविता ने जरा चुप रहकर कहा, "मैं जानती हूँ तारक कि राजू ने केवल अभिमानवश अप्रसन्नता से ही मुझे आने को मना किया था। यह उसका केवल तर्क या जिद थी। सचमुच ही यदि मुझे भी जाने के बारे में उसकी अनिच्छा होती तो मैं कभी न आ सकती भैया।"

"लेकिन मान लीजिए, रेणु यदि केवल जिद या तर्क करके ही आपको नहीं जाने के लिए मना करती तो उसके उस तर्क और जिद की खातिर किए बिना क्या आप रह सकतीं माँ?"

सविता चुप रहीं।

बहुत देर बात धीरे-धीरे बोलीं, "तुमने ठीक ही कहा है तारक। जान पड़ता है, मनुष्य अपने हृदय को सबसे कम जानता है। मगर एक बात है। राजू मेरे निकट रेणु से बढ़कर भले ही न हो सके, किन्तु मैं राजू के निकट माँ से बढ़कर हूँ। मेरी ओर से नहीं, परन्तु राजू की अपनी ओर से वह रेणु से बढ़कर है। इस जगह मुझसे भूल नहीं हुई।"

तारक चुप हो रहा।

क्षणभर बाद दूसरा प्रसंग उठाकर बोला, "कहाँ, विमल बाबू की चिट्ठी तो आज भी नहीं आई माँ!"

सविता ने कहा, "तुमने क्या हाल में उन्हें चिट्ठी लिखी है?"

"लिखी क्यों नहीं? जान पड़ता है, उन्होंने आपको आठ-दस दिन से चिट्ठी नहीं दी। यही बात है न?"

"हाँ, लेकिन मैंने भी उनकी पहले की चिट्ठी का उत्तर अभी तक नहीं दिया। जान पड़ता है, इसी से उन्होंने चिट्ठी नहीं लिखी। कारण, यह तो शारदा की चिट्ठी से मुझे मालूम ही हो जाता है कि वह कुशल से हैं।"

तारक ने लम्बा साँस लेकर कहा, "यही एक मनुष्य मैंने देखा है माँ, जिसके पैरों पर आप ही सिर झुक जाता है।"

सविता ने उत्तर नहीं दिया।

तारक आप-ही-आप कहने लगा, "कैसा बड़ा मन है, कैसा उदार

चरित्र है, कैसे बढ़िया आदमी हैं। सच्चा कर्मवीर है। जीवन में ऐसे सार्थक पुरुष कम ही दीख पड़ते हैं।"

सविता ने मुस्कराकर कहा, "यह बात तुमने किस हिसाब से कही तारक? आर्थिक उन्नति के सिवा उन्होंने संसार में और कौन-सी सफलता प्राप्त की है? और सारे जीवन में ऐसा कौन-सा बड़ा आनन्द संचय कर पाए हैं?"

तारक ने झोंक में कह डाला, "जो आदमी अपने सामर्थ्य से अत्यधिक धन अनायास कमा सकता है, इतने बड़े-बड़े धन्ध खड़े कर सकता है, उसके जीवन में और छोटी-मोटी सार्थकताएँ हों या न हों, उनको लेकर आक्षेप नहीं है माँ। मर्द आदमी के कर्ममय जीवन की इस प्रकार की बहुत बड़ी सार्थकता की अपेक्षा और क्या कामना रह सकती है, बोलिए?"

सविता हँसीं।

उत्तर नहीं दिया।

तारक के मुँह से मर्दों के जीवन की उच्च आकांक्षा और उच्च आदर्श के सम्बन्ध में अब तक वह वहुत-सी बड़ी-बड़ी बातें और कल्पनाएँ ही सुनती आ रही थीं। किन्तु उसके व्यक्तिगत जीवन की आशा, आकांक्षा, सार्थकता का लक्ष्य किस ओर है, वह किसी दिन स्पष्ट करके निर्देश नहीं कर पाया था या किया नहीं था। सविता की चिन्ता-धारा न जाने कैसी एक अनिर्दिष्ट शून्यता में खो गई।

शिबू की माँ ने आकर पुकारा, "माँजी, देर हुई जा रही है, भोजन बना लीजिए।"

तारक ने कहा, "बहुत दिन से तो माँ के हाथ का अमृतस्वरूप प्रसाद पा रहा हूँ। अब पाचिका को ही हाँड़ी चढ़ाने की अनुमति दीजिए। इस घोर गर्मी में आँच के सामने बैठने से आपकी तबीयत खराब हो जाएगी।"

सविता ने हँसकर कहा, "आग की गर्मी में रसोई करने से औरतों का स्वास्थ्य नहीं बिगड़ता तारक, अच्छा होता है।"

"यह साधारण स्त्रियों को हो सकता है माँ, आप उनके दल में नहीं हैं, मैं जानता हूँ।"

"तुम कुछ नहीं जानते वेटा।"

"ना माँ, मैं नहीं सुनूंगा। देखा है, कलकत्ते के घर में आपका रसोइया महाराज था। फिर यहाँ महाराज के हाथ का खाना खाने को जी नहीं चाहता, यह आपका बहाना व्यर्थ है। सच बात यह है कि आप स्वयं परिश्रम करना चाहती हैं।"

"यदि यही हो तो उसमें तुम्हें आपत्ति क्यों है भैया?"

तारक ने प्रबल वेग से सिर हिलाकर कहा, "ना, यह न होगा। अपनी राजराजेश्वरी माँ को मैं प्रतिदिन अपने हाथ से रसोई बनाने, मसाला पीसने, कपड़े धोने का काम न करने दूंगा—यह सब सचमुच आपके काम नहीं हैं माँ।"

सविता के नयन सजल हो उठे। जैसे कुछ सोचने लगीं। बोलीं नहीं।

तारक ने कहा, "आज से दासी और महाराज आपका काम करेंगे—मैं उनसे कहे देता हूँ। अब आपके ये सब अत्याचार नहीं चल सकेंगे।"

सविता ने करुण हँसी के साथ कहा, "तारक, अगर मुझको इतना-सा भी काम न करने दोगे भैया, तो यह मुझ पर ही अत्याचार होगा। मैं तुमसे स्पष्ट कहती हूँ कि महाराज का बनाया खाना मेरे गले के नीचे नहीं उतरेगा। दासी-चाकर की सेवा मेरे शरीर में बिछूटी या करेंच का कोड़ा मारेगी। यह जानकर भी यदि तुम मेरे काम के लिए नौकर-नौकरानी रखना चाहो तो मैं लाचार हूँ।"

तारक ने विस्मय से अभिभूत होकर कहा, "आप क्या हमेशा ही इस प्रकार अपना सब काम अपने ही हाथ से करती रहेंगी माँ?"

सविता ने कहा, "हमेशा करूँगी कि नहीं, यह नहीं जानती भैया! लेकिन आज मैं दास-दासी की सेवा सहन नहीं कर पाती, इतना ही कह सकती हूँ। ईश्वर ने यदि कभी मुँह उठाकर देखा तो तुम्हारे ही पास और किसी समय आकर पलंग पर बैठे-बैठे नौकरानियों से सेवा लूंगी बेटा।"

सविता की बात का तारक भेद न कर सका। दुःखी हुआ चुप ही रहा। कुछ देर बाद धीरे-धीरे बोला, "माँ, मनुष्य को मनुष्य छोटा कैसे समझता है, यही सोचता हूँ। लेकिन मैं मनुष्य का परिचय एकमात्र मनुष्य के सिवा जाति-पाँति, कुल-गोत्र से पृथक् करके सोच ही नहीं सकता। इसीलिए मेरे निकट मुसलमान, क्रिस्तान, ब्राह्मण, बौद्ध, वैष्णव, शाक्त सभी

समान हैं।"

सविता के विषाद-गम्भीर मुख पर आनन्द की आभा फूट उठी।

उन्होंने कहा, "यह मैं जानती हूँ तारक। तुम्हारा अन्तःकरण कितना महान् और उदार है, तुमसे परिचय होने के पहले ही मैंने जान लिया था। तुमको मैं स्नेह करती हूँ, विश्वास करती हूँ।"

तारक ने विस्मय से कहा, "मुझे देखने के पहले से ही आपने मेरा परिचय पा लिया था माँ ? कहाँ, इतने दिन तो आपने बताया नहीं।"

सविता स्नेह के साथ मुस्करा दीं।

तारक ने कहा, "किन्तु चाहे जिससे मेरे बारे में आपने सुना हो, यह आपने कैसे जान लिया कि मैं विश्वास के योग्य हूँ ?"

ममतामय कोमल स्वर से सविता ने कहा, "कैसे जाना यह मत सुनो भैया। हाँ, यह जान लो कि मैं जानती थी, इसीलिए तुम्हारे स्नेह के आह्वान को पूरा करने के लिए राजू के भी मन को व्यथा देकर यहाँ आई हूँ। इसमें कोई भी भूल नहीं है।"

तारक ने अभिभूत स्वर में कहा, "मुझ पर इतना स्नेह, इतना विश्वास करती हो माँ ?"

सविता ने गम्भीर स्वर में कहा, "केवल विश्वास नहीं बाबा, उससे भी बढ़कर तुम्हारे ऊपर भरोसा करने का साहस मैंने पाया है। तुम तो जानते हो तारक, मेरे कोई लड़का नहीं है। राजू ने मेरे लड़के के अभाव को अवश्य पूरा किया है, फिर भी कुछ अपूर्ण है। वह खालीपन तुमको ही पूरा करना होगा भैया।"

तारक विस्मय-विमूढ़ हो सविता की ओर अपरिमित अनुराग से देखता रहा।

तेईस

व्रज बाबू का गाँव !

राखाल शारदा को साथ लेकर जिस समय व्रज बाबू के पलँग के पास

पहुँचा उस समय रोग का प्रबल प्रकोप कुछ घट गया था। फिर भी पूर्ण स्वस्थता नहीं आई थी।

इस रोग से ब्रज बाबू शरीर के साथ मन से भी अत्यन्त दुर्बल हो गए थे।

राखाल को देखकर उनके बन्द नेत्रों से आँसू ढुलककर गिरने लगे। स्वभावत: कोमल-चित्त राखाल अपने पितृतुल्य की असहाय अवस्था देखकर अपने नेत्रों का जल रोक नहीं पाया।

ब्रज बाबू ने कोमल स्वर से धीरे-धीरे कहा, "राजू, तुमको मैंने बुलाया था।" फिर कण्ठ को साफ करके उन्होंने कहा, "तुम्हारी बहिन की देख-भाल करने वाला कोई नहीं है बेटा, उसके लिए ही तुमको बुलाया है।"

राखाल चुप रहा।

ब्रज बाबू अत्यन्त क्षीण स्वर में कहने लगे, "राजू, यहाँ इन लोगों ने मुझे समाजच्युत कर रखा है। मेरे गोविन्दजी अपनी कोठरी में प्रवेश नहीं कर सके, यथास्थान आसीन नहीं हो सके। रेणुका मेरे गोविन्दजी का भोग तैयार करती है, इस पर सबको आपत्ति है। मेरे न रहने पर यहाँ कोई भी मेरी रेणुका का भार नहीं लेगा। इसको तुम ले जाकर उसकी विमाता के पास ही पहुँचा देना। हेमन्त प्रसन्न होगा, जानता हूँ, लेकिन आश्रय अवश्य देगा। इसके अलावा और तो कोई उपाय खोजने पर नहीं मिलता बेटा।"

राखाल सोच रहा था कि बेचारी निर्धन, अविवाहिता रेणुका को उसकी विमाता और विमाता के विषम-बुद्धिसम्पन्न भ्राता अपनी गृहस्थी में ग्रहण करेंगे या नहीं इस सम्बन्ध में वह सन्देह करता था, तो भी मुँह से उसने कुछ नहीं कहा।

ब्रज बाबू फिर कहने लगे, "इसका विवाह करके निश्चिन्त मन से गोविन्दजी के चरणों में मैं स्थान ले सकता था। अन्तिम समय में एकाग्रचित्त से गोविन्दजी को स्मरण करने में भी रुकावट पा रहा हूँ राजू। रेणुका के लिए दुश्चिन्ता मुझे शांति से मरने नहीं देगी।"

राखाल ने कहा, "अब उन सब बातों को क्यों सोच रहे हैं चाचाजी, आपको ऐसा कुछ भी नहीं हुआ है जिसके कारण अभी तुरन्त ही रेणुका को हेमन्त मामा के यहाँ भेजने का प्रबन्ध करना पड़ेगा। आप अच्छे हो जाइए,

मैं स्वयं इस बार रेणुका के ब्याह के लिए तैयार होता हूँ।"

व्रज बाबू ने करुण हँसी के साथ कहा,"लेकिन रेणुका तो कहती है कि वह विवाह नहीं करेगी।"

राखाल ने कहा, "एक बच्ची यह बात कह रही है इसीलिए क्या उसी को पत्थर की लीक मानकर चलना पड़ेगा, तब आपके बहुत बड़े सर्वनाश के बीच दुःख-कष्ट का धक्का लगने से उसने यह बात कही थी। लेकिन आज आपकी यह दशा देखकर उसको समझने में क्या देर लगेगी कि उसको अपने जीवन में अन्य आश्रय ग्रहण करना आवश्यक हो गया है।"

व्रज बाबू ने फीकी हँसी हँसकर कहा, "रेणुका तुम्हारी नई-माँ की लड़की है। दुनिया में एकमात्र मेरे और भगवान् के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता कि उसकी माँ की जिद के ही कारण। यदि उसकी जिद चढ़ जाती थी, तो उसे तोड़ने की शक्ति किसी दूसरे आदमी में तो थी ही नहीं। रेणुका उसी माँ की बेटी है।"

राखाल ने कहा, "लेकिन मुझे जान पड़ता है चाचाजी, रेणुका शायद नई-माँ के समान अधिक हठी नहीं है।"

"तुम उसको पहचानते नहीं हो राजू। लड़की को अपनी माँ का स्वभाव सोलह आने मिला है। जिस माँ को होश होने के पहले ही खो चुकी है, उसकी प्रकृति उसके अन्तःकरण में किस प्रकार हो गई है, मैं सोचकर भी समझ नहीं पाता। नई-बहू की तरह तेजस्विनी, सत् स्वभाव की और सच्चरित्रा स्त्री दुनिया में बहुत कम ही होती हैं। इसको मैं जितनी अच्छी प्रकार जानता हूँ, उतना और कोई नहीं जानता। वह नई-बहू ·।" व्रज बाबू का गला रुँध गया। कण्ठ को साफ करके उन्होंने कहा, "मेरे दुर्भाग्य के अलावा यह और कुछ भी नहीं है राजू। उसको मैंने कुछ भी दोष नहीं दिया।"

व्रज बाबू इन सब आलोचनाओं से उत्तेजित होते जा रहे हैं, यह देखकर राखाल पंखा झलते-झलते बोला, "उन सब बातों को अभी रहने दें चाचाजी। आप पहले अच्छे हो जाइए, उसके बाद होगा।"

जीवन में व्रज बाबू ने कभी सविता के सम्बन्ध में किसी से भी आलोचना नहीं की थी। आज उसके सन्तान-समान राजू के साथ उस

विषय को लेकर उनको आलोचना करते देखकर राखाल अत्यन्त आश्चर्य में पड़ गया।

रोग मनुष्य को इतना दुर्वल बना देता है कि तब वह अपनी भावनाओं, विचारों पर संयम नहीं रख पाता। शायद ब्रज बाबू में अपने मन की छिपी हुई गम्भीर चिन्ताओं के भार-वहन की शक्ति नहीं रह गई थी।

शारदा ने कमरे में आकर ब्रज बाबू को प्रणाम किया। चौंककर राखाल की ओर देखकर ब्रज बाबू ने कहा, "तुम्हारी नई-माँ भी आ गई हैं क्या राजू ?"

राखाल ने कहा, "ना, वे तो कलकत्ते में नहीं हैं। बर्दवान तारक के यहाँ गई हैं। शारदा आपकी बीमारी की खबर सुनकर आने के लिए घबरा उठी। बोली, 'चाचाजी मुझे जानते हैं, मेरी सेवा ग्रहण करने में आपत्ति न करेंगे।' "

ब्रज बाबू ने थकावट के साथ तकिए पर माथा रखकर कहा, "किसी की भी सेवा लेने की आवश्यकता न पड़ेगी राजू, मेरी रेणुका बेटी जब तक है। यह बेटी आ गई है तो अच्छा ही किया है, मेरी रेणुका की वह कुछ देख-भाल कर सकेगी। उसकी देखभाल करने को कोई नहीं है। गृहस्थी का काम, ठाकुरजी की सेवा, उसके ऊपर रोगी की सेवा करने से दिन-रात एक पल भी उसे अवकाश नहीं है।"

राखाल ने कहा, "क्या नई-माँ को आपकी बीमारी की सूचना दे दूं चाचाजी ?"

ब्रज बाबू व्यथित स्वर में बोल उठे, "ना-ना, तुम लोग क्या पागल हो गए हो ? ऐसा काम मत करना। मेरी बीमारी की सूचना यदि वे सुन लेंगी, तो उसके बाद उनको किसी भी दशा में किसी बात से कहीं भी रोका न जा सकेगा। उसी पल वे यहाँ चली आएँगी।"

राखाल चुप रहा।

सिर में रक्तचाप अत्यधिक बढ़ जाने के कारण ब्रज बाबू के बाएँ अंग में पक्षाघात के लक्षण सुस्पष्ट हो उठे हैं। प्राणहानि की आशंका हो गई है।

गाँव के डॉक्टर कह रहे हैं, ऐसे संकटापन्न रोगी को अपने हाथ में रखने का साहस उनको नहीं है। आवश्यक दवाएँ और इंजेक्शन आदि

देहात में मिलते नहीं हैं। यहाँ तक कि रक्त का चाप नापने के यन्त्र का भी यहाँ अभाव है। कलकत्ते ले जाकर चिकित्सा कराने से उपचार हो सकता है।

अभी इस अवस्था में रोगी को हिलाना-डुलाना सम्भव नहीं है। दिल अत्यन्त दुर्बल है, नाड़ी की गति बहुत तेज है। इसलिए कलकत्ते से कोई चिकित्सक बुला लाना सम्भव होने से उसका जल्द प्रबन्ध करना उचित है।

राखाल परेशानी में पड़ गया।

कलकत्ते के बड़े-बड़े डॉक्टरों में से बहुतों के नाम वह जानता है, लेकिन किसी के साथ भी भेंट, बातचीत का परिचय उसका नहीं है। इसके अलावा ऐसे रोगी के लिए किसको लाना सही होगा, यह भी एक समस्या है। इस पर पैसे का भी अत्यन्त अभाव है।

उसकी अपनी जो कुछ साधारण पूंजी थी, वह रेणुका की बीमारी के समय खर्च हो गई थी। ब्रज बाबू की चिकित्सा के लिए अब पर्याप्त धन की आवश्यकता है। लेकिन उन लोगों के पास कुछ भी सहारा नहीं है। इस अवस्था में नई-माँ को सूचना देने के अतिरिक्त दूसरा उपाय क्या है? यह सूचना पाकर नई-माँ बिना आए नहीं रह सकतीं यह निश्चित है। लेकिन गाँव के इस पुराने घर में उनका पदार्पण करना किसी तरह से भी वांछनीय नहीं है। इसका परिणाम रोगी के लिए भी भयंकर हो सकता है।

राखाल को कोई कूल-किनारा नहीं मिला। फिर भी शीघ्र ही कुछ प्रबन्ध कर देना उसने आवश्यक समझा।

इसी समय राखाल के पास विमल बाबू का पत्र पहुँचा।

ब्रज बाबू के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूछताछ करके अन्त में उन्होंने लिखा है, "मेरा बड़ा अनुरोध है, ब्रज बाबू के लिए उपयुक्त चिकित्सक, नर्स, औषधि, पथ्य और रुपया-पैसा जो कुछ भी आवश्यक हो, तुरन्त तार के द्वारा मुझे सूचित करो। मैं तुरन्त प्रबन्ध कर दूंगा।"

राखाल पत्र को हाथ में लेकर उदास चित्त से बैठा था।

शारदा ने आकर पूछा, "यह किसका पत्र है देवता?"

"विमल बाबू का।"

शारदा ने कहा, "कलकत्ते से डॉक्टर बुलाने के लिए आप इतना सोच

रहे हैं देवता—फिर भी विमल बाबू को जरा लिख देने से ही वे इसी पल अच्छा डॉक्टर भेज सकते थे।"

राखाल ने कहा, "हूँ।"

शारदा ने कहा, "मैं समझ गई आप शंका में पड़ गए हैं। उनकी सहायता लेने में आपको हिचक हो रही है।"

राखाल ने कहा, "ना।"

शारदा ने भी कुछ देर चुप होकर फिर धीरे-धीरे कहा, "चाचाजी की अवस्था जैसी हो गई है, कब क्या हो जाए बताना कठिन है। जो करना हो शीघ्र ही ठीक कर डालिए। नहीं तो दूसरी कोई आवश्यकता बताकर नई-माँ को रुपये के लिए लिख दीजिए।"

राखाल तो भी चुप रहा।

शारदा ने कहा, "यदि आप कुछ सोच न करें तो मैं एक बात की याद दिला दूँ।"

राखाल सतृष्ण दृष्टि से देखता रहा।

"तुच्छ मान-अपमान, उचित-अनुचित का वजन-हिसाब करके चलने की अपेक्षा अब चाचाजी की प्राण-रक्षा की चेष्टा करना क्या सबसे अधिक आवश्यक नहीं? आप अपने कर्तव्य की तरफ से जरा सोचकर देखने की चेष्टा तो कीजिए।"

"क्या करने को कहती हो तुम?"

"इस अवस्था में विमल बाबू की अथवा नई-माँ की सहायता लेने में रेणुका लज्जा अनुभव करे तो उसके लिए अस्वाभाविक नहीं है, लेकिन आपको तो वह बाधा नहीं है।"

"तुम ठीक ही कह रही हो शारदा। चाचाजी की इस जीवन-संकट अवस्था में उचित-अनुचित का प्रश्न कम-से-कम मेरी तरफ से लाना कभी उचित नहीं है। तो इस दशा में नई-माँ और विमल बाबू दोनों को ही यहाँ की अवस्था बताकर दो खत लिख दूँ।"

"लेकिन माँ को बताने की तो चाचाजी ने उस दिन विशेष रूप से मनाही कर दी थी।"

"यह तो ठीक ही है। तो इस दशा में सिर्फ विमल बाबू को ही···

अच्छा--विमल बाबू तो चाचाजी के परिचित हैं। चाचाजी को बताकर ही व्यवस्था क्यों न की जाय ?"

"यह बुरी युक्ति नहीं है। लेकिन रोगी को इस अवस्था में विचलित करना क्या ठीक होगा ?"

राखाल ने अत्यन्त दुःखी भाव से कहा, "तो मैं क्या करूँ शारदा ? उन लोगों को कुछ भी न बताकर ही विमल बाबू को सूचना दे दूँ ?"

कुछ सोचकर शारदा ने कहा, "वही कीजिए देवता !"

रेणुका गोविन्दजी का भोग तैयार कर रही थी।

शारदा दूर बैठकर तरकारी काटते-काटते गप्प हाँक रही थी।

रेणुका काम करते-करते 'हाँ', 'न', 'उसके बाद' इस तरह संक्षिप्त दो-चार बातें कह रही थी।

रेणुका रहती है प्रायः निर्वाक् श्रोता, शारदा ग्रहण करती है वक्ता का आसन। कितने गप्पें करती उनका ठिकाना नहीं है। शायद अपनी अनजान अवस्था में ही शारदा सबसे अधिक गप्प करती है अपने देवता के विषय में। नई-माँ के विषय में वह बहुत-कुछ कहती है। किराएदारों की बातें तो हैं ही। वह कहती कुछ भी नहीं है। रमण बाबू के सम्बन्ध में रेणुका कभी कोई प्रश्न नहीं करती, बिन्दु मात्र कौतूहल प्रकट नहीं करती किसी विषय में। बड़े-बड़े शान्त दोनों नेत्र खोलकर चुपचाप बातें सुनती जाती है। निपुण दोनों हाथ लगे रहते हैं एक-न-एक आवश्यक काम में। बहुत बातें किसी दिन भी उसके मुख से नहीं सुनाई देतीं।

शारदा तरकारी बनाते-बनाते कह रही थी, "विमल बाबू के पास आज देवता तार भेजने गए हैं, कलकत्ते से अच्छा डॉक्टर लेकर यहाँ आने के लिए। शायद कल के बीच ही वे डॉक्टर को साथ लेकर आ जाएँगे।"

रेणुका की दृष्टि में आश्चर्य प्रकट होने पर भी उसके मुँह से कोई प्रश्न नहीं निकला।

शारदा कहने लगी, "विमल बाबू के आ जाने पर बहुत कुछ ढाढ़स मिलेगा। सही चिकित्सा; दवा, पथ्य सबका ही प्रबन्ध होगा। चाचाजी इस बार शीघ्र स्वस्थ हो जाएँगे।"

रेणुका ने इस बार जिज्ञासु दृष्टि से शारदा की ओर देखा।

शारदा तब मन-ही-मन बकती चली जा रही थी, "ऐसा मनुष्य दुनिया में मैंने तो नहीं देखा रेणुका। जैसे हैं सदाशय, वैसे ही हैं सज्जन। सुन चुकी हूँ, वे हैं लखपति। लाखों रुपये लगे हैं देश-देशान्तरों के व्यवसाय में, लेकिन ऐसा निरहंकार, सहज विनयी मनुष्य कहीं इसके पहले भी नहीं देखा। सच ही जिनको शिव-तुल्य कहते हैं, ऐसे न होने से विधाता इतना ऐश्वर्य देंगे ही क्यों? कहावत है—मन के गुण से धन होता है। विमल बाबू का धन जैसा है, हृदय भी वैसा ही है।"

रेणुका चुपचाप तब गोविन्दजी का भोग बनाना पूरा करके पिता का पथ्य बना रही थी। मौन रहने पर भी ध्यान के साथ ही शारदा की बातें सुन रही थी।

शारदा की बातों में मानो उच्छ्वास आ गया। कहने लगी, "विमल बाबू ने उस दिन हम सब लोगों को बचा लिया था, रास्ते में खड़े रहने की लज्जा से। उस दुर्दिन की बात याद आने से आज भी मेरी आँखों में अँधेरा छा जाता है। जिनको घर-भर के लोगों का आश्रय कहो, बल-भरोसा ही कहो, जो सब-कुछ हैं, वही माँ हमारी जब निराश्रय होने लगीं, तब हम लोगों को भय, चिन्ता और उत्कण्ठा घनीभूत हो आई थी, उसे केवल स्वयं भगवान् जानते हैं। विशेष रूप से मेरे तो पैरों के बीच पृथ्वी खिसक जाने की घड़ी आ गई थी। माँ के अलावा तब मेरे लिए इस पृथ्वी पर अन्य आश्रय नहीं था।"

रेणुका ने वैसे ही आश्चर्यपूर्ण नयनों से शारदा की तरफ देखकर प्रश्न किया, "क्यों?"

शारदा ने कहा, "वह भी बताती हूँ बहिन। तुम क्या उन सब बातों को भूल गई हो? मेरे बुरे दिनों में माँ ने मुझे अपने स्नेह का आश्रय दिया था। इसीलिए तो आज खड़ी हूँ।"

रेणुका ने आत्मविस्मृत भाव से कहा, "उसके पश्चात्?"

"उसके पश्चात् की कहानी भी तो तुम मेरे मुँह से सुन चुकी हो बहिन। मुझे पुनर्जन्म प्रदान किया माँ ने और इस देवता ने। बीच-बीच में अब सोचती हूँ रेणुका, भाग्य से उस दिन मैं मर नहीं गई।"

रेणुका ने हँसकर कहा, "क्यों शारदा दीदी, उस दिन मर जाने से ही

आज तुम्हारी कौन-सी हानि होती दीदी !"

"बहुत हानि होती । वह बहुत बड़ी हानि है। तुम नासमझ लड़की समझ न सकोगी बहिन !"

रेणुका चुप रहकर अपना काम करने लगी ।

शारदा का तरकारी काटना समाप्त होने पर बाकी तरकारियों को डलिया में रखते हुए वह बोली, "जगत् में वास्तविक वस्तु पाने के लिए उसकी कीमत बहुत ही देनी पड़ती है । दुर्लभ का मूल्य बहुत होता है। हमारे जीवन में भी यह नीति मानकर चलना पड़ता है । कृत्रिम और मिलावट की समस्या मनुष्यों में इतनी अधिक बढ़ गई है कि अब कौन है असली, कौन है नकली, पहचानना कठिन है । जीवन में जिसको जितना बड़ा संचय मिला है बहिन, उसको उतना अधिक मूल्य भी गम्भीर दुःख के बीच में देना पड़ता है । कम-से-कम यह मैंने ठीक समझ लिया है कि दुःख की कसौटी पर पड़े बिना जीवन की परीक्षा नहीं होती ।"

रेणुका कभी भी कुछ विशेष जानने के लिए शारदा से प्रश्न नहीं करती थी। आज वह एकाएक पूछ बैठी, "दीदी, अपने जीवन में तो तुम बहुत दुःख पा चुकी हो, उसमें क्या तुम वास्तविक सामग्री संचय कर पाई हो ?"

शारदा चौंक पड़ी ।

रेणुका जो ऐसा प्रश्न कर सकती है, यह सम्भावना उसको एक बार भी नहीं थी । कुछ घबराकर बोली, "कैसे बताऊँ बहिन ?"

"क्यों ? जैसे इन सब बातों को तुमने बता दिया ।"

शारदा सहसा अनावश्यक गम्भीर होकर बोली, "संचय कुछ भी कर सकी हूँ या नहीं—नहीं जानती, लेकिन सहारा काफी पा चुकी हूँ और वह जो वास्तविक है, इसमें मुझे अब सन्देह नहीं है ।"

रेणुका ने ममता से विचलित होकर कहा, "शारदा दीदी, जो पति तुमको अकेली-असहाय छोड़कर भाग गए, उनकी अब भी तुम इतनी भक्ति करती हो ?"

शारदा ने उत्तर नहीं दिया । उसके मुख पर व्यथा का चिह्न स्पष्ट हो उठा । अनाज की डलिया लेकर दूसरे कमरे में रखने के लिए वह चली गई ।

राखाल ने आवाज दी, "रेणुका…!"

"हाँ दादा !"

"चाचाजी की रसोई क्या बन गई बहिन ?"

"बन गई। अब जाकर बाबूजी को स्नान करा दूंगी।"

"चाचाजी सो रहे हैं। अगर तुम्हारी रसोई का काम हो चुका हो तो जरा उस कमरे में आ जाना, दो-चार बातें करनी हैं।"

"अभी आती हूँ। चावल चढ़ाकर आ रही हूँ, तुम चलो।"

थोड़ी देर बाद रेणुका जब हाथ-पैर धोकर राखाल के पास आ गई, वह कमरे के फर्श पर बैठा हुआ समाचार-पत्र पढ़ रहा था। मुँह ऊपर उठाकर उसने रेणुका से कहा, "बैठो।"

रेणुका बैठ गई। बोली, "डॉक्टर साहब ने आज तुमसे क्या कहा है दादा ?"

"अच्छा ही कह गए हैं।"

"फिर तुम क्यों कलकत्ता तार दे आए बड़ा डॉक्टर लाने के लिए ?"

"तू पगली है। शुरू से ही सुन रही है, यहाँ के डॉक्टर साहब कह रहे हैं, एक अच्छा डॉक्टर लाकर दिखाने की आवश्यकता है, उस रोग की चिकित्सा देहात के डॉक्टर का काम नहीं है। मलेरिया रहता, तिल्ली रहती या अंतरिया ज्वर रहता, तो ये लोग चतुर्भुज बनकर कितनी चिकित्सा करते। किसी को बुलाने नहीं देते, लेकिन उस बात को छोड़ो। तुझे एक आवश्यक परामर्श के लिए बुलाया है।"

रेणुका चुपचाप राखाल की ओर मुँह उठाकर देखती रही।

राखाल ने अखबार को पढ़ते-पढ़ते कहा, "कह रहा था कि चाचाजी के कुछ अच्छा हो जाते ही यहाँ से डेरा उठाना होगा। कलकत्ते जाकर चाचाजी के पूर्णत: अच्छा न हो जाने तक पहले की तरह एक छोटा-सा घर किराये पर लेकर रहेंगे। लेकिन उसके बाद···?"

राखाल इतना कहते-कहते चुप हो गया। उसका स्वर दुविधा से जकड़ गया।

रेणुका पहले की तरह ही जिज्ञासु दृष्टि से देखती रही।

राखाल ने व्यथित स्वर से कहा, "उसके बाद क्या प्रबन्ध हो सकता है वही बात सोच रहा हूँ। यहाँ फिर वापस आने से काम तो चलेगा नहीं !"

रेणुका ने शान्त स्वर से कहा, "क्यों ?"

राखाल ने विस्मित होकर कहा, "इतने दिन यहाँ रहकर यह भी तू समझ नहीं सकती रेणुका, देखती रही है जाति वालों का आचार-व्यवहार ! चाचाजी इतने बीमार हैं, एक बार झाँककर भी कोई सुध नहीं लेता।"

कुछ देर तक मौन रहकर रेणुका ने कहा, "लेकिन तुम तो जानते हो राजू दा, कलकत्ते में बारहों महीना रहना हम लोगों की इस अवस्था में चल न सकेगा। यहाँ घर का किराया नहीं लगता, मजदूरिन का वेतन केवल एक रुपया महीना है। साग-तरकारी खरीदकर खाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। कितना थोड़ा खर्च है !"

राखाल ने कहा, "लेकिन चाचाजी के शरीर की जो अवस्था है, उनके ऊपर तो निर्भर करके नहीं चला जा सकता बहिन ! थोड़ा सोचकर देख लो, उनके न रहने की दशा में तुझे आश्रय कहाँ है ? यहाँ के जाति भाइयों ने तुम लोगों से सम्पर्क ही छोड़ दिया है। सौतेली माँ पहले ही पृथक् होकर अपने मायके चली गई हैं। कलकत्ता जाकर जो कुछ दिन ही रहना पड़े, उसके बीच ही तेरी शादी की व्यवस्था हो जाने से तब चाचाजी निश्चिन्त होकर मेरे पास रह सकेंगे। उनकी जो सामान्य आय है, मेरे साथ इकट्ठे रहने से अच्छी प्रकार काम चल जाएगा। मेरे रहते किसी की सहायता न लेनी पड़ेगी।"

रेणुका मौन होकर सुन रही थी। उसकी चुप्पी से उत्साहित होकर राखाल कहने लगा, "मैंने बहुत सोच-विचार करके देख लिया है बहिन, इसके अलावा कोई दूसरी अच्छी व्यवस्था कुछ हो नहीं सकती। बेटी के भविष्य की दुश्चिन्ता ने ही चाचाजी को सबसे अधिक घबराहट में डाल दिया था। तुमको किसी सत्पात्र के साथ ब्याह देने से उनके मन की दुश्चिन्ता मिट जाएगी। आशा है, तब वे सहज ही स्वस्थ हो जाएँगे।"'

रेणुका मृदु स्वर से बोली, "बाबा को छोड़कर मैं कहीं भी नहीं जा सकती राजू दा।"

"लेकिन गए बिना भी तो कोई उपाय नहीं है बहिन। अगर तुम लड़का होतीं, तो त्यागकर जाने की बात ही नहीं उठती। लेकिन लड़कियों को तो

ब्याह के अलावा और कोई उपाय नहीं है।"

"कम उम्र में विधवा हो जाने वाली लड़कियां भी तो सारा जीवन अपने पिता के ही घर में रहती हैं, मैंने देखा है।"

राखाल ने सूखी हँसी के साथ उत्तर दिया, "रहती हैं अवश्य, लेकिन यदि उनके पिता के कुल में रहने का आश्रय न रहे, तब वे ससुराल में जाकर आश्रय लेती हैं, वह भी तुमने देखा होगा। पति के न रहने पर उनकी ससुराल तो रहती है।"

रेणुका ने मुंह झुकाए कुछ देर मौन रहकर धीरे-धीरे कहा, "राजू दा, मैंने बाबा को अपने मुंह से बता दिया है कि ब्याह में मेरी जरा भी रुचि नहीं है, मैं ब्याह न करूँगी।"

राखाल हँसने लगा। बोला, "तुझे बुद्धिमती समझता था। अब देखता हूं कि तू बिल्कुल ही पागल है रेणुका ! अरे, उस दिन तू वह बात न कहती तो क्या चाचाजी बचे रह सकते थे? अचानक व्यवसाय फेल होने से सब-कुछ चौपट हो गया। रहने का घर तक नीलाम हो गया। बिल्कुल ही रास्ते में खड़े हो गए। उसी समय तेरा ब्याह रुक जाने के बहाने से हेमन्त मामा अपनी बहिन और भांजी का पावना कौड़ी-कौड़ी वसूल करके खिसक गए। पीछे कहीं चाचाजी के कर्ज के भार से उनको भीख माँगने की घड़ी न आ जाय। दुनिया अत्यन्त स्वार्थी है।"

राखाल ने रुककर एक लम्बी साँस छोड़ दी, उसके बाद फिर वह कहने लगा, "पति के इतने बुरे समय में पत्नी ने अपने भाई के साथ मिलकर अपनी आर्थिक भली-बुरी दशा पर ही केवल विचार किया, पति की ओर उसने देखा तक नहीं। यदि तू इस तरह ढाढ़स देकर न कह देती रेणुका कि तुमको अकेले छोड़कर मैं कभी कहीं भी न जाऊँगी, तो उस दशा में चाचाजी दुनिया में किसके सहारे खड़े होते?"

रेणुका ने मृदु स्वर से कहा, "लेकिन राजू दा, मैंने तो बाबा को सांत्वना या साहस देने के लिए वह बात कही नहीं। मैंने तो जो कहा, वह सच कहा।"

राखाल रेणुका की बातें कहने के ढंग से मन-ही-मन विचलित हुआ, पर मुंह पर हँसी लाकर बोला, "सच्ची बात नहीं तो तू क्या झूठी बात कह

रही है ? लेकिन क्या जानती है बहिन, दुनिया में अधिकांश सत्य सामयिक सत्य होते हैं। चिरकाल तक सत्य कहलाने वाली यदि कोई वस्तु है तो वह है बाहर की वस्तु। अगर तुम उस दिन की मुँह से निकली बात रखने के लिए कटिबद्ध हो उठो, तो उसके फलस्वरूप शायद तुम लोगों के जीवन में कल्याण ही दिखाई देगा। जो कल्याण को ढो लाता है, उसे ही कहते हैं सत्य। जो अशुभकर है, वह सत्य नहीं है। उस दिन तुम्हारे मुँह की जिस बात ने चाचाजी को सबसे अधिक सांत्वना और शान्ति प्रदान की थी—आज उसी बात को रखने के लिए तुम यदि जिद पकड़कर बैठी रहो, तो तुम जान रखो वही अवांछनीय काम ही चाचाजी को सबसे बड़ा दुःख का कारण हो जाएगा। यहाँ तक कि वह उनकी मृत्यु का कारण तक हो सकता है। एक बात को मत भूलना रेणुका, जो कठिन विष-पान करके ही फिर स्वस्थ मनुष्य आत्महत्या करता है, स्थान, काल और अवस्था के अनुसार एक ही व्यवस्था किसी समय जैसी मंगलकर होती है, फिर किसी दूसरे समय वैसी ही अमंगलकर भी हो जाती है। तुम सयानी हो गई हो, सब तरफ सोचकर देखो। विशेष कारण से एक बार एक बात कह चुकी हो इसलिए जीवन के सब मंगल-अमंगल की चिन्ता छोड़कर उसी बात को पकड़े रहकर अहित कर लेना कोई बुद्धिमानी नहीं।"

रेणुका नत-नयन किये एकदम मौन बैठी थी।

चौबीस

प्रख्यात डॉक्टर ब्रज बाबू की विशेष रूप से स्वास्थ्य-परीक्षा करने के लिए कलकत्ता से आए। वे जाँच करने के बाद, चिकित्सा की अच्छी व्यवस्था करके लौट गए।

विमल बाबू और भी कई दिन उनके पास ठहरेंगे।

रक्तचाप कुछ सामान्य होते ही डॉक्टर के निर्देशानुसार ब्रज बाबू को कलकत्ता ले जाया जाएगा।

मेडिकल कॉलिज के आसपास किसी स्थान में प्रकाशयुक्त हवादार

एक छोटा-सा मकान किराये पर लेने के लिए विमल बाबू ने कलकत्ता पत्र लिख दिया है। उनके कर्मचारी लोग सब प्रबन्ध कर रखेंगे।

कलकत्ते के डॉक्टरों के आने और रोगी की व्यवस्था कर जाने के बाद से ब्रज बाबू अपने को स्वस्थ अनुभव कर रहे हैं। सबका मन बहुत प्रसन्न है।

तीसरा पहर !

उत्तर की ओर के बरामदे में एक आरामकुर्सी पर ब्रज बाबू और विमल बाबू लेटे हुए थे। जगत्-व्यापी ट्रेड डिप्रेशन व व्यवस्था की दुरवस्था के विषय में दोनों में बातचीत चल रही थी।

ब्रज बाबू ने इस आलोचना के प्रसंग में कहा, "आपने जब पहले-पहल मेरे पास आकर मेरा व्यवसाय खरीद लेने का प्रस्ताव किया था तो मेरे मन में विचार हुआ था, साधारण बड़े आदमियों के ही समान व्यवसाय के सम्बन्ध में आपको केवल शौक से इतना उत्साह है, सूक्ष्म तेज नजर या अच्छे-बुरे का ज्ञान अर्थात् जिसको व्यावसायिक बुद्धि कहते हैं, वह आपमें बिलकुल नहीं है। उसके बाद जब आपके अन्यान्य सब प्रचुर लाभदायक व्यवसायों का विवरण मैंने सुना तब आश्चर्य में पड़े बिना रह न सका। आश्चर्य में पड़ गया था; इतने बड़े व्यवसायी मनुष्य होकर भी आपने क्या देखकर मेरे डूबते हुए कारोबार को इतने चढ़े हुए दाम पर खरीदना स्वीकार किया था।"

विमल बाबू हँस पड़े।

ब्रज बाबू ने फिर कहा, "अच्छा विमल बाबू, सच-सच बताइए तो, आप क्या समझ नहीं सकते थे कि उस व्यवसाय को उस अवस्था में खरीद लेना तो दूर रहा, कह-सुनकर अनुनय-विनय से हाथ पर उठा रखने से भी कोई लेना नहीं चाहता, उस पर कर्ज का भार देखकर। उस अवस्था में भार लेने का अर्थ है इच्छा करके रुपयों को नदी में फेंक देना।"

विमल बाबू ने पहले के ही समान इस बार भी कोई उत्तर नहीं दिया।

ब्रज बाबू ने कहा, "अजीब आदमी हैं आप !"

इस बार विमल बाबू बोले, "मुझसे भी बहुत अधिक अजीब आदमी हैं आप।"

ब्रज बाबू ने कहा, "कैसे, जरा बताइए तो ?"

विमल बाबू ने कहा, "आप जान-बूझकर भी अविश्वासी और बुद्धि-रहित आत्मीयों के हाथ में अपना भारी व्यवसाय सौंपकर निश्चिन्त थे।"

ब्रज बाबू ने मलिन हँसी हँसकर कहा, "दुनिया में मनुष्य का विश्वास करना क्या इतना बड़ा अपराध है विमल बाबू ? विश्वास मैं किसी भी कारण से नहीं खो सकता।"

"बार-बार हानि उठाकर और दुःख भोगकर भी क्या विश्वास बनाए रखना सम्भव है ?"

"यह तो नहीं जानता, किन्तु विश्वास रखना अच्छा है। अविश्वासी के लिए कहीं भी आश्रय नहीं है, कोई भी सांत्वना नहीं है।"

"अपने जीवन की अभिज्ञता से क्या आपने यही सत्य जाना है ?"

"हाँ। विश्वास करके मैंने ठगाया नहीं। लोगों ने मुझे बार-बार मूर्ख कहा है। किन्तु मैं जानता हूँ, मैंने गलती नहीं की, उन्होंने भूल की है।"

विमल बाबू तीक्ष्ण दृष्टि से ब्रज बाबू का मुँह ताकते रहे।

ब्रज बाबू प्रकाश में दृष्टि टिकाए हुए कहने लगे, "मैं अपनी सब कहानी एक दिन आपको सुनाऊँगा। आपने औरों के मुँह से कहाँ तक और क्या सुना है, मैं नहीं जानता। लेकिन मेरे मुँह से उस दिन जितना कुछ सुना है, वह समस्त नहीं है। अपनी कहानी कहने के पहले आपसे कुछ पूछना है।"

"कहिए, क्या पूछना चाहते हैं ?"

"आपकी जैसी आर्थिक अवस्था है उससे आपको लक्ष्मी का वर-पुत्र कहा जा सकता है। आप सबल, स्वास्थ्यसम्पन्न पुरुष हैं। आपको किसी बात की कमी नहीं है। इतनी अवस्था तक आपने विवाह नहीं किया, इसका कारण क्या मैं जान सकता हूँ ? यदि कोई बाधा न हो तो अवश्य ही बताइए।"

"बताने में कुछ भी एतराज नहीं है। कागण भी सीधा-सादा है। पहले तो समय और सुयोग का अभाव, दूसरे विवाह की इच्छा न होना।"

"पहला कारण शायद एक दिन सत्य था, किन्तु आज तो वह बात नहीं है। तब व्यवसाय की उन्नति की चिन्ता और चेष्टा में आप देश-देशान्तर में घूमते-फिरते थे, गृहस्थी खड़ी करने की बात सोचने का तब

अवकाश नहीं था। किन्तु फिर उसके बाद…"

"अभी कहा तो, रुचि नहीं हुई।"

"रुचि-अरुचि की बात उठने पर फिर कोई प्रश्न ही नहीं किया जा सकता विमल बावू, तो भी मेरी और एक जिज्ञासा है, उसका उत्तर दीजिए। क्या अब गृहस्थ वनने में कोई वाधा है?"

विमल बावू को ब्रज बावू के प्रश्न से जितना विस्मय हुआ, उससे भी अधिक कुतूहल। दबी हुई हँसी से उनका मुख और आँखें चमक उठीं।

उन्होंने कहा, "बाधा तो कभी नहीं थी ब्रज बावू, आज भी नहीं है। जान पड़ता है, शायद मेरे विवाह का रास्ता इतना अधिक बाधारहित होने के कारण ही विधाता उसकी राह रोके बैठे रहे। वधू का शुभागमन नहीं हुआ।"

ब्रज बावू ने कहा, "आपकी वात कुछ ठीक समझ में नहीं आई।"

"समझिए। विवाह के पात्र की दृष्टि से मैं सबसे योग्य हूँ, यह बात सभी लोगों ने कही है। कम-से-कम घटक लोग तो कहते ही हैं। तो भी सारी जवानी बीत गई, पर व्याह का फूल नहीं खिला। ऐसी दशा में विधाता की बाधा के सिवा और क्या कहा जा सकता है—आप ही कहिए?"

"किन्तु यह बात भी तो नहीं है कि इतने दिन नहीं खिला तो अब किसी दिन नहीं खिलेगा?"

"समय निकल गया दादा। वेमौसम कहीं फूल खिलता है! जोर-जबर्दस्ती करने से उसे केवल विकृत बना दिया जाता है—ब्याह बहुत-कुछ मौसमी फूल की तरह है। वह ठीक अपनी ऋतु में आप ही खिलता है। ऋतु चले जाने पर फिर नहीं खिलता, तब वह दुर्लभ होता है।"

कुछ सोचकर ब्रज बावू ने हँसते हुए कहा, "अच्छा-होशियार माली यदि कोशिश करता तो वह वेमौसम भी फूल खिला सकता है। खैर, इसे छोड़ो, मैं यह नहीं मान सकता कि व्याह एक मौसमी फूल है। हमारे देश में व्याह के फूल खिलना एक मुहावरा है, लेकिन किसी भी देश में शायद ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि वह फूल खेती के नियम को मानकर चलता है।"

विमल वावू वोले, "ना-ना, यह नहीं, मैं कहना चाहता हूँ कि जीवन में विवाह की एक निर्दिष्ट घड़ी होती है। वह घड़ी निकल जाने पर फिर

ब्याह नहीं होता। जो लोग उसके बाद भी ब्याह करते हैं, वह विवाह सही ब्याह नहीं होता।"

"तो फिर वह क्या होता है?"

"वह केवल स्त्री और पुरुष का एकत्र रहना भर है—कहीं वंश चलाने के प्रयोजन से, कहीं संसार-यात्रा निर्वाह के अथवा सुख-सुविधा और आराम के प्रयोजन से और कहीं केवल हृदय और मन की विलासिता को पूरा करने के लिए।"

ब्रज बाबू ने आश्चर्य से प्रश्न किया, "इन सब चीजों को बाद देकर विवाह को और क्या वस्तु आप कहना चाहते हैं?"

"यह समझाकर कहना कुछ कठिन है। संसार में देखा जाता है कि समाज के द्वारा अनुमोदित पुरुष और नारी के मिलन को विवाह कहा जाता है। लेकिन मैं ऐसा नहीं मानता। मनुष्य के जीवन में एक आनन्द का समय आता है कि जिस परम क्षण में नर-नारी का वांछित मिलन देह और मन में अपूर्व रस से सरस और रंग से रंगीन हो उठता है। दो हृदयों, दो देहों और मनों की वह जो रस-मधुर रंगीनी है, उसी को मैं विवाह कहता हूँ। सूर्यास्त के बाद भी जब संध्या नहीं होती, बल्कि दिन का अन्त हो जाता है—वह जो सुन्दर सन्धि-लग्न होता है; उसकी आयु बहुत थोड़ी होती है। उसे हम गोधूलिवेला कहते हैं। उसी रमणीय स्वल्प समय के भीतर पश्चिम के आकाश में परम सुन्दर प्रकाश की लीला और अक्षय रंग का वैचित्र्य जाग उठता है, दिन-रात के लम्बे समय के भीतर फिर किसी तरह, किसी घड़ी में नहीं पाया जाता। वह उसी विशेष क्षण की सामग्री है। मनुष्य के जीवन में विवाह भी वही चीज है।"

ब्रज बाबू ने मुस्कराकर कहा, "समझ गया। किन्तु आपने जो कहा विमल बाबू, वह तो शायद आप लोगों की कल्पना के काव्य के पन्नों में लिखा है, वास्तव जीवन के हिसाब के खाते में नहीं।"

"इसीलिए तो हम लोगों के विवाहित जीवन के पन्नों में इतना गैर मेल जमा हो उठता है कि किसी तरह हिसाब नहीं मिलता।"

"अर्थात् आपने कहा है कि विवाह का मामला काव्य के खाते में छन्द के भीतर है, हिसाब-खाते के अंकों के भीतर नहीं है?"

विमल बाबू ने इस बात का जवाब टालकर कहा, "आप ही बताइन न दादा ! विवाह की अभिज्ञता मेरे जीवन में तो एक बार भी नहीं हुई, किन्तु आपको तो एक से अधिक वार हो चुकी है। आप इस विषय में मुझसे अधिक अभिज्ञ हैं।"

"मेरी बात यदि मानिए तो कहूँ।"

"कहिए।"

"व्याह के फूल खिलने का दिन आज भी आपका अटूट है।"

"इसके माने ? आप क्या कहना चाहते हैं कि इस अवस्था में…?"

विमल बाबू का वाक्य समाप्त होने के पहले ही व्रज बाबू हँस उठे। बोले, "आपने सचमुच हँस दिया विमल बाबू !"

"क्यों, बताइए तो ?"

"आपकी ऐसी असम्भव धारणा कैसे हुई कि अब आपकी व्याह की अवस्था नहीं है ? तब हम लोग तो…।"

"किन्तु अधिक अवस्था में आपकी विवाह की इच्छा एक बार भी सुख की नहीं हुई—यह भी सत्य है।"

"आप क्या भाग्य को मानते हैं ?"

"कुछ-कुछ। हाँ, धर्मान्ध बिलकुल नहीं हूँ।"

"क्या यह स्वीकार करते हैं कि जन्म, मृत्यु और विवाह, ये तीनों बातें सम्पूर्ण भाग्य पर निर्भर हैं ?"

"ना। मनुष्य इस युग में विज्ञान की सहायता से जन्म और मृत्यु को सम्पूर्ण न होने पर भी कुछ-कुछ अपनी इच्छा के अधीन कर पाया है, यद्यपि जन्म और मृत्यु का मामला एकदम प्रकृति का नियम है। जीव-मात्र की प्रकृति के नियमों के अधीन है। अतएव इन दोनों को छोड़कर व्याह को ही लीजिए। यह सामाजिक सुविधा के लिए मनुष्य का गढ़ा हुआ नियम है। इसीलिए इस विषय में अदृष्टि का विशेष हाथ नहीं है। इस क्षेत्र में मनुष्य की इच्छा ही प्रधान है।"

ये सब युक्ति और तर्क व्रज बाबू को शायद अच्छे नहीं लग रहे थे। अतएव वह इस आलोचना में योग न देकर चुपचाप आँखें मूँदकर डेक-चेयर पर पड़े रहे।

विमल बाबू ने भी हाथ के समाचार-पत्र में मन लगाया।

सन्ध्या घनी हो रही थी, समाचार-पत्र के अक्षर धीरे-धीरे अस्पष्ट होते जा रहे थे।

विमल बाबू ने दो-एक बार सिर उठाकर देखा कि लालटेन जलाई गई है कि नहीं।

ब्रज बाबू आँखें मूंदे क्या सोच रहे थे, कौन जाने। एकाएक सीधे होकर उठ बैठे और दाहिना हाथ बढ़ाकर उन्होंने विमल बाबू का एक हाथ जोर से पकड़ लिया। फिर व्यग्र कण्ठ से बोले, "विमल बाबू, तो आप सचमुच विश्वास करते हैं कि विवाह भाग्य के अधीन नहीं है, मनुष्य की इच्छा के ही अधीन है?"

विमल बाबू ने अत्यन्त विस्मित होकर कहा, "हाँ, मेरा अपना विश्वास तो यही है। लेकिन आप एकाएक इस बात के लिए इतने व्यग्र क्यों हो उठे ब्रज बाबू?"

"बताता हूँ। किन्तु इसके पहले आप यह प्रतिज्ञा कीजिए कि आप मेरे अनुरोध की रक्षा करेंगे। ना-ना, अनुरोध नहीं, प्रार्थना—यह मैं भिक्षा माँग रहा हूँ।"

ब्रज बाबू ने व्याकुल होकर विमल बाबू के दोनों हाथ जोर से पकड़ लिए।

विमल बाबू ने बहुत अधिक विपन्न होकर कहा, "आप यह क्या कह रहे हैं? मैं आपके छोटे भाई के समान हूँ। आप जब जो आज्ञा करेंगे, उसका पालन करूँगा। ऐसी अनुचित बात कहकर मुझे अपराधी न बनाइए।"

"ना-ना, उस बात को सुनकर आप समझ सकेंगे कि यह मेरा अनुरोध नहीं, प्रार्थना ही है। बोलिए, आप मेरी विनती मानेंगे?"

"यदि सम्भव हुई तो निश्चय ही मानूंगा।"

यह बात विमल बाबू ने विशेष उत्कंठित होकर ही कही।

ब्रज बाबू ने आँखों में आँसू भरे हुए कहा, "गोविन्दजी आपका भला करेंगे। मेरे जन्म की दुःखी बेटी का भार आप ले लीजिए विमल बाबू! उसे आपके हाथ में सौंपकर मैं निश्चिन्त हो जाना चाहता हूँ।"

विमल बाबू स्तम्भित हो गए।

उन्होंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि ब्रज बाबू उन्हें विवाह के पात्र के रूप में अपनी कन्या के लिए चुन सकते हैं।

क्षण-भर अवाक् रहकर उन्होंने कहा, "आप पहले जरा स्वस्थ हो लीजिए ब्रज बाबू, यह सब सलाह फिर होगी।"

ब्रज बाबू कातर भाव से कहने लगे, "आप उदार प्रकृति के हैं, आपका मन उन्नत है और किसी के आगे मैं भरोसा करके यह प्रस्ताव न कर पाता। मेरे जीवन के दुःख और दुर्दशा की कहानी आप सभी जानते हैं। देवता की निर्मलता के समान मेरी लड़की निष्पाप है। उसके गुणों की सीमा नहीं है, रूप भी बिलकुल ही अवज्ञा के योग्य नहीं है। ऐसी लड़की के भाग्य में विधाता ने इतना दुःख लिखा था। आप शायद नहीं जानते, अब रेणुका का ब्याह होना ही कठिन है। मेरे पास न धन का बल है, न लोकबल है, न कुल का गौरव है। उसके ब्याह की आशा है और न भरोसा।"

असीम आशा से ब्रजबिहारी बाबू अब तक बात कर रहे थे, किन्तु विमल बाबू को कुछ उत्तर न देकर सिर झुकाए बैठा देखकर अचानक उनका उत्साह बुझ गया और वह आँखें मूंदकर आरामकुर्सी पर लुढ़क रहे।

थोड़ी देर बाद दोनों जुड़े हुए हाथ माथे से लगाकर निरुपाय की तरह बोले, "गोविन्द, तुम्हारी ही इच्छा पूरी हो।"

शारदा बरामदे में लालटेन ले आई।

विमल बाबू ने पूछा, "बेटी, राजू क्या घर में है?"

शारदा ने कहा, "जी नहीं, जरा देर पहले डॉक्टर के यहाँ गए हैं। अभी आते होंगे।"

फिर ब्रज बाबू की ओर देखकर उसने कहा, "काका बाबू, सन्तरे का रस क्या ले आऊँ?"

ब्रज बाबू ने हाथ हिलाकर इशारे से मना किया।

विमल बाबू ने कहा, "नहीं क्यों दादा, आपके सन्तरे का रस पीने का समय हो गया है, ले क्यों न आएगी। ले आओ शारदा बेटी।"

ब्रज बाबू ने मना नहीं किया। आँखें मूंदे निर्जीव-से पड़े रहे। लालटेन की हल्की रोशनी में विमल बाबू ने तीक्ष्ण दृष्टि से लक्ष्य किया, अस्वस्थ ब्रज बाबू का रक्तहीन मुखमण्डल पीला और विवर्ण हो रहा है, दोनों मुँदी हुई

आँखों के कोनों में बहुत छोटी-छोटी दो आँसू की बूंदें निकल आई हैं।

प्राणों से अधिक प्रिय कन्या के भविष्य के सम्बन्ध में कितनी गहन निराशा की छिपी हुई वेदना से इस परम सहिष्णु मनुष्य के नेत्रों से आँसू निकले हैं, यह विमल बाबू के समझने को बाकी नहीं रहा। निरुपाय वेदना से उनका सारा हृदय व्यथित हो उठा। चुपचाप बैठकर सोचने लगे, लेकिन सांत्वना देने का उपाय या भाषा कुछ भी न खोज सके।

गोविन्दजी की आरती का काँसे का घंटा बज उठा।

रेणु स्वयं उपस्थित होकर पुजारी ब्राह्मण के द्वारा आरती करा रही थी।

ब्रज बाबू आरामकुर्सी पर सीधे होकर उठ बैठे। जब तक घंटा-घड़ियाल का बजना बन्द नहीं हुआ, वह माथे पर दोनों हाथ रक्खे सिर झुकाए गोविन्दजी को प्रणाम करते रहे।

धूप, चन्दन के चूरे और गूगल के धुएँ की सुगन्ध से शीतल सन्ध्या की धीमी हवा महक उठी। घण्टा-झाँझ का बजना बन्द होने पर भी बहुत देर तक ब्रज बाबू उसी एक भाव से अपने इष्टदेव की मन-ही-मन वन्दना करके, फिर उसी आरामकुर्सी पर लम्बे होकर लेट गए।

रेणु ने आकर उन्हें गोविन्दजी का चरणामृत और सन्तरे का रस पिलाया।

थोड़ी देर बाद राखाल आकर विमल बाबू की सहायता से ब्रज बाबू को घर के भीतर ले गया।

दो आदमियों के कन्धों पर दोनों हाथों से बीमार शरीर का भार रखकर अति कष्ट से ब्रज बाबू थोड़ा-सा चल सकते हैं। अब भी सारे अंगों में—सारे शरीर में—स्वाभाविक बल वापस नहीं आ पाया है।

भोजन आदि के बाद रात को किसी समय विमल बाबू ब्रज बाबू के पलंग के पास आकर बैठ गए।

ब्रज बाबू का जीर्ण शिथिल हाथ अपने हाथ की मुट्ठी में लेकर विमल बाबू ने चुपके-चुपके कहा, "आपने सन्ध्या-समय में जो प्रस्ताव दिया था, उसके बारे में मैं जरा सोच-विचार करके देखना चाहता हूँ। कल मैं आपको बताऊँगा।"

व्रज बाबू ने सिर हिलाकर इशारे से अपनी सहमति जताई।

विमल बाबू के उठ जाने पर छाया से ढकी हुई निर्जन कोठरी में लेटे हुए व्रज बाबू अस्फुट स्वर से बारम्बार अपने इष्ट देवता गोविन्दजी का नाम उच्चारण करने लगे।

दूसरे दिन प्रातःकाल विमल बाबू जब व्रज बाबू के पास आकर बैठे तब व्रज बाबू ने लक्ष्य किया कि एक आनन्द की स्निग्ध दीप्ति विमल बाबू के मुखमण्डल पर छाई हुई है। उस दीप्त मुख की ओर ताककर व्रज बाबू शायद मन-ही-मन आशान्वित हो उठे, किन्तु भरोसा करके प्रश्न नहीं कर सके। बोले, "समाचार-पत्र आया है। राजू पढ़कर सुनाना चाहता था, मैंने मना कर दिया। क्या होगा दुनिया-भर के लोगों के दैनिक विवरण सुनकर? उससे तो किसी सद्ग्रन्थ को सुनने से मन को शान्ति मिलेगी और परलोक में भी कल्याण होगा।"

विमल बाबू हँसे। बोले, "कौन पुस्तक सुनने को जी चाहता है, बताइए, पढ़कर सुनाऊँ।"

"चैतन्य-चरितामृत पढ़िएगा?"

"वैष्णव धर्मशास्त्र में यह एक अद्भुत पुस्तक है।"

"आपने पढ़ी है?" व्रज बाबू के स्वर में विस्मय और आनन्द एकसाथ उमड़ उठे।

"पढ़ा है, ठीक नहीं कहा जा सकता।" थोड़े-से पन्ने उलटते-पलटते हैं।

"यह ठीक ही है। चैतन्य-चरितामृत को जो मनुष्य पढ़ सका है अर्थात् उसके अर्थ को मस्तिष्क में रख लिया है, वह तो गोविन्द के चरण-कमलों में पहुँच गया।"

विमल बाबू ने कहा, "यहाँ क्या चैतन्य-चरितामृत है?"

"हाँ, है। रेणु से चैतन्य-चरितामृत और श्रीमद्भागवत साथ लाने के लिए कह दिया था। रेणु को स्वयं भी इस पुस्तक से बहुत प्रेम है।"

"यह बात है? तो यह कहिए कि लड़की को भी आपने प्रभु-प्रेम का स्वाद चखा दिया है?"

दोनों हाथ माथे से लगाकर व्रज बाबू ने अपने इष्टदेव को प्रणाम करते हुए कहा, "छीः-छीः, ऐसी बात मुँह से न निकालनी चाहिए। उससे मुझे अप-

राध लगेगा। गोविन्द के प्रेम का आस्वाद मनुष्य क्या मनुष्य को दे सकता है विमल बाबू ? ज्ञान; बुद्धि, विद्या, मेधा सभी वहाँ तुच्छ, अर्थहीन हैं। जिस पर कृपा करते हैं, केवल वही, भाग्यवान् पुरुष या स्त्री संसार में उनके प्रेम का दुर्लभ स्वाद पाकर धन्य होता है।"

विमल बाबू चुप रहे।

ब्रज बाबू कहने लगे, "कल सन्ध्या समय बड़ी आशा और आकांक्षा से आपसे एक प्रार्थना की थी, उसके लिए आज सवेरे तो जरा भी आग्रह नहीं कर रहा हूँ। यह क्या गोविन्द की ही करुणा नहीं है ?"

ब्रज बाबू का मुख सरल हँसी से कोमल हो उठा।

विमल बाबू ने कहा, "मैंने कल रात को सोचकर उस मामले में अपना कर्तव्य निश्चय कर लिया है।"

ब्रज बाबू के रोग-पांडुर मुखमण्डल पर तृप्ति की आनन्द-रेखा झलक आई। बोले, "मैं जानता हूँ तुमको उपलक्ष्य करके गोविन्द मुझे इस भार से मुक्त करेंगे।"

विमल बाबू ने कहा, "कैसे जाना, बताइए तो ?"

ब्रज बाबू ने सिर हिलाते-हिलाते कहा, "भैया, गोविन्द ही तो अपने इस अधम सेवक की सब चिन्ताओं का निवारण करते हैं। उन्होंने तुम्हें इसी के लिए मेरे पास भेजा है।" ब्रज बाबू के चेहरे पर असीम विश्वास और भक्ति की पवित्र आभा थी।

विमल बाबू मौन रहे।

संसार के अनेक दुःखों से पीड़ित इस रोगी वृद्ध के सरलचित्त की तृप्ति की प्रसन्नता को नष्ट कर देने को उनका जी नहीं चाह रहा था, अब वह बात बिना कहे काम न चलता था। वृद्ध की भ्रान्त धारणा को शीघ्र ही दूर न कर देने से जटिलता बढ़ने की सम्भावना है।

विमल बाबू ने कहा, "मैंने कल विशेष रूप से आपके प्रस्ताव के विषय में सोचकर देखा है। सब ओर से विवेचना करके मैंने रेणु को ग्रहण करना ही तय किया है। किन्तु इस सम्बन्ध में एक बात कहनी है। आप वचन दीजिए कि मैं जो चाहूँगा, वह आप करेंगे।"

ब्रज बाबू क्षण-भर विमूढ़ दृष्टि से विमल बाबू की ओर ताकते रहे, फिर स्फुट कण्ठ से बोले, "कहिए !"

"आपने मुझे अपनी कन्या का दान करना चाहा है। मैं उसे अपनी इच्छा से और आनन्द के साथ ग्रहण करना चाहता हूँ। योग-यज्ञ-मन्त्र उच्चारण करके धर्म, समाज और आईन के अनुसार पत्नी के रूप में ग्रहण करने से वह मेरे गोत्र और उपाधि को लेकर मेरे वंश में शामिल हो जाती। मेरी सम्पत्ति पर उसका अधिकार होता, मेरे मरने पर उसे सूतक लगता। मैं योग-यज्ञ-मन्त्रोच्चारण करके धर्म, समाज और आईन के अनुसार ही उसे अपनी दत्तक कन्या के रूप में ग्रहण करना चाहता हूँ। उससे भी वह मेरे वंश और गोत्र में अधिकार पाएगी। मेरी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होकर मेरे मरने पर अशौच पालन करेगी।" विमल बाबू ने कहा।

ब्रज बाबू जैसे कुछ समझ न पा रहे हों, ऐसी दृष्टि से ताकते रहे, मुंह से कुछ कह न सके।

विमल बाबू फिर कहने लगे, "मैं जानता हूँ कि रेणु पर आपका कितना अधिक स्नेह है। मुझे भी उस पर कुछ कम प्रेम नहीं है। उसे सन्तान के रूप में ही ग्रहण करने को मैं प्रस्तुत हूँ।"

"विवाह योग्य सत्पात्र यदि मेरे वंश में कोई होता, तो उसे अपनी सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी करके रेणु को मैं अपनी पुत्रवधू के रूप में ले जाता। किन्तु वैसा अपना मेरा कोई नहीं है। दूर के नाते में जो हैं भी, वे रेणु बेटी के योग्य नहीं हैं। इसी से मैंने ठीक किया है कि सीधे-सीधे उसे ही दत्तक-कन्या के रूप में ग्रहण करूँगा। रेणु बेटी को उसके योग्य वर के हाथ में देने का भार और उसके भविष्य की चिन्ता का दायित्व सब मैं अपने ऊपर लेता हूँ—अब वह आप पर नहीं है।"

ब्रज बाबू ने एक लम्बी साँस छोड़कर आँखें मूंद लीं। कुछ उत्तर नहीं दिया।

उनके चेहरे पर इच्छा या अनिच्छा का कोई भाव ही प्रकट नहीं हुआ, जैसे मौन थे वैसे ही मौन रहे।

दोपहर को राखाल ने विमल बाबू को जरा आड़ में बुला ले जाकर अत्यन्त गम्भीर मुख से कहा, "आपके साथ कुछ सलाह करनी है।"

विमल बाबू ने जिज्ञासा की दृष्टि से उसकी ओर देखा।

राखाल ने जेब से डाकघर की मोहरवाला एक पोस्टकार्ड निकालकर दिया और कहा, "पढ़कर देखिए।"

विमल बाबू ने कार्ड हाथ में लिया। एक बार नजर दौड़ाकर अन्त में हस्ताक्षर को देखा। लिखा था—मंगलाकांक्षी हेमन्तकुमार मैत्र।

विमल बाबू ने पूछा, "यह कौन हैं राजू?"

राखाल ने कहा, "काका बाबू के इस ब्याह के साले हैं। हम लोगों के शकुनी मामा। नाम नहीं सुना क्या?"

विमल बाबू ने कहा, "ओह! यही ब्रज बाबू के व्यवसाय के प्रधान प्रबन्धक थे न?"

राखाल ने कहा, "हाँ। केवल कारोबार ही के क्यों, जमीन-जायदाद, घर-द्वार, स्त्री-कन्या, सभी का भार उन्होंने अपनी इच्छा से अपने कन्धें पर लेकर काका बाबू को बिलकुल बिना किसी झंझट के गोविन्दजी के चरणों में समर्पण कर दिया था।"

विमल बाबू ने चुपचाप आँखें नीची किए उस पोस्टकार्ड को पढ़ा। फिर राखाल की ओर देखा।

राखाल ने कहा, "वताइए, यह चिट्ठी काका बाबू के हाथ में देना ठीक होगा या नहीं?"

विमल बाबू कुछ उत्तर न देकर सोचने लगे।

राखाल ने फिर कहा, "लेकिन काका बाबू से यह बात छिपा रखना भी तो हम लोगों के लिए ठीक न होगा।"

विमल बाबू ने कहा, "हाँ, अनुचित न होगा ही।"

इसके बाद क्षण-भर सोचकर बोले, "यह चिट्ठी उनके हाथ में देने की आवश्यकता नहीं, पढ़कर सुनाने से ही काम चल जाएगा। कारण, चिट्ठी में कुछ अनावश्यक कटु बातें लिखी हैं। वह अंश उन्हें न सुनाना ही अच्छा होगा।"

"वताइए, कौन अंश छोड़कर कितना उन्हें सुनाया जा सकता है?"

"यह जो लिखा है कि 'यह मैं जानता हूँ कि जिस कलंकित वंश में रानी ने जन्म लिया है, उसके कलुष की लज्जा तो उसे चिरकाल वहन करनी

होगी। मुझे आशंका है कि आपके अपराध और पाप की सजा अन्त को कहीं मेरी निरपराध भानजी को न भोगनी पड़े। इसीलिए उसे यथासम्भव जल्दी ही सत्पात्र से ब्याहने की व्यवस्था मैंने की है। आपको सूचना देने को जी नहीं चाहता था, किन्तु लोक-व्यवहार एवं धर्मानुसार'...ये सब अंश उन्हें सुनाने की आवश्यकता नहीं है।"

राखाल ने कहा, "रानी का ब्याह उसके पिता की इच्छा-अनिच्छा, सम्मति-असम्मति की अपेक्षा न करके ही ठीक हो गया। आश्चर्य है! संसार में ऐसा कहीं देखा है विमल बाबू?"

विमल बाबू जरा हँस दिए।

राखाल फिर चिट्ठी को पढ़ने लगा, "आज बिना विघ्न-बाधा के हल्दी चढ़ने का काम सम्पन्न हो गया है। कल गोधूलि-लग्न में शुभ विवाह है। बस, केवल इतना ही लिखा है। कहाँ ब्याह हो रहा है, लड़का कैसा है, कोई सूचना नहीं दी। देखी आपने सम्बन्धों की सार्थकता?"

विमल बाबू चुप रहे!

राखाल ने कहा, "बड़ी लड़की का ब्याह नहीं हुआ, बल्कि छोटी लड़की का धूमधाम से ब्याह हो रहा है।"

विमल बाबू ने शान्त स्वर में कहा, "संसार का यही नियम है राजू। कोई कुछ भी किसी के लिए अपेक्षा किए नहीं रहता।"

"काका बाबू सर्वस्व उन्हें सौंपकर आज कौड़ी-कौड़ी को मोहताज हो गए हैं, इसी से तो इतनी अधिक ज्यादती सम्भव हुई।"

उदासी से विमल बाबू ने कहा, "यह भी शायद संसार का नियम है।"

यह पत्र जब से मिला, राखाल के हृदय में आग-सी लगी हुई थी।

उसने तीखे स्वर में कहा, "संसार का नियम है, इसीलिए सभी सहा नहीं जा सकता विमल बाबू!"

विमल बाबू ने हँसकर कहा, "राजू! लेकिन सहन करना भी तो हमारी बड़ी विवशता है।"

पच्चीस

ठण्ड की साँझ।

कलकत्ते की एक तंग गली।

एकतल्ले मकान की कोठरी।

किवाड़ ऊँठकाये हुए।

रेणु लालटेन सामने रखकर पशमीने की एक छोटी टोपी बुन रही थी। दरवाजे के बाहर से शारदा की आवाज सुनाई दी, "दीदी !"

रेणु ने उत्तर दिया, "आओ।"

शारदा ने दरवाजा ठेलकर भीतर प्रवेश किया। उसके पीछे एक बड़ा झोला लिए दासी खड़ी थी।

रेणु ने उसे देखकर शारदा की ओर ताका।

शारदा ने कहा, "गोविन्दजी के लिए माँ ने कुछ फल-फूल, साग-सब्जी और अच्छा मक्खन भेजा है।"

रेणु के नयनों की दृष्टि तीव्र हो उठी। क्षण-भर स्तब्ध रहकर संयत स्वर में उसने कहा, "शारदा दीदी, यह तो हम ले न सकेंगे।"

"पर यह तो गोविन्दजी के लिए है।"

"गोविन्दजी को माध्यम बनाकर हमारे लिए ही भेजा है। इसके लेने का कारण नहीं है—उनसे कह देना, हमें क्षमा करें।"

शारदा ने कैफियत के स्वर में कहा, "यह क्या दीदी, यह तो तुम लोगों के लिए नहीं है। यह गोविन्दजी के···।"

रेणुका ने बीच में ही शान्त स्वर में कहा, "गोविन्दजी को माध्यम बनाकर माँ ने यह सब हम लोगों के लिए ही भेजा है। यह बात तुम भी जानती हो, मैं भी जानती हूँ शारदा दीदी—लेकिन इसके लेने का कारण नहीं है। माँ से कह देना—वे हम लोगों को क्षमा कर दें।"

शान्त कण्ठ की इन सहज बातों के पीछे कितनी सुनिश्चित अटलता है यह जान लेने में शारदा को भूल नहीं हुई। दासी को इशारे से बाहर इन्तजार करने को कहकर शारदा रेणुका के पास आकर बैठ गई और उसने

पूछा, "चाचाजी अच्छे तो हैं?"

हाथ के पशमीने का काम पूरा करते-करते रेणुका ने उत्तर दिया, "हाँ।"

बहुत समय मौन ही बीत गया।

कहने योग्य कोई बात खोजकर न पाने पर शारदा मन-ही-मन संकोच और लज्जा अनुभव कर रही थी। इसीलिए उठने की सोच रही थी कि सहसा रेणुका ने ही बात कही। ऊन की टोपी बुनते-बुनते बोली, "शारदा दीदी, माँ को समझाकर कह दो, वे मन में दुःखी न हों। मेरे लिए अपने मन में दुःख-चिन्ता रखने की उन्हें मना ही कर दो। जो होने वाली बातें नहीं हैं वह होती ही नहीं हैं, इसे वे मुझसे अधिक ही जानती हैं। दुःख दूर करने की चेष्टा से दोनों पक्षों के ही दुःख का बोझ केवल भारी हो जाएगा।"

शारदा मौन ही रही। मन में विचार आने लगा, उस कर्म-निविष्टा नतनयना कन्या ने उसके अति निकट बैठी रहकर भी अत्यन्त सुदूर से इन थोड़ी-सी शान्त बातों को कहकर भेज दिया।

कुछ देर बीत जाने पर शारदा ने तनिक इधर-उधर करके कहा, "तो इस दशा में जा रही हूँ बहिन।"

रेणुका ने सिर हिलाकर इशारे से सम्मति प्रकट की।

रेणुका एक ही भाव से अखण्ड मनोयोग के साथ ऊन की छोटी टोपी तेज हाथ से बुनने लगी। रात ही भर में इसे पूरा करके एक जोड़ा छोटा मोजा और बनाना होगा।

सात-आठ महीने हुए ब्रज बाबू गाँव का घर छोड़कर कलकत्ते में आकर रह रहे हैं। विमल बाबू के किराए पर ठीक किए गए मकान में रेणुका ने किसी तरह भी जाना नहीं चाहा।

ब्रज बाबू के बहुत कुछ स्वस्थ हो जाने से रेणुका जिद करके कम किराए के एक छोटे-से एकतल्ले मकान में आ गई है। पिता की बीमारी में असहाय अवस्था में बाध्य होकर दूसरे से सहायता लेनी पड़ी है इसलिए बराबर ही दूसरों की मुखापेक्षी होकर रहने में वह असम्मत है। इस नीरव प्रकृति की सुशीला कन्या की सम्मति कितनी सुदृढ़ है इस घटना के बाद इसे सभी समझ गए हैं।

रेणुका ने थोड़े वेतन की एक मजदूरिन रख ली है। गृहस्थी के काम-काज और पूजा-पाठ से अवकाश मिलता है तो वह स्वयं छोटे बच्चों के लिए जाँघिया, पेनी, फ्रॉक आदि की सिलाई करती है, ऊन का मोजा, टोपी, स्वेटर बुनती है। अचार, मुरब्बा और बरी तैयार करके मजदूरिन के हाथ दुकान पर बेचने के लिए भेज देती है।

छत के ऊपर टीन का छाजन का कमरा है। उसी कमरे को साफ-सुथरा बनाकर ठाकुरघर बना दिया गया है। ब्रज बाबू स्नान-भोजन और सोने के समय के अलावा सब समय इस पूजा की कोठरी में ही रहते हैं। गृहस्थी किस प्रकार चल रही है, कहाँ से खर्च आ रहा है, इसका रहस्य वे जानना नहीं चाहते। जानने से भय खाते हैं। रेणुका के अलावा और किसी के साथ अधिक बातचीत या भेंट भी नहीं करते।

शारदा ने आशंका की थी कि सब सामान लौट जाने से सविता को बड़ा आघात लगेगा। इसलिए घर पहुँचकर सामान से भरे टोकरे को चुपचाप एकतल्ले के भण्डारघर में रखकर वह ऊपर चली गई।

सविता अपने कमरे में बैठकर पंचांग के पन्ने उलट रही थीं।

शारदा को देखकर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखने लगीं।

सविता के पास बैठकर शारदा ने कहा, "चाचाजी अच्छे हैं माँ।"

"और रेणुका?"

"वह भी अच्छी है।"

सविता ने और कोई प्रश्न न करके पंचांग के पन्ने पर फिर अपना मन लगाया।

शारदा आश्चर्य में पड़ गई।

दूसरे दिन रेणुका से मिलकर घर लौटने पर उसने देखा कि सविता उत्कण्ठित प्रतीक्षा में उसकी बाट जोह रही हैं। उसके बाद कितने ही तृष्णा-युक्त आग्रह से एक के बाद एक प्रश्न करके सब खोद-खोदकर जान लेना चाहती हैं। रेणुका क्या कह रही थी, क्या-क्या बातें उसने कहीं, उसके बाल बँधे हुए थे या नहीं, कपड़े साफ किए गए थे या नहीं, रेणुका पहले से अधिक दुबली हो गई या वैसी ही है, आदि-आदि।

ब्रज बाबू की अपेक्षा रेणुका के सम्बन्ध में ही सविता बहुत-कुछ जान

लेना चाहती हैं इसे भी शारदा ने लक्ष्य किया है।

बहुत समय मौन में बीत गया।

शारदा आप-ही-आप कहने लगी, "उन लोगों का अभाव ऐसा कुछ आवश्यक नहीं है माँ, जिसके लिए आप इतना अधिक सोचती हैं। सिर्फ दो प्राणी हैं। उनका खर्च ही क्या है? काम भी क्या है? इसलिए रेणुका ने रसोईदारिन नहीं रखी। गृहस्थी में किसी चीज का अभाव तो मैंने देखा नहीं।"

सविता ने पंचांग के एक कोने को मोड़कर चिह्न रखकर उसे बन्द कर दिया।

शारदा के मुँह की तरफ पूरी दृष्टि से देखकर मुस्कराकर उन्होंने कहा, "वह भले ही उन लोगों को न हो, लेकिन तुम चीजों की डलिया को कहाँ छिपाकर रख आई हो शारदा?"

शारदा ठिठक गई। विस्फारित नेत्रों से लक्ष्य करके उसने देखा कि सविता के चेहरे पर वेदना का चिह्न-मात्र नहीं है, वरन् होंठों के किनारे दबी हुई हँसी की रेखा है।

सविता ने कहा, "तुम शायद यह सोचकर डर गई हो शारदा कि चीजें वापस आ गई हैं, सुनकर तुम लोगों की माँ दुःख और क्षोभ से व्याकुल होकर गिर पड़ेंगी, यही है न?"

शारदा ने लज्जित होकर कहा, "ना, मैंने ठीक यह नहीं सोचा था। शायद मन में बड़ा आघात पा जाएँगी, यही भय उत्पन्न हुआ था।"

सविता स्नेह के साथ शारदा की पीठ और माथे पर हाथ सहलाते-सहलाते बोलीं, "नासमझ लड़की, तुम्हारी तरह माँ के हृदय की ही ओर केवल देखकर क्या सभी ने माँ को प्यार करना सीखा है, इसके लिए तो मैं रेणुका पर गुस्सा नहीं कर सकती बेटी, उसका कुछ भी दोष नहीं है।"

"वह बात आपसे कहनी न पड़ेगी। रेणुका जो आप ही की लड़की है, आज मानो मैं उसे सबसे अधिक स्पष्ट रूप से देख आई हूँ माँ।"

उस बात को बचाकर सविता ने सहज स्वर में कहा, "क्या कहकर तुमको उसने आज वापस किया?"

शारदा ने पूरा विवरण सुनाकर अन्त में कहा, "अच्छा माँ, एक बात

मैं पूछती हूँ, वापस आएँगी समझकर ही क्या आपने चीजें भर दी थीं ?"

सविता ने सिर हिलाकर इशारे से बताया, "ना।" उसके बाद उन्होंने पूछा, "शारदा बेटी, बताओ तो, सचमुच ही क्या उन्हें कोई अभाव नहीं है; तुम देख आई हो ?"

"भीतर की बात किस तरह जानूंगी मां ?"

"देखने से क्या लगा ?"

शारदा सिर झुकाए चुप रही।

सविता ने फिर प्रश्न नहीं किया। उनके प्रशान्त मुख पर चिन्ता की काली छाया छा गई।

कुछ देर बाद सविता ने प्रश्न किया, "आज जब तुम गईं तब वह क्या कर रही थी ?"

"ऊन की टोपी बुन रही थी।"

सविता के मुँह पर वेदना का चिह्न सुस्पष्ट हो उठा। भरे कण्ठ से उन्होंने कहा, "राजू की मार्फत उसकी वह ऊन की सब चीजें खरीद लेने की मैंने चेष्टा की थी। उसने राजू के हाथ बेचना नहीं चाहा।"

"क्यों माँ ?"

"राजू ने जिस कीमत से उसको लेना चाहा था वह मूल्य लेने को वह तैयार नहीं हुई। उसने कहा था, यह तुम लोगों की सहायता करने का उपाय है।"

शारदा मौन हो रही।

सविता की शान्त गम्भीर मूर्ति की ओर देखकर वह मन-ही-मन सोचने लगी कि स्थिर प्रशान्ति की आड़ में कैसी विक्षुब्ध आँधी बहती जा रही है। दुनिया में उसे कौन जानता है।

शारदा ने कहा, "माँ, मैंने सुना था कि रेणुका के लिए एक अच्छे डॉक्टर का पता-ठिकाना ले आए थे देवता। उस सम्बन्ध का क्या…?"

सविता ने उमड़ती हुई गहरी साँस को दबाकर कहा, "वह हुआ नहीं। लड़की ब्याह नहीं करेगी, यह प्रतिज्ञा उसने की है।"

शारदा ने धीरे से कहा, "ऐसी भली लड़की होकर भी वह…?"

सविता ने बीच में ही कहा, "उसने शायद कहा है, हिन्दू की लड़की

को दुबारा हल्दी नहीं चढ़ती। वाग्दत्ता लड़की भी विवाहिता के ही समान है। मेरे विवाह का मामला वाग्दान के बाद बहुत दूर तक आगे बढ़ गया था। अब फिर दो बार करके वे सब मामले होने लगें, यह मैं नहीं चाहती। तुम लोग ब्याह की चेष्टा मत करना राजूदा, उससे मेरा कल्याण न होगा, यह मैं जानती हूँ।"

सविता के मौन हो जाने पर शारदा व्याकुल कण्ठ से बोली, "यदि रेणुका का यही मत है तो इस हालत में उसी पात्र के साथ रेणुका के विवाह की चेष्टा कीजिए न, जिसके साथ ब्याह ठीक होकर उसके शरीर में हल्दी तक लग गई थी। भाग्य में होने से पति शायद पागल नहीं भी हो सकता।"

सविता ने फीकी हँसी हँसकर कहा, "उसी पात्र के साथ सात-आठ महीने पहले रेणुका की सौतेली बहिन रानी का विवाह हो गया।"

सुनकर शारदा आश्चर्यचकित हो गई।

एक मर्मभेदी लम्बी साँस के साथ सविता ने कहा, "मेरी गलती से ही ऐसा हो गया।"

शारदा अपलक सविता की ओर देख रही थी।

सविता मृदु स्वर में स्वगत रूप से कहने लगीं, "इतनी जल्दी गृहस्थ न होकर शायद उन लोगों को राह में खड़े होने की घड़ी नहीं आती यदि मैं इस प्रकार निन्दा करके रेणुका का ब्याह बन्द न करवा देती।"

"तब अवश्य एक-न-एक दिन उन लोगों को रास्ते में उतरना ही पड़ता, मैंने उसे आगे बढ़ा दिया, बस इतनी ही बात है। कम-से-कम रेणुका की विमाता इतनी सहूलियत से ही सम्पत्ति का बँटवारा करके जाने का बहाना न खोज पाती।"

शिबू की माँ ने आकर पुकारा, "माँ, भैयाजी अन्दर घर में आ गए हैं, उनको भोजन परोसिए। रात होती जा रही है।"

शारदा झटपट उठ खड़ी हुई और बोली, "आपको जाना न पड़ेगा माँ। मैं ही तारक बाबू को जाकर भोजन दे देती हूँ, आप कुछ आराम कीजिए।"

"ना शारदा, चलो मैं भी चलती हूँ। वह खाते समय मुझे न देखकर घबरा जाएगा।"

शारदा के साथ सविता भी चली गईं।

हरिनपुर से लौट आने पर सविता ने अपना घर बदल दिया है।

रमण बाबू के उस पुराने घर में प्रवेश करने की अब इच्छा नहीं है। भाग्यचक्र के अधीन जिस घर में बारह साल से अधिक समय तक जहाँ प्रति-पल आत्महत्या की असह्य यन्त्रणा भोग करके भी, आच्छन्नता के बीच अर्ध-चेतनवत् बिताना पड़ा है, आज उस घर की तरफ देखने से भी आतंक से शरीर सिहर उठा।

विमल बाबू ने जिस घर को ब्रज बाबू और रेणुका के लिए ठीक कर रखा था, सविता उसी घर में ही चली गई हैं।

विमल बाबू कलकत्ते में नहीं हैं। व्यवसाय-सम्बन्धी आवश्यक तार आने से सिंगापुर वापस चले गए हैं। सविता की देख-भाल का भार लेकर राखाल को इस नए घर में रहने का विमल बाबू ने अनुरोध किया था। नई-माँ की देखभाल का भार लेने को राजी होने पर भी उनके घर पर रहने में राखाल ने असमर्थता प्रकट की थी।

विमल बाबू से यह सूचना सुनकर तारक ने स्वेच्छा से नई-माँ के घर पर रहकर उनकी देखभाल का भार लिया है।

सविता की इच्छानुसार तारक ने बर्दवान की अध्यापिकी छोड़कर हाईकोर्ट में प्रैक्टिस करना शुरू किया है। एकतल्ले के बाहरी हिस्से का बैठकखाना कानूनी पेशा वाले के उपयुक्त सामान से खूब अच्छी तरह सजा दिया गया है।

विमल बाबू ने स्वयं व्यवस्था करके उसको हाईकोर्ट के एक प्रतिष्ठित वकील का जूनियर बना दिया है। विमल बाबू की छोटी मोटरकार में ही वह कचहरी जाता-आता है। तारक के आवश्यक पोशाक-पहनावे गाउन आदि सामान सब ही सविता ने खरीद दिए हैं।

तारक का भोजन हो जाने पर सविता ऊपर चली आई थीं। बहुत देर बाद शारदा ने ऊपर आकर कहा, "माँ, आज भी आप कुछ न खाएँगी?"

"ना शारदा! मेरे गले में कुछ नहीं उतरेगा। लेकिन तुम यदि मेरे लिए न खाकर उपवास करना चाहोगी, तो मुझे खाना ही पड़ेगा। लेकिन मैं जानती हूँ, तुम अपनी माँ के ऊपर ऐसा अत्याचार न करोगी।"

शारदा मलिन भाव से खड़ी रही।

सविता ने कहा, "जाओ बेटी, भोजन करो।"

शारदा मुँह नीचे झुकाए धोती के आँचल का एक कोना दोनों हाथों से व्यर्थ ही लपेटने लगी।

"कोई मनुष्य एक समय न खाने से मरता नहीं शारदा। लेकिन अधिक भोजन उसके लिए मृत्यु से भी अधिक दुःखदायी हो उठता है। फिर भी, अगर तुम मुझे खिलाने के लिए परेशान करना चाहो तो चलो चलती हूँ।" सविता ने कहा।

शारदा ने इस बार मुंह उठाकर मृदु कण्ठ से कहा, "ना, रहने दो माँ। मैं अकेली जाती हूँ।"

कमरे में बत्ती बुझाकर दरवाजे की सिटकनी बन्द करके सविता फर्श पर लेट गईं।

आज दोपहर को राखाल आया था।

सविता विपत्तिग्रस्त पति और कन्या का सब समाचार जान गई हैं। सारा दिन मानो उदासीनता के बीच से छाया की तरह बीत गया है, रात के स्तब्ध निर्जन आकाश में वेदना भावातुर अन्तस्तल में कुछ-कुछ मानो चेतना लौट आई है। दोनों आँखों की अविरल अश्रुधारा से कठोर फर्श और लापरवाही से बँधी हुई केशराशि भीगने लगी। कोई भी शब्द नहीं है। चंचलता नहीं है। निस्पन्द शरीर में फैलाई हुई बाँहों पर माथा रखकर फर्श पर एक करवट पर पड़ी हुई हैं। उपायहीन हानि के क्षोभ से उनका समस्त हृदय आज कातर और विकल है। कोई सान्त्वना भी आज ढूँढ़ने पर उन्हें नहीं मिल रही है। अपनी सन्तान का यह दुःख उनको दिन-रात जर्जरित कर रहा है। समस्त हृदय क्षत-विक्षत हो जाने पर भी वेदना से आर्तनाद करने का उपाय कहाँ है। बलि-पशु के समान ही रक्त-सने शरीर से धूलि में पड़ी रहकर छटपटाते रहने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।

आज उनका तृषित मातृ-हृदय मानो बाँहों को बढ़ाकर जिसको छाती के अन्दर खींच लेने को व्याकुल है, संसार में वही आज उनसे सबसे अधिक परायी, सबसे अधिक दूर की हो गई है।

बसन्त ऋतु में परिपूर्ण यौवन से उच्छ्वसित जब जीवन स्वतः ही प्यास

से आतुर रहता है, उनको उन दिनों को बिल्कुल ही अकेली निःसंग अवस्था में ढोना पड़ा है, नहीं मिला है हृदय का साथी, न तो मिला है यौवन का प्राणवान सहचर। उस एकान्त अकेलेपन के बीच अचानक एक दिन न मालूम कहाँ से कैसा आकस्मिक भूचाल आ गया, उसे वे स्वयं भी स्पष्ट रूप से समझ न सकीं। जब होश हुआ, आसपास उन्होंने देख लिया कि सारी दुनिया में उनका कोई नहीं है, कुछ नहीं है। पति, सन्तान, घर, परिजन, संसार, प्रतिष्ठा, मान-मर्यादा सब ही जादूगर की जादूगरी की तरह अन्तर्धान हो गए हैं। उन्होंने भयचकित चित्त से सहसा अनुभव किया, दुनिया और समाज के बाहर हैं बन्धुहीन, अवलम्बहीन हैं, अकेले शून्य के बीच लटक रही हैं। पैर रखकर खड़ा होने तक की पृथ्वी भी पैरों के नीचे अब नहीं रही।

सविता ने जीवन के इस आश्चर्यजनक सर्वनाश के क्षण में जिस अत्यन्त कीचड़-भरी आश्रयभूमि की परिधि के बीच अपने को खड़ा कर दिया, वह सामाजिक ज्ञान-बुद्धि और विचार से पूर्ण नहीं कहा जा सकता। लेकिन दिन बीतते रहने के साथ उस कलुषित आश्रय के क्लेश और भद्देपन से प्रतिदिन उनका शरीर, मन घृणा से संकुचित हो गया। जाग्रत् आत्म-चेतना प्रतिक्षण पश्चात्ताप के मर्मान्तिक आघात से आहत और जर्जरित होती रही। फिर भी उस असहनीय और अवांछनीय, संकीर्ण आश्रय को छोड़कर और भी अनिश्चित मार्ग के बीच कूद जाने का साहस उनको नहीं हुआ। अपनी अतिशय निरुपाय अवस्था समझ लेने पर वे अन्दर-ही-अन्दर सिहरती रहीं।

इसी तरह उनके दिन के बाद दिन, महीने के बाद महीने, सालों के बाद साल एक-एक करके बीतते गए।

अगर जीवन के प्रारम्भिक क्षणों में कोई बलिष्ठ सजीव पुरुष उनके जीवन के मार्ग में आ खड़ा होता तो आज उनके उज्ज्वल नारी-जीवन की दीप्ति से क्या संसार और समाज प्रकाशित न हो उठता? प्रसन्न तन-मन के आनन्दित हृदय के अनुकूल प्रभाव से वे क्या आज लक्ष्मी स्वरूपिणी पत्नी, आदर्श माता, ममता माधुर्यमयी नारी न बन गई होतीं? किसलिए उनके जीवन की उदय उषा ऐसे अकाल समय में विलीन हो गई? क्षणमात्र

के अवकाश में इतना बड़ा भूचाल कैसे आ गया, जो उनको अपने ही सपने में अगोचर था ?

सविता की इस अबोध अश्रुसिक्त चिन्ताधारा में एकाएक रुकावट पड़ गई। किवाड़ पर खट-खट आवाज होने के साथ तारक का कण्ठ-स्वर सुनाई पड़ा—"नई-माँ, नई-माँ, जरा द्वार खोलिए···।"

सविता उठ बैठीं और अपने को चेतना में ला रही थीं कि उसी समय द्वार पर फिर खट-खट और एक के बाद एक आवाज लगातार सुनाई पड़ने लगी।

जल्दी मुँह और आँखें पोंछकर तेज हाथों से शरीर और माथे के कपड़े को अच्छी तरह सँभालकर सविता ने द्वार खोल दिया।

तारक की इस अधीर घबराहट से वे घर में कोई दुर्घटना हो गई है यह अनुमान करके शंकित हो उठी थीं। द्वार खुलने पर भीतर आते ही तारक ने कहा, "सुनता हूँ, आप रोज ही रात को बिना खाये रह जाती हैं। आज आपने कुछ मुँह में नहीं डाला है। तबीयत क्या अधिक खराब हो गई है ?"

तारक का प्रश्न सुनकर सविता आश्चर्य और विरक्ति से मौन हो गईं।

तारक ने फिर पूछा।

"ना, मैं अच्छी ही हूँ।" सविता ने शांत स्वर में उत्तर दिया।

"तो क्यों इस तरह उपवास कर रही हैं ? ना-ना, इसे मैं न मानूंगा, कुछ-न-कुछ खाना आवश्यक है। कल ही मैं डॉक्टर बुला लाऊँगा।" तारक के कण्ठ में यथेष्ट उद्विग्नता प्रकट हुई।

"यह सब हंगामा मत करो तारक।"

"तो बताइए, क्यों अकारण ही उपवास करके आप अपने पर अत्याचार कर रही हैं ?"

"रात हो गई है, तुम जाकर सो रहो तारक !" सविता के स्वर में अत्यन्त थकावट फूट उठी।

तारक दुःखी होकर बोला, "बहुत अच्छा ! आपकी जैसी इच्छा हो, कीजिए। मैं सिंगापुर सब हाल लिख देता हूँ। आने पर यदि वे कहें, तारक, तुमको देखभाल करने का दायित्व देकर रखा गया था, मुझको तुमने सूचना

क्यों नहीं दी—तब क्या उत्तर दूंगा उनको ?"

सविता का हृदय जल उठा, लेकिन धीर भाव से उन्होंने कहा, 'मैंने क्यों दो दिन खाया नहीं, अथवा तीन दिन मैं सोई नहीं, इसके लिए वे किसी से भी विवरण नहीं माँगेंगे।"

"तो इस हालत में मेरे यहाँ रहने की क्या आवश्यकता है नई-माँ ?"

तारक के स्वर में अभिमान प्रकट हुआ।

सविता ने नाराजगी से कहा, "आज मैं बहुत थक गई हूँ तारक, तर्क करने की शक्ति मुझमें नहीं है। मैं सोने जा रही हूँ।" सविता ने धीरे-धीरे फिर द्वार बन्द कर लिया।

शारदा सीढ़ियों के सामने ही खड़ी थी। लौटते समय उसको देखकर तारक तीव्र स्वर से बोल उठा, "नई-माँ जो प्रतिदिन रात को उपवास करती हैं, यह बात आपने मुझे क्यों नहीं बताई ? आज शिबू की माँ के मुंह से सुनकर यह बात मुझे मालूम हुई।"

"आपने तो उनके सम्बन्ध में कुछ जानना नहीं चाहा।"

शारदा के कण्ठ की निर्लिप्तता से तारक गरज उठा, "इतनी बड़ी झूठी बदनामी ! मैं क्या नई-माँ की सुध नहीं रखता ? देखभाल में त्रुटि करता हूँ ?"

"व्यर्थ मत चिल्लाइए। मैंने यह सब-कुछ भी नहीं कहा।"

"अवश्य ही कहा है। मैं समझ गया हूँ। मेरे विरुद्ध एक षड्यन्त्र चल रहा है। आज रात को ही मैं सब लिख देता हूँ विमल बाबू को।"

"आप लिख सकते हैं, लेकिन इसमें नई-माँ नाराज होंगी।"

"अपना कर्तव्य मैं अवश्य करूँगा। सब दायित्व वे मुझ पर ही रख गए हैं, इस बात को भूल जाने से तो हम लोगों का काम नहीं चल सकता।"

"नई-माँ की रुचि-अरुचि पर अत्याचार करने के लिए वे किसी को भी नहीं कह गए हैं। कहेंगे भी कैसे ? यह अधिकार किसी को भी नहीं है।"

तारक व्यंग्य-भरे स्वर से बोला, "सुनूँ तो वह अधिकार किसको है ? आशा करता हूँ राखाल बाबू को तो नहीं है।"

शारदा की दृष्टि कठोर हो उठी।

उसने अपने को सँभालकर मीठे स्वर से कहा, "नई-माँ के ऊपर जोर

चलाने का अधिकार यदि आज किसी को है तो राखाल बाबू को ही है और किसी को नहीं है।"

इन सब बातों ने तीखे नोक वाली सुई की भाँति तारक को बींध दिया। क्रोध संयत न हो सका, तारक बोल उठा, "यह ठीक ही है। इसीलिए तो वे नई-माँ की असहाय अवस्था में देखभाल करने का भार तक भी न ले सके। नई-माँ के घर आकर रहने से पीछे कहीं उनके नाम में कलंक न लग जाय।"

शारदा ने संयत स्वर में कहा, "जो लोग स्वार्थ के प्रयोजन से सब-कुछ करने को तैयार हैं, राखाल बाबू उन लोगों के दल के नहीं हैं। नई-माँ की देखभाल का भार लेने की अपेक्षा नई-माँ की तरह उन्होंने बहुत बड़ा कर्तव्य का भार ले रखा है। आप उसे नहीं जानते, इसीलिए समझ न पाएँगे।"

किसी उत्तर की प्रतीक्षा न करके शारदा सीढ़ियों से उतरती हुई नीचे चली गई।

सविता नहा-धोकर तुरन्त भीगे बालों के घने समूह को पीठ पर फैला-कर धूप की ओर पीठ करके एकाग्रचित्त से पत्र लिख रही थीं।

उदास विषाद-भरी छाया ने शीर्ण मुख पर सकरुण श्री को विकसित कर दिया है।

शारदा उसी स्थान पर बरामदे के एक कोने पर बैठकर अपने लिए कुर्ती सी रही थी। रास्ते की तरफ उसने देखा तो राखाल उसे आता हुआ दिखाई पड़ा। सिलाई का काम हाथ में लिए ही वह मेन गेट खोलने के लिए नीचे उतर गई।

राखाल को जंजीर खटखटाकर पुकारने की आवश्यकता नहीं पड़ी। खुले द्वार पर शारदा उसके लिए प्रतीक्षा कर रही है, यह देखकर राखाल अपने मन में कुछ प्रसन्न हो उठा। उसे प्रकट न करके ही वह बोल उठा, "ठीक दोपहर के समय सदर द्वार पर क्यों खड़ी हो शारदा!"

"एक आदमी की प्रतीक्षा कर रही हूँ।"

"कौन है वह? शायद फेरी वाला होगा।"

"ना, आप पहचान न सकेंगे।"

"तो तुम ही पहचान करा दो न···।"

"स्वयं पहचान लेना न चाहने से दूसरा कोई उसे पहचान लेने की शक्ति नहीं दे सकता देवता।"

"यह बात तो पहेली मालूम हो रही है···!"

"कल्पनाशील मनुष्य के लिए सभी बातें पहेली-सी लगती हैं, ऐसा मैंने सुना है। अन्दर चलिए, द्वार बन्द कर दूं।"

शारदा द्वार बन्द करके राखाल के साथ अन्दर चली गई।

राखाल ने मृदु हँसी से कहा, "और कभी क्या इसी प्रकार निस्तब्ध दोपहर को किसी के लिए द्वार पर खड़ी रहकर प्रतीक्षा करती रहती हो शारदा?"

उसके स्वर में परिहास था।

शारदा ने सिर्फ कुछ देर राखाल के मुँह की ओर देखकर समझना चाहा कि यह व्यंग्योक्ति है या नहीं? उसके बाद उसने भी हँसकर उत्तर दिया—"हाँ, सब दिन ही रहना पड़ता है। जिस दिन पहले-पहल आपने मुझे देखा था, उस दिन भी तो एक आदमी की बाट जोहती हुई द्वार खोलकर मैं प्रतीक्षा कर रही थी।"

"ऐसी ही बात है क्या? वह कौन हैं बताओ तो?"

शारदा ने हँसकर कहा, "मेरे परम मित्र हैं देवता। उनके आने का द्वार तो उस दिन इसी तरह अपने ही हाथों से मैंने खोल दिया था। लेकिन उस खुले द्वार की राह से देवता के बदले आ गए मृत्युलोक के देवता।"

इस बात को हल्का बनाने के लिए उसने कहा, "कोई कुदेवता तो आ नहीं गए, इतना ही ठीक है। चलो, ऊपर चलें। नई-माँ क्या इस समय विश्राम कर रही हैं?"

"ना, वे पत्र लिख रही हैं और अभी ही आई हैं।"

"यह कैसी बात! इतनी देर में?"

"रोज तो ऐसा होता है। गृहस्थी के सभी काम-काज अपने हाथों से सम्पन्न करके स्नान-पूजा करके खाने बैठती हैं, तब तीन बज जाते हैं बल्कि आज तो कुछ पहले ही हो गया है।"

"इसका क्या मतलब? अपने हाथ से तो ये काम करना नई-माँ का

अभ्यास नहीं है। ऐसा करने से सख्त बीमार पड़ जाएँगी। दास-दासी, रसोईदारिन ये सब क्या अब नहीं हैं? अकेली वे हैं? ऐसा ही क्या उनको अभाव···।''

''अभाव के कारण नहीं देवता।''

''तो?''

''यह है उनका कठिन आत्म-निग्रह।''

राखाल चुप हो रहा।

शारदा ने लम्बी साँस भरकर कहा, ''चलकर बैठिए।''

राखाल ने कहा, ''मैं दोपहर को आता हूँ, इससे नई-माँ के विश्राम में मैं कुछ विघ्न तो नहीं डालता शारदा?''

''यदि आपको ऐसा ख्याल हो तो इस समय न आवें, तभी ठीक है।''

राखाल ने सन्देह-भरे स्वर में कहा, ''इसका क्या मतलब? तुम इसके बारे में क्या जानती हो?''

''जानती ही तो हूँ। इस समय घर के नए वकील साहब कचहरी में रहते हैं। अतएव आपको मित्र-संकट, अरे, मित्र-मिलन होने की सम्भावना नहीं है।''

''हूँ, लकीर खींचकर भविष्य-गणना करना मैंने सीखा है। अब चलो, ऊपर चलोगी या नीचे ही खड़ा रखोगी?''

शारदा ने कहा, ''उस ओर की एक बेंच पर जरा चलकर बैठिए न देवता। माँ का चिट्ठी लिखना समाप्त होने में अभी कुछ देर है। इसी अवसर में मैं आपसे दो-चार बातें पूछना चाहती हूँ।''

''चलो, ऊपर जाकर ही सुनूँगा।''

''माँ के सामने मैं कह न सकूँगी। मुझे शर्म लगेगी।''

शारदा राखाल को एकतल्ले के दालान के उत्तर की ओर ले गई। एक तरफ बेंच रखी हुई थी। अपने आँचल से बेंच की धूलि झाड़ी।

शारदा ने कहा, ''बैठिए।''

राखाल बैठकर बोला, ''तुम्हारा आसन कहाँ रहेगा?''

''मैं यहीं अच्छी तरह हूँ, मुझे थोड़ी ही बातें करनी हैं। अधिक समय तक आपको रुकना न पड़ेगा।''

"अच्छा, अब बात आरम्भ हो जाय।"

"आप इस तरह हँसी-मजाक करेंगे तो मैं कैसे रह सकूँगी?"

"अच्छा, हँसी-मजाक नहीं करूँगा। कहो।"

शारदा राखाल से कुछ दूरी पर दीवाल से टेक लगाकर खड़ी थी। हाथ में सिलाई का जो काम अधूरा पड़ा हुआ था, उसे हिलाते-डुलाते तनिक इधर-उधर करके उसने कहा, "मैं ठीक नहीं जानती, यह सब पूछना मेरे लिए उचित है या नहीं।" उसके बाद थोड़ी देर तक चुप रहकर उसने कहा, "अच्छा, रेणुका की सौतेली बहिन रानी विवाह के बाद किस हालत में है, आप जानते हैं?"

राखाल ने शारदा से ऐसा प्रश्न सुनने की आशा न की थी। इसीलिए बहुत कुछ आश्चर्य में पड़कर उसने कहा, "क्यों, बताओ तो? मैं तो विशेष कुछ भी नहीं जानता। लेकिन वह अच्छे घर में ही गई है और शादी के बाद सुख-शांति में ही है। लेकिन एकाएक तुम पूछ क्यों रही हो शारदा?"

"यह बाद को बताऊँगी। अच्छा, रानी को सुनती हूँ बच्चा होने वाला है, उन लोगों ने चिट्ठी लिखकर चाचाजी के पास यह समाचार भेजा है?"

"शायद भेजा हो। लेकिन हम लोगों को इन सब सुसमाचारों की क्या आवश्यकता है शारदा! यह समाचार सुनाने के लिए क्या तुम मुझको यहाँ ले आई हो?"

"ना। आप क्या जानते हैं कि रानी का ब्याह उसी पात्र के साथ हुआ है, जिस पात्र के साथ रेणुका का ब्याह ठीक हो चुका था?"

राखाल ने अत्यन्त आश्चर्य में पड़कर कहा, "यह बात तो मैं नहीं जानता।"

कुछ देर बाद शारदा ने फिर प्रश्न किया, "चाचाजी शायद वृन्दावन जाकर रहेंगे यह उन्होंने निश्चय किया है?"

"हाँ।"

"रेणुका भी साथ जाएगी?"

"ना तो फिर रहेगी कहाँ?"

कुछ देर शारदा चुप हो रही। बाद को धीरे-धीरे कुछ अपने मन-ही-मन बोली, "लेकिन वहाँ इस उम्र में कुंवारी लड़की···।"

राखाल ने कहा, "मैं सब समझ गया। लेकिन इसके अलावा दूसरा रास्ता ही कहाँ है, दिखा सकती हो शारदा ?" थोड़ी देर रुककर वह फिर कहने लगा, "जिसके भाग्य में जो लिखा है, उसको वह होता ही है। संसार का यही नियम है। इसे मान न लेने से केवल व्यथा और दुःख बढ़ जाता है।"

"इसका मतलब यह है कि आप कहना चाहते हैं, रेणुका के भाग्य में जो है वही होगा ? हम लोगों की चिन्ता व्यर्थ है ?"

"यही बात है। उसकी भाग्यविडम्बना तो शैशव काल में शुरू हो गई थी। केवल तुम और मैं ही क्यों, कोई अब उसको सुख में नहीं रख सकेगा।"

"हां, बहुत ठोकरें खाकर यही मैंने समझ लिया है।"

शारदा चुप हो रही।

बहुत देर के बाद लम्बी साँस लेकर उसने कहा, "माँ इसे सहन न कर सकेंगी ऐसा जान पड़ता है।"

"इसका मतलब ?"

"आप चाहे जो कुछ भी कहें, शारदा को आप भुलावे में नहीं डाल सकते। जोर लगाकर निष्ठुर बनना आपकी तरह मनुष्य के लिए साध्य नहीं है। आप सब-कुछ जानते हैं, समझते हैं। आपके ज्ञान के सामने मेरा ज्ञान और मेरी बुद्धि तुच्छ है। मैं जानती हूँ, रेणुका की आज जो अवस्था है उसके लिए उसकी माँ ही उत्तरदायी हैं। लेकिन जो बात इस दुनिया में बहुत-से मनुष्यों के जीवन में, इच्छा से या अनिच्छा से हो जाती है, उसकी क्या कोई जवाबदेही रहती है ? स्वयं ही क्या वह उसका अर्थ खोज पाता है ?"

राखाल भावहीन शून्य दृष्टि से शारदा की ओर देखता रहा।

शारदा धीरे-धीरे कहने लगी, "तो आप सोचकर देखिए, उस दिन की माँ और आज की माँ एक नहीं हैं। दोनों में बहुत अन्तर है और जो कोई कुछ भी क्यों न समझे देवता, माँ का नई-माँ के रूप में परिचय आपसे अधिक और कौन जानता है ?"

राखाल के नेत्रों में और चेहरे पर गहन वेदना उतर आई थी।

शारदा ने मीठे स्वर में कहा, "माँ की तरफ अब मुझसे नहीं देखा जाता। कैसी थीं और अब कैसी होती जा रही हैं। हृदय की आग से जलते-जलते उनका शरीर और मन राख हो गया। खाना, पहनना छोड़कर गृहस्थी में मजदूरिन-रसोईदारिन से भी अधिक परिश्रम करते-करते चिन्ता में पड़ी-पड़ी अपने शरीर को नष्ट करती जा रही हैं, तो भी एक क्षण के लिए भी वे शांति नहीं पा रही हैं।"

राखाल निरुत्तर उदास नेत्रों से आँगन की तरफ देखता रहा।

शारदा ने कहा, "माँ के ऊपर आप विचार न करें। मेरा विश्वास है कि आपके अलावा माँ के हृदय की ज्वाला बुझाने की शक्ति किसी में भी नहीं है।"

"अब से तुम्हारी बातों पर चलने की चेष्टा करूँगा शारदा।"

शारदा ने गम्भीरता से कहा, "आप केवल मेरे जीवनदाता नहीं हैं, मेरे गुरु भी हैं। आपने ही मुझे दृष्टि दी है। आपने ही मुझे समझ दी है। आपके ही दृष्टिकोण की प्रेरणा से आज मेरा दृष्टिकोण भी बदल गया है। भगवान् साक्षी हैं कि यह बात मैंने अन्तःस्थल से कही है।"

छब्बीस

कलकत्ता!

सिंगापुर से लौट आए हैं विमल बाबू।

तारक के पत्र में सविता के शारीरिक विषय में उसको उन्होंने लिखा था, "नई-माँ जो काम करने से तृप्ति पाएँ उसमें बाधा पहुँचाना हम लोगों के लिए उचित नहीं है।" यह पत्र पाकर एक प्रकार से तारक को छुट्टी मिल गई।

तारक नई-माँ के रोज का अनियम, उपवास और परिश्रम का कठोर अत्याचार, किसी बात के लिए वह एक शब्द भी मुँह से नहीं निकालता। गम्भीर मुँह से और यथासम्भव चुप रहकर अपना स्नान, भोजन करके वह बाहर बैठकखाने में चला जाता है।

सविता हँस पड़ती हैं।

एक दिन उसे अपने पास बुलाकर उन्होंने कहा, "तारक, तुम माँ से अप्रसन्न हो गए हो बेटा?"

तारक ने उदास मुँह बनाकर उत्तर दिया, "यह अधिकार तो मुझे नहीं है नई-माँ।"

सविता ने स्नेहपूर्वक कहा, "छिः! ऐसी बात भी कही जाती है?"

तारक और भी कई टेढ़ी-सीधी बातें ठेस लगाकर सुनाने को तैयार हो गया था, लेकिन शारदा को आते देखकर हट गया।

वह चोखी तरह जानता है, नई-माँ कुछ भले ही न कहें, ऐसे अनेक अप्रिय सत्य हो सकते हैं कि अभी तुरन्त सुस्पष्ट हो जाएँ, जिनको सह लेना तारक के लिए अत्यन्त कठिन होगा।

विमल बाबू ने अपने कलकत्ता लौटने की खबर सविता के पास पहले पत्र और फिर तार द्वारा भेजी थी।

सविता से समाचार सुनकर उनका स्वागत करने के लिए तारक सवेरे जहाज घाट पर उपस्थित हो गया था।

तारक ने जाकर देखा, विमल बाबू की छोटी और बड़ी दोनों मोटर-गाड़ियाँ लेकर उनके मैनेजर, जमादार और दरबान आदि वहाँ उपस्थित हैं।

विमल बाबू ने तारक को अपनी गाड़ी में बुला लिया।

मोटर में विमल बाबू ने तारक से सबसे पहले यही प्रश्न किया कि राजू अच्छी तरह से तो है तारक?

तारक ने विस्मित होकर पूछा, "क्यों, उसे क्या हुआ है?"

"ना, यों ही पूछता हूँ। मैंने उसे लिखा था न कि यदि उसे कुछ असुविधा न हो तो यहाँ जेटी पर ही आकर मिल ले।"

क्षण-भर में ही तारक के मुँह की चमक बुझ गई। सूखे हुए गले से उसने प्रश्न किया, "शायद कोई आवश्यक प्रयोजन था।"

"हाँ। आया नहीं, यह देखकर जान पड़ता है या तो उसकी तबीयत खराब हो गई है या मेरी चिट्ठी नहीं मिली।"

तारक ने कहा, "ना, अभी परसों शाम को ही तो उसे मैंने अपने डेरे

पर देखा है।"

विमल बाबू ने कहा, "तो फिर सम्भवत: किसी काम में अटक जाने के कारण नहीं आ पाया।" ड्राइवर से कहा, "शिवचरण, पटलडांगा चलो।"

तारक ने कहा, "मुझे जरा पहले उतार दीजिएगा विमल बाबू। इस मुहल्ले में आज मेरा एक जरूरी कन्सल्टेशन है।"

"तो यह कहो कि तुम्हारी वकालत खूब चमक उठी है।"

"यह आपके आशीर्वाद से। प्राय: नित्य ही कोई-न-कोई मुकदमा रहता है।"

"अच्छा-अच्छा, तुम जीवन में उन्नति करो।"

तारक विनम्र हास्य के साथ विमल बाबू के पैर छूकर गाड़ी से उतर गया।

पटलडांगा में आकर देखा गया कि राखाल का डेरा डबल ताले से बन्द है। समाचार पाने का या पता लगाने का भी कोई उपाय वहाँ नहीं है।

विमल बाबू वहाँ से लौटकर सीधे सविता के मकान पर आकर उतर पड़े।

उनकी आवाज सुनकर शारदा ने चटपट बाहर निकलकर हँसते हुए चेहरे से प्रणाम किया।

विमल बाबू की ओर देखकर बोली,"आप बहुत दुबले हो गए हैं। काले भी बहुत हो गए हैं। उस देश की जलवायु शायद अच्छी नहीं है।"

विमल बाबू ने हँसकर जवाब दिया,"संसार-भर की माताओं की दृष्टि हमेशा से यही एक बात कहती आई है। लड़का कुछ दिन बाहर घूमकर जब घर लौटकर आता है, तब माताएँ उसे सिर से पैर तक देखकर, देह और माथे पर हाथ फेरकर कहेंगी कि आह, मेरा बच्चा आधा होकर लौटा है। इसका प्रमाण कहाँ है शारदा माँ, कि मैं पहले कम काला था या इससे ज्यादा मोटा था ?"

शारदा शरमा गई और विमल बाबू की बात टालकर बोली, "बैठिए, माँ को बुलाए देती हूँ।"

सविता स्वयं चौके से बाहर निकल आईं। मिल की अधमैली मोटी

धोती पहने थीं । शुभ्र ललाट से हटकर कानों के पास रूखे केश-गुच्छ काले रेशम की डोर की तरह डोल रहे थे । चेहरा पहले की अपेक्षा अधिक दुर्बल और शीर्ण हो गया था । बड़ी-बड़ी आँखें निष्प्रभ दृष्टि से दबी हुई विषाद की छाया थीं ।

विमल बाबू को यह आशा नहीं थी कि वह सविता के शरीर की दशा इतनी बुरी देखेंगे । इसी से चौंककर बोले, "यह क्या, तुम्हारा शरीर इतना अधिक कैसे बिगड़ गया ? बीमार तो नहीं हो गई थीं ?"

भोर के अँधेरे आकाश में जो पीला प्रकाश हुआ करता है, उसी की तरह हल्की हँसी के साथ सविता ने कहा,"बीमार तो नहीं हुई, लेकिन तुमने जो मुझे लिखा था कि जहाज से उतरकर अपने घर ही जाओगे । वहाँ नहा-धोकर, खा-पीकर विश्राम के बाद तीसरे पहर यहाँ आओगे । लेकिन यह तो देखती हूँ कि एकदम धूल-भरे पैरों से यहाँ पधारे हो ।"

शारदा और कहीं चली गई ।

जाती हुई शारदा की ओर दृष्टिपात करके गले को और जरा नीचा करके धीरे से विमल बाबू ने कहा,"धूल-भरे पैरों से ही देवी के दर्शन करने का शास्त्र-विधान है ।"

"यह बात है !"

"विश्वास न हो तो पुस्तिका खोलकर देख लो । मेरे प्रश्न का उत्तर दो ।"

"किस प्रश्न का ?"

"शरीर इतना अधिक क्यों बिगड़ा ?"

सविता के होंठों के कोनों में दबी हुई हँसी फूट उठी ।

विमल बाबू ने ही क्षण-भर पहले शारदा से जो कहा था, उसी की अविकल करके सविता ने कहा, "संसार के दयामयों की नजर हमेशा से असहाय, दीन-दुखियों के सम्बन्ध में यही एक बात कहती आ रही है ।"

सविता के मुँह से अपनी ही बात दोहराई जाती सुनकर विमल बाबू जोर से हँस पड़े ।

सविता भी हँसने लगीं । अस्पष्ट वेदना की छाया से घिरे हुए घर का आकाश और हवा की मलिनता जैसे बहुत दिन बाद आज उन्मुक्त हास्य

की स्वच्छ धारा से धुल गई।

विमल बाबू ने कहा, "तुमसे मैं हार मानता हूँ सवि···रेणु की माँ!"

'सविता' कहते-कहते विमल बाबू ने चटपट सँभलकर 'रेणु की माँ' कहा, इस पर लक्ष्य करके सविता जरा मुस्करा उठीं। फिर बोलीं, "कहाँ स्नान-भोजन करोगे? यहाँ या घर पर?"

"जहाँ तुम कहो।"

"घर ही जाओ।"

"वहाँ मेरी अपेक्षा करके बैठा रहने वाला कोई नहीं है, यह तुम जानती हो। हैं केवल नौकर-चाकर और कर्मचारी। दूर के नाते की एक मौसी अवश्य रहती है, अपने एक जड़-बुद्धि लड़के को लेकर। लेकिन उनके लिए मेरा आना प्रसन्नता की बात है या डर की, यह ठीक निर्णय करना कठिन है।"

"कुछ भी हो, घर ही जाओ। वहाँ चाहे जो हो, वे सभी तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, यह बिलकुल ठीक है। वह चाहे प्रीति से हो चाहे भीति से। सीधे यहाँ आकर ही उतरना अच्छा न दिखाई देगा।"

"शायद निन्दा होगी? किसकी होगी? तुम्हारी या मेरी?"

"तुम्हें किसकी जान पड़ती है?"

"होगी तो दोनों का नाम उसमें शामिल होगा।"

"तो अब अधिक देर क्यों करते हो?"

"सोचता हूँ कि मन की विशेष अवस्था में मिथ्या भी अनेक समय प्रशंसा से अधिक लुभावना होता है।"

"दार्शनिक तत्त्व रहने दो, अब घर जाओ।"

"जाता हूँ। लेकिन देखता हूँ तुम मुझे···।"

विमल बाबू के मुँह की बात छीनकर सविता ने कहा, "किसी तरह यहाँ से भगा पाऊँ तो चैन पड़े। यही न? हाँ, यही बात है। इस समय इसी की साधना कर रही हूँ दयामय।" उनका कण्ठस्वर बाद में कुछ भारी हो उठा।

विमल बाबू विचलित हुए।

अप्रत्याशित विस्मय से इस असावधान घड़ी में उनके मुख से निकल

पड़ा, "सविता !"

करुण हँसी के साथ विमल बाबू की ओर ताककर सविता ने कहा, "फिर सब बातें कहूँगी, इस समय कुछ न पूछो।"

"ना, मैं सब जाने बिना घर नहीं जाऊँगा। तुमको बताना होगा कि क्या है ?"

"तीसरे पहर आना, बताऊँगी। रात को बल्कि यहीं खाना। मैं आजकल अपने ही हाथ से भोजन बनाती हूँ।"

विमल बाबू ने कहा, "यही होगा। किन्तु देखो, उस समय मुझे ठगकर और बातों में न भुला देना।"

"डरो नहीं। जीवन में एक अपने को ठगने के सिवा किसी और को ठगा या धोखा दिया हो, याद नहीं पड़ता।" सविता का गला काँप उठा।

विमल बाबू ने लक्ष्य किया, सविता आज सहज हँसी के उत्तर में भी जैसे किसी एक भारी वेदना से गम्भीर हो उठती हैं। उससे यह समझने में गलती नहीं हुई कि यह उनके हृदय में छिपे हुए किसी एक विक्षोभ का ही भारी लक्षण है। इसी से और कोई भी बात न करके तीसरे पहर ही आने को कहकर विदा हो गए।

सन्ध्या से कुछ पहले विमल बाबू जब आए उस समय सविता इस बेला की रसोई बना चुकी थीं और संध्या का स्नान समाप्त करके साफ-सुथरे वस्त्र धारण किए तिमंजिले की छत पर एक डेक-चेयर पर बैठी थीं। सामने एक और कुर्सी रखी थी। शुभ्र कपड़े से ढकी एक छोटी तिपाई के ऊपर स्वच्छ काँच के गिलास में पीने का स्वच्छ पानी ढँका रखा था। एक डिब्बा विलायती सिगरेट, जिस ब्राण्ड का विमल बाबू हमेशा पीते हैं, रखा था। तिपाई के ऊपर एक दियासलाई की डिब्बी और राख झाड़ने की पीतल की चमचमाती ऐश-ट्रे।

विमल बाबू के आने पर कमल-नाल-से गौर-वर्ण शरीर को झुकाकर सविता ने उनके दोनों पैर छूकर प्रणाम किया।

विमल बाबू अन्यमनस्क होकर पीछे हट गए। बोले, "यह क्या करती हो ? यह क्या पागलपन है ?"

दोनों विशाल नयनों को उज्ज्वल करके सविता ने कहा, "पागलपन

नहीं, तुम्हारे प्रधान प्रश्न का यही उत्तर है। सवेरे आमंत्रण किया, संध्या को प्रणाम-निवेदन किया। अब तो और कुछ मुझसे नहीं पूछोगे दयामय?"

सविता के स्वर में एक अश्रुत-पूर्व माधुर्य बरस पड़ा। विमल बाबू जरा देर गुमसुम खड़े रहे।

उन्हें जान पड़ा कि यह जैसे वह पूर्व-परिचित सविता नहीं हैं जिनको असहाय अवस्था में रमणी बाबू के सुसज्जित भवन में उन्होंने दिन-पर-दिन निगूढ़ वेदना से मौन छाया के तले विषाद-भरी प्रतिमा की तरह बार-बार देखा है। आज भी सवेरे चौके के सामने जिनकी मलिन दुःखी मूर्ति को देखकर वेदना ने उनके हृदय को भीतर से मथ दिया था—यह जैसे वह सविता भी नहीं हैं। इस समय उनके खूब गोरे, क्षीण और कृश मुखमंडल में एक शान्त कोमल स्निग्धता थी। उस मुख में हृदय के आवेग की अत्यन्त अधिकता से उत्पन्न उच्छ्वास की दीप्ति या चमक न थी, शर्मीली प्रेमिका की प्रणय-सुलभ लज्जा के रंग की लालिमा नहीं थी। दोनों सुकुमार होंठों में प्रीति-स्निग्ध संयत हास्य की माधुर्यमयी सुषमा थी। दुःखपूर्ण दोनों शान्त नयनों में दूर तक फैलने वाली दृष्टि का विकास था। आज सकल अंगभंगी की प्रत्येक रेखा में एक ऐसी सुचारु, सुन्दर, अथ च मर्यादा-सूचक अभिव्यक्ति विकसित हो उठी है, जिसमें स्नेह और श्रद्धा की, विश्वास और निर्भरता की व्यंजना अत्यन्त सुस्पष्ट है। संसार में नारी की इस मूर्ति के दर्शन अत्यन्त दुर्लभ हैं। विमल बाबू ने अपने जीवन में नारी का ऐसा रूप और कहीं नहीं देखा।

आज सर्वप्रथम विमल बाबू को लगा कि वह इस जगत् में जिस स्तर के मनुष्य हैं, सविता उससे बहुत ऊपर के लोक की रहने वाली हैं। मानव-जीवन की जिस अन्तरतम अनुभूति ने, चरम दुर्योग या विपत्ति के बीच प्रत्यक्ष प्राप्त की गई जिस बुद्धि और अभिज्ञता ने, दुःख के दुर्गम पथ में क्षत-विक्षत पैरों वाले यात्री के जिस भूयोदर्शन या सूझ-बूझ ने आज सविता के भीतर-बाहर को घेरकर ऐसा एक गौरव का रूप खड़ा कर दिया है, जिसे यथेष्ट दूरी से सिर नवाकर केवल प्रणाम ही किया जा सकता है, उसके पास जाकर खड़ा नहीं हुआ जा सकता।

विमल बाबू के इस अभिभूत भाव को लक्ष्य करके, मन में संकुचित होने पर भी, मुख पर सहज भाव बनाए रखकर ही सविता ने कहा, "खड़े कब

तक रहोगे, बैठो !"

विमल बाबू चुपचाप कुर्सी पर बैठ अवश्य गए, किन्तु तव भी सविता की ओर एकटक देखते ही रहे।

उनकी इस दृष्टि में आज रूपमुग्ध की विह्वल व्याकुलता नहीं है, अनुरागी का श्रद्धायुक्त विस्मय है। यह जैसे वांछित देवमूर्ति के प्रति भक्त का प्रार्थना से सुन्दर सम्पूर्ण दर्शन है।

सविता ने संकुचित होकर कहा, "एकटक क्या देख रहे हो ?"

"तुम्हीं को देख रहा हूँ।"

"मुझे क्या कभी देखा नहीं ?"

"लगता है कि तुमको मैंने सचमुच ही कभी नहीं देखा। जिसे देखा है, वह इस समय की तुम नहीं हो।"

"वह कौन हूँ, मैं दयामय ?"

"वह और ही हो तुम। वह तुम हो दुःख के दुःख से विचलित और भूत, वर्तमान तथा भविष्य की चिन्ता से दुःखी। अपनी चिन्ता में अपने को खोए हुए असहाय तुम।"

"और आज की मैं ?"

"यह तुम और एक नई ही महिला हो। इस रूप को मैंने आज ही पहले-पहल देख पाया है। सचमुच ही इतने दिन इसके साथ मेरा परिचय नहीं था। सिंगापुर में तुम्हारी लिखी चिट्ठियों में इसकी पग-ध्वनि अवश्य मैंने सुन पाई थी—आज यहाँ आकर उसका अपूर्व आविर्भाव देखा।"

सविता हँसीं। वह हँसी उदास थी, गोधूलि समय के लाल-लाल प्रकाश में दूर से आया हुआ वंशी में बज रहा स्वर जैसे मनुष्य के चित्त को क्षणभर के लिए ही सही, अकारण उदास कर देता है, वैसे ही सविता की इस हँसी में वही क्षण-भर उदास बना देने का अनोखा जादू छिपा है।

सविता ने कहा, "क्या जाने, यह हो भी सकता है। एक ही जन्म में मनुष्य के कितने और जन्म हो जाते हैं।"

विमल बाबू कुछ बोले नहीं। विस्मित आँखों से लक्ष्य करने लगे, सविता एक कत्थई किनारी की दूधिया गर्द की साड़ी पहने हैं। अपने किसी काम से एक बार काशी जाकर विमल बाबू यह गर्द की साड़ी पूजा-आह्निक के

समय पहनने को ले आए थे। साड़ी पहनने के लिए विमल बाबू के जिद करने पर सविता ने हँसकर उत्तर दिया था, "अभी रहने दो। समय आने पर पहनूँगी।"

आज ही वह साड़ी पहनकर सविता विमल बाबू की प्रतीक्षा कर रही थीं।

विमल बाबू ने कहा, "पुनर्जन्म या जन्मान्तर मैं नहीं मानता था, किन्तु तुमने मुझे मनवा दिया। यह सच है कि इसी जीवन में मनुष्य का जन्मान्तर होता है, इसी से तो तुम्हें इतने दिन बाद मेरी दी हुई साड़ी पहनने का समय मेरे इसी जन्म में हुआ है।"

सविता को निरुत्तर देखकर विमल बाबू ने कहा, "शायद मैं भूल से कह रहा हूँ। 'समय हुआ है' न कहकर 'समय बीत गया' ही मुझे कहना चाहिए था—क्यों सवि···रेणु की माँ?"

विमल बाबू के प्रश्न का उत्तर टालकर सविता ने मुस्कराते हुए कहा, "लेकिन तुम यह तो बताओ कि यह विडम्बना और भी कितने दिन भोगोगे? भीतर से जो पुकार आप-से-आप निकल रही है, उसे बार-बार गला दबाकर, ठेलकर, हटाकर और मुख की पुकार को दोहराने की चेष्टा करते हो! इसमें कितनी बार तो तुमने ठोकर खाई है। तो भी न छोड़ोगे?"

विमल बाबू प्रतिभाहीन हो गए।

सविता कहने लगीं, "पहले कहा तुमने 'नई-बहू', वह तुम्हारे अपने मुँह की पुकार नहीं है। उस नाम से पहले जिन्होंने पुकारा, उन्हीं के मुँह से वह अच्छी मालूम देती है। तुम्हारे मुँह से वह बेसुरी सुनाई दी। उसके बाद तुमने 'रेणु की माँ' कहने की चेष्टा की। वह भी तुम्हारे मुँह में बार-बार बाधा पाती है, स्वाभाविक सहज भाव से निकल नहीं पाती, किसी दिन निकल भी न पाएगी।"

"तो फिर क्या कहकर पुकारूँ, तुम्हीं बता दो?"

"क्यों, यही सविता कहो न, जो सहज भाव से तुम्हारे मुँह में आ रही है।"

"खैर, न हो यही कहूँगा। लेकिन 'रेणु की माँ' कहकर पुकारने को एक दिन तुम्हीं ने तो मुझसे कहा था।—अच्छा, सच बताओ, अनजाने में

मैंने क्या किसी दिन इस सम्बोधन की मर्यादा को हानि पहुँचाई है ?"

"यह विचार तो तुम मन में भी न लाओ। इस नाम से पुकारने के लिए कहकर मैंने ही भूल की थी। तुम्हारे निकट तो मेरा वह परिचय नहीं है। इसी से यह सम्बोधन किसी भी दिन तुम्हारे कंठ में सजीव नहीं हो सका। देखो, अनेक दुःख पाकर अब एक बात मैं बहुत अच्छी तरह समझ पाई हूँ कि जिसका जो है, उसका वही अच्छा है। तुम्हारे मुख से 'सविता' सम्बोधन जितना सहज-सुन्दर है, वैसा और कुछ भी नहीं।"

विमल बाबू ने हँसकर कहा, "तो फिर मेरे हृदय के आनन्द के झरने में जिस नाम के बुलबुले उठते हैं और आप ही फूट-फूटकर विलीन हो जाते हैं अब उसी भाव से सम्बोधित करने की अनुमति मुझे दो। लेकिन जानती हो, बुलबुलों के उठने-फूटने का विराम नहीं है ?"

सविता—"जानती हूँ।"

विमल—"तुम क्या उसे सहन कर सकोगी रेणु की माँ ? भले ही वह जलबिन्दु का बुलबुला भर हो, तो भी भय होता है कि शायद तुमको चुभेगा।"

सविता के मुख पर छाया-सी उतर आई। बोलीं, "यही तो तुम लोगों का दोष है। औरतों के सम्पर्क में कभी, किसी दिन तुम लोग सहज नहीं हो पाते। या तो अतिभक्ति, अतिश्रद्धा से गद्‌गद होकर बड़े सम्मान और मर्यादा से स्त्रियों को बहुत ऊँचे पर बिठा देना चाहोगे और या एकदम नर-नारी के चिरकाल के सम्पर्क को खड़ा करके घनिष्ठता कर बैठोगे। नर और नारी के बीच मनुष्य का सहज सुन्दर सम्बन्ध क्या सचमुच ही नहीं स्थापित किया जा सकता ?"

विमल बाबू शान्त स्वर से बोले, "तुम्हारे और मेरे सम्बन्ध के बीच यह प्रश्न उठने का समय यद्यपि आज भी नहीं आया सविता, तथापि मैं तुमसे ही पूछता हूँ कि ऐसा क्यों होता है, बता सकती हो ?"

कुछ सोचकर सविता ने कहा, "ठीक नहीं जानती। परन्तु हाँ, अनुमान होता है कि शायद समाज-विधि की बुनियाद के नीचे इसका बीज बोया हुआ है। नहीं तो चारों ओर सभी क्षेत्रों में एक ही विषमय फल क्यों फलता है ? देखो, समाज के बाहर आकर आज मेरी नजर में समाज के कल्याण

और अकल्याण के दोनों पहलू बहुत ही स्पष्ट होकर प्रकट हो उठे हैं। उसके भीतर रहकर मैं उसके गुण और दोष के दोनों पहलू इस तरह नहीं देख पाई थी।"

विमल बाबू खूब मन लगाकर सविता की बात सुन रहे थे।

सविता कहती चली गईं, "मनुष्य अपने मन को लेकर कितनी बड़ाई करता है। किन्तु उसके विषय में वह कितना जानता है—कितना पहचानता है? जीवन-नाटक के प्रत्येक अंक में उसका रूप बदलता रहता है। यही देखो उस दिन तक भी मैं मन में यही सोचती आई हूँ कि मेरे समान स्वामी की भक्ति जगत् में कदाचित् और किसी स्त्री ने कभी नहीं की। स्वामी को मेरी तरह इतना प्यार-प्रेम भी शायद अन्य कोई स्त्री नहीं कर पाएगी। बाहर की दुनिया के विपरीत खबर जानने पर भी, अपने हृदय के भीतर का हाल तो मैं अच्छी तरह से जानती हूँ। किन्तु इतने दिन बाद आज मेरी वह धारणा बदल गई है। अपने अन्तःकरण का यथार्थ इतने दिन बाद समझ पा रही हूँ।"

विस्मित होकर विमल बाबू ने कहा, "क्या समझती हो सविता?"

कुछ-कुछ स्वगत-भाव से ही सविता ने कहा, "ठीक स्पष्ट करके उसे कहना कठिन है। आज केवल इतना ही अच्छी तरह समझ पा रही हूँ कि अन्तर की श्रद्धा, भक्ति तथा अधिकारगत धारणा और हृदय का प्रेम एक ही वस्तु नहीं है।"

"किन्तु मैंने सुना है कि अनेक समय श्रद्धा-भक्ति ही प्रेम की नींव बन जाती है।"

"हाँ, यह होता है। अनेक स्थान पर करुणा, ममता या संवेदना-सहानुभूति भी शायद प्रेम को खड़ा कर देती है। किन्तु मेरा विश्वास है कि नारी और पुरुष में परस्पर भीतर और बाहर का स्वाभाविक मेल न होने पर प्रेम उत्पन्न होने पर भी सार्थक नहीं होता। इसके सिवा और भी एक बात है। अनेक समय श्रद्धा-भक्ति को अथवा स्नेह-ममता को मनुष्य प्रेम समझ लेने की भूल भी करता है।"

"तुम क्या यह कहना चाहती हो कि स्नेह या ममता से जिस प्रेम का जन्म होता है, वह सत्य या सार्थक नहीं?"

"ऐसी बातें क्यों कहूँगी ? निश्चय ही वह सत्य है, और सत्य होने से ही सार्थक हुए बिना नहीं रह सकता। मैं भी कह सकती हूँ कि स्नेह या ममता यदि यथार्थ ही प्रेम में परिणत हो जाएँ तभी वह सत्य है। सागर में पहुँच पाने पर सभी जल एक जैसे हो जाते हैं—झरने का जल और नदी का जल भी।"

विमल बाबू सविता की ओर स्थिर दृष्टि करके बोले, "अच्छा, यह सब बातें तुमने जानीं किस तरह ?"

कुछ देर चुप रहकर सविता ने खुले आकाश में नजर फैलाकर कहा, "अपने विडंबित जीवन की सच्चाई से जानी हैं दयामय।"

विमल बाबू प्रश्नपूर्ण दृष्टि से सविता की ओर देखते रहे।

सविता ने कहा, "तुमको एक दिन अपनी सभी बात बताऊँगी।"

विमल बाबू ने उलाहने-भरे स्वर में कहा, "तुम सभी बातें और एक दिन कहने को कहकर एक किनारे रख देती हो। कब तुम्हारा वह 'और एक दिन' आएगा सविता, जो एक दिन तुमने कहा था कि तुमको अपने स्वामी की सब बातें सुनाऊँगी—उन्हें केवल मैं ही जानती हूँ और कोई नहीं।"

सविता ने कहा, "कहने की इच्छा होती है, लेकिन कह नहीं पाती। अपने को सँभालना कठिन हो जाता है। किन्तु वे सब बातें सुनकर लाभ ही क्या है ? अपनी इच्छा से स्वामी को छोड़कर जो स्त्री ऐसे अथाह पापसागर में कूद पड़ी है, उसका आज भी स्वामी के प्रति क्या मनोभाव है—यह जानने को शायद कौतूहल होता है ?"

"छीः-छीः, हँसी में भी ऐसी बात मुझसे तुम्हें न कहनी चाहिए—यह क्या तुम नहीं जानतीं सविता ?"

"जानती हूँ। क्षमा करना, तुमको अकारण ही मैंने चोट पहुँचाई। मेरे अपराध की कोई सीमा नहीं है।" इसके पश्चात् दुःखी हो सविता कुछ सोचने लगीं।

विमल बाबू मौन हो एक ओर निहारते रहे।

बहुत समय इस तरह चुपचाप बीत गया।

विमल बाबू ने पुकारा, "सविता !"

"बोलो ?"

"सच कहो, क्या तुम मुझसे डरती हो ?"

"डर ! डर किसलिए ?" सविता के स्वर में विस्मय की ध्वनि थी।

विमल बाबू को जवाब देने में इधर-उधर करते देखकर सविता ने मुरझाई हुई हँसी के साथ कहा, "तुमसे डरने के लिए तो मेरे पास अब कुछ भी बचा नहीं है। कौन-सी हानि शेष है अब, जिसके लिए डरूँ ?"

विमल बाबू ने कहा, "जीवन के ऊपर इतना दुःख और चाहे जो प्रकट करे तुम्हें न करने दूंगा। मनुष्य की सारी मर्यादा जीवन की किसी एक आकस्मिक दुर्घटना से बिलकुल भस्म नहीं हो जाती। मनुष्य जब तक जीता रहता है तब तक उसका सभी कुछ बना रहता है—कुछ भी समाप्त नहीं हो जाता।"

सविता चुप रहीं।

कितनी ही देर बाद स्थिर स्वर से बोलीं, "तुमसे मैं तनिक भी नहीं डरती। बल्कि इतने दिन तुम्हारे सम्बन्ध में अपने इस सम्पूर्ण निर्भर होने को ही डरती रही हूँ। अब वह भय भी मिट गया है। तुम पर मैं विश्वास करती हूँ। मुझे जान पड़ा है, संसार में शायद और कोई भी स्त्री इस प्रकार किसी अनजान पुरुष पर निःसंशय होकर विश्वास नहीं कर सकी।"

सविता ने जरा रुककर, आवाज और नीची करके, फिर कहा, "मैं जानती हूँ कि तुम मुझे कभी, किसी दिन, नीचे नहीं उतार सकोगे। पुरुषों के निकट स्त्रियों का अपमान और अवहेलना जिससे होती है वह तुम कभी न होने दोगे। सबसे बड़ी बात यह है कि मुझे समझने में तुमसे भूल नहीं हुई।"

विमल बाबू ने धीमी आवाज से कहा, "मनुष्य मनुष्य ही है, देवता तो नहीं है। अपने सब भले-बुरे, दोष-गुण, सफलता और दुर्बलता को लेकर ही उसका समग्र रूप है। अतएव उसके ऊपर क्या इतना अधिक विश्वास रखना संगत है ?"

सविता ने कहा, "नहीं जानती, संगत है और क्या असंगत ? बुद्धि से विचार करके इसे जानना भी नहीं चाहती। जो अपने अन्तर के भीतर एकांत भाव से अनुभव किया है, वह आपसे कह-भर दिया है।"

विमल बाबू ने कहा, "जानती हो सविता, तुम्हारे लगाव में आकर मुझे

क्या लाभ हुआ ? मैंने पहले-पहल यह अनुभव किया कि अकल्याण के भीतर से भी परम कल्याण आकर जीवन को छूता है।"

सविता ने कहा, "यह बात मानती हूँ। अकल्याण के मार्ग में ही, लम्बी यात्रा से थककर संध्या को, तुम्हारे साथ अचानक साक्षात्कार हुआ था, विरुद्ध समय के बीच अवांछित परिचय। भाग्य से उस दिन तुम मुझे देखने आए थे।"

विमल बाबू ने चोट खाकर अकृत्रिम दुःख के स्वर में कहा, "तुम्हारी यह धारणा सत्य नहीं है सविता। जीवन के अज्ञान-पथ में मनुष्य के साथ मनुष्य का गहन परिचय कब, किस दिन, किस प्रकार, कैसे हो जाता है यह कोई नहीं जानता। बात मैंने अपनी ही ओर से कही थी। इतने दिन अपने भूत के अंश की ओर दृष्टि डालने से मुझे वितृष्णा हुई है, घृणा, क्षोभ और लज्जा हुई है। कितनी ही बार सोचा है कि जीवन के अशुचि अंश को अगर किसी उपाय से धोकर निष्कलुष बना दिया जा सकता ! स्मृति की पुस्तक से इन ग्लानिमय दिनों के पृष्ठ को फाड़कर पृथक् किया जा सकता ! किन्तु आज सर्वप्रथम मन में आ रहा है कि भगवान् ने इस जीवन में उन दिनों की अमिट कालिमा अंकित करके कल्याण ही किया है।"

सविता ने विस्मित सिर उठाकर कहा, "इसका अर्थ ?"

विमल बाबू ने कहा, "समझ नहीं पाईं ? आज अपने लोभ के अपवित्र स्पर्श से मैं ही तुम्हारी रक्षा कर सकूँगा। मैं तुमको अपने जीवन के इस कलंकित आँगन में लाकर खड़ा कर सकूँगा, क्योंकि यहाँ तुम्हारा उपयुक्त आसन नहीं है।"

सविता ने अस्पष्ट स्वर में कहा, "सोने में दाग नहीं लगता दयामय ! हम नारियाँ ही कलंक के कण-मात्र स्पर्श से चिरमलिन निकृष्ट धातु की हो जाती हैं।"

विमल बाबू ने गम्भीर स्वर से कहा, "मैं यह जरा भी नहीं मानता। देखो सविता, तुम और जिसके लिए चाहे जो हो, मेरे जीवन में परम कल्याणरूपिणी ही हो। यह बात झूठ नहीं है। जीवन में मेरा बहुत-सी विचित्र नारियों से साक्षात् हुआ है। किन्तु तुम्हारे साथ हुआ है सुदर्शन। मेरे भीतर जो सत्य मनुष्य अब तक सो रहा है, उसे तुमने ही धक्का देकर

उस दिन जगा दिया, जिस दिन तुम्हारे स्वतः अभिजात प्रकृति के अपने स्वरूप को, उस विषण्ण, मुरझाए हुए, पश्चात्ताप-दग्ध, बल्कि सहज मर्यादा महिम रूप को पहली ही बार देखकर मैं पहचान सका। रमणी बाबू के आमोद-प्रमोद के बुलावे में देखने कुछ और ही गया था, लेकिन देखा उसके विपरीत। तुम्हारे जीवन के इतिहास ने सविता, आज मेरे अपने जीवन का 'क्षोभ' भुला दिया है। संसार में मेरी ही जैसी अनुभूति जिसे हुई है ऐसा आदमी वही पहले-पहल मैंने देखा—और वह हो तुम जो अपनी होने पर भी, स्वेच्छा से बिताने के लिए बाध्य हुई हो। यह अपने स्वभाव को दबाकर, पारिपार्श्विक अवस्था का अधिकार मिटाकर, आयु को किसी प्रकार समाप्ति की ओर खींच ले जाना ही तो है। अनुभूति के क्षेत्र में तुम और मैं, यहीं, एक ही स्थान पर आ खड़े हुए हैं। हो सकता है, इसी कारण तुम्हारे हृदय के साथ मेरी जो अन्तरंगता सम्भव न थी वह केवल सम्भव ही नहीं—सहज भी हो गई।"

सविता नीची दृष्टि किए सुन रही थीं, अब भी वैसे ही वह नीचे नयन किये हुए मौन रहीं।

विमल बाबू धीर कण्ठ से कहने लगे, "आज मेरे लिए जीवन की दिशा बदल गई है। मन की पुरानी धारणाओं के ऊपर जो बहुत दिनों की ढेर धूल जमा थी, वह बिलकुल साफ हो रही थी। बहुत लम्बे समय तक उपेक्षा से पड़े हुए शीशे के ऊपर जमे हुए मैल ने उसकी जिस स्वच्छता को ढक रखा था, वह जैसे आज किसी नई गृहलक्ष्मी के यत्नपूर्वक साफ करने से एकदम निर्मल हो उठा है। आज सारी पृथ्वी मुझे बिलकुल नई जान पड़ रही है। यह यौवन का वेग नहीं है, देह की नस-नस के तरुण रक्त का चंचल नृत्य नहीं है। यह मेरे हिम-कठिन अन्तर्लोक में मूर्छित पड़ी हुई आत्मा का जागरण है। हृदय के कुहासे से ढके आकाश में नवचेतना का प्रथम सूर्योदय है।"

सविता को यह कल्पना भी न थी कि स्वभाव से मितभाषी विमल बाबू इस प्रकार अपने हृदय की गहरी अनुभूतियों को भाषा में प्रकट कर सकते हैं। संसार में शायद सभी कुछ सम्भव है।

इसी से बहुत ही धीरे, प्रायः अस्पष्ट स्वगत उक्ति की तरह ही सविता कहने लगीं, "यह तो तुम्हारे मन की गढ़ी हुई मैं हूँ। उसके साथ सत्य की

जो मैं हूँ उसका मेल कितना है, इसका पता तुमको नहीं है और मैं भी नहीं जानती। खैर, वह जानाजानी न हो, भगवान् करें, जैसा तुमने मुझे देखा है, वह तुम्हारे हृदयपटल पर अमिट हो।"

सत्ताईस

राखाल कलकत्ता से बाहर था।

रेणु और ब्रज बाबू को वृन्दावन पहुंचाने गया था।

जब वह लौटकर विमल बाबू से मिला, तब उन्होंने उलाहना दिया; "एक दिन अपेक्षा करते तो मेरे साथ ब्रज बाबू का मिलन हो जाता। तुमने इसकी व्यवस्था क्यों नहीं की राजू? तुमको तो मैंने चिट्ठी लिखी थी।"

"वे लोग आपके मिलन को टालना चाहते थे।"

"इसका कारण?"

"यह तो मैं नहीं जानता। मगर हाँ, काका बाबू की अपेक्षा रेणु ही बहुत व्यस्त हो गई थी।"

"समझ गया।"

कुछ देर चुप रहकर विमल बाबू बोले, "वृन्दावन में उन लोगों को कहाँ रख आए हो?"

"गोविन्दजी के मन्दिर के पास ही एक गली में। घर बड़ा है, उसमें अनेक किरायेदार रहते हैं। इन लोगों के सोने के लिए दो कोठरियाँ ली हैं और रसोई के लिए थोड़ा-सा स्थान। किराया बहुत ही कम है।"

विमल बाबू ने चिन्तित मुख से कहा, "तुम्हारे सिवा तो उन लोगों को देखने-सुनने वाला और कोई वहाँ है नहीं। मैं सोचता हूँ, कम-से-कम कुछ दिन के लिए भी इस समय तुम्हारा वृन्दावन में जाकर रहना आवश्यक है।"

"इसके फलस्वरूप मेरी यहाँ की जीविका चली जाएगी।"

विमल बाबू सिर झुकाकर सोचने लगे।

कुछ समय यों ही चुपचाप कट गया।

राखाल ने कहा, "नहीं जानता, आप भाग्य को मानते हैं या नहीं,

किन्तु मैं मानता हूँ।"

राखाल की बात का उत्तर न देकर विमल बाबू बोले, "तुमने सुना होगा कि तारक हाईकोर्ट में वकालत करने लगा है। भविष्य में उन्नति करेगा ऐसा भी विश्वास है। वह बड़ा वनना चाहता है। यदि उसी के साथ रेणुका की शादी कर दी जाय तो भला कैसा रहे?"

राखाल विस्मित होकर केवल देखता ही रह गया।

विमल बाबू फिर कहने लगे, "तुम्हारी नई-माँ की यह इच्छा है।"

"लेकिन तारक?" राखाल ने मीठे स्वर में पूछा।

"उससे अभी नहीं पूछा है। तुम्हारी नई-माँ ने शायद उसे संकेत दिया हो। तुम्हारा क्या विचार है? तारक के सहमत न होने का तो कोई कारण नहीं दीखता। भली लड़की है। यह कभी कह सकते हो कि बाप गरीब है, लेकिन माँ के पास जो कुछ भी सम्पत्ति है, रेणुका की ही है और फिर तारक तुम्हारी नई-माँ पर श्रद्धा भी रखता है। उन्हीं के पास रहा है, ऐसी दशा में न मानने का तो कोई कारण ही नहीं है।"

राखाल चुप रहा।

विमल बाबू फिर बोले, "तुम्हें एक काम करना होगा राजू!"

"कौन-सा काम?"

"विवाह का प्रस्ताव तारक के सामने तुम्हें रखना होगा।"

"यह आप क्या कह रहे हैं और फिर रेणुका तो विवाह ही नहीं करना चाहती।"

"इसका दायित्व मुझ पर रहा। तुम तारक से पूछकर मुझे बतलाओ तो मैं वृन्दावन जाकर रेणुका को लिवा लाऊँगा।"

"लेकिन मुझे तो दोनों में से कोई भी शादी करने के लिए राजी होता दिखाई नहीं पड़ता।"

"तारक क्यों राजी नहीं होगा राजू?" आश्चर्य से विमल बाबू ने पूछा।

"इस बात को मैं समझा नहीं सकता, लेकिन मेरा विचार सच है।"

"तुम एक बार प्रयत्न तो करो राजू।"

"आपकी बात नहीं टालूंगा।" कहकर राखाल ने व्यथा से सिर झुका लिया।

बुढ़िया नानी आज कई दिन से अस्वस्थ है। काम नहीं कर पाती, इसलिए अपने नाती को भेज रखा है। सब काम करने वाला चुस्त लड़का है। काम करते-करते मन-ही-मन गुनगुनाता रहता है।

आज चार बजे जब इस लड़के ने आकर राखाल को जगाया तो वह अपनी आँखें मलता हुआ उठकर बैठ गया। फिर स्मरण हो आया कि भोजन तो उसने आज किया ही नहीं। न जाने किस विचारधारा में बहते-बहते निद्रा आ गई। घड़ी देखकर राखाल को अपने पर क्रोध आ गया। उसे जाने क्या हो गया है। घर-द्वार, काम-काज, स्वास्थ्य किसी चीज का भी ध्यान नहीं। यहाँ तक कि खाने-पीने की भी चिन्ता नहीं। आखिर ऐसा क्यों? उस जैसे गरीब आदमी को इस प्रकार के विचारों में चौबीस घंटे-भर के लिए परिश्रम करना आवश्यक है, वह जीवन के प्रति इतना उदासीन क्यों बना रहे? बार-बार इधर-उधर जाने से ट्यूशनें भी छूट गईं। सिर्फ एक बची है। वह भी इसलिए कि राखाल उन लोगों के लिए समय-असमय दूसरे काम भी कर देता है।

उसका सब लिखना-पढ़ना छूट गया। नाटक-मंडलियों के नाटक लिखना भी जाता रहा। बैंक या डाकखाने में एक पैसा भी न रहा। बनिया, हलवाई और दूध वाले का हिसाब शेष अवश्य है, लेकिन धोबी और दर्जी के बिल अभी चुकता नहीं हुए।

राखाल मुँह धोकर बोला, "जरा स्टोव जलाकर चाय का पानी तो चढ़ा दे, और जरा नुक्कड़ वाली दुकान से जाकर कुछ गरम समोसे ले आ, चाय के साथ खाने के लिए।"

नीलू समोसे लेने चला गया और राखाल स्टोव के पास बैठकर चाय बनाने लगा। मन में विचार आया कि अगर यह सब झंझट न करके शारदा के पास जाता और कहता कि बेमौके नींद आ गई थी, भोजन नहीं बना सका तो सब काम हो जाता, कुछ कहने की आवश्यकता न पड़ती।

सहसा कल्पना की, शारदा राखाल के नेत्रों के आगे व्याकुल स्नेह की प्रतिमा बनकर साकार हो उठी। राखाल के हृदय से एक दीर्घ निःश्वास निकला। नहीं, वहाँ जाना ठीक नहीं है। वह बेचारी इससे दुःखी होगी।

राखाल यह अच्छी प्रकार जानता है कि अपने हाथों से देवता की सेवा करने के लिए शारदा कितनी उत्सुक रहती है।

अट्ठाईस

शारदा और सविता में बातचीत हो रही थी। सविता ने कहा, "अपनी सुनापुरे की बात सुनाओ शारदा।"

शारदा ने सिलाई करते-करते कहा, "माँ, जिसने कभी एक बार आपको देखा है, उसे फिर यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि रेणुका आपकी बेटी है, सिर्फ शक्ल से ही वह आपकी बेटी नहीं, बुद्धि, मर्यादा, शील और हृदय से भी वह बिलकुल आपके ही समान है।"

"ऐसी बातें तुमने करना कहाँ सीखा है शारदा? यह तो तुम्हारी अपनी बातें नहीं मालूम देतीं।" सविता ने कहा।

शारदा ने लज्जा से सिर नीचा कर लिया।

सविता फिर कहने लगीं, "रेणुका के सम्बन्ध में तुमने और किसी के साथ बातें की हैं, ऐसा मालूम पड़ रहा है।"

"हाँ, रामपुर में रेणुका के सम्बन्ध में देवता के साथ बातें हुई थीं।" शारदा ने संकोच के साथ कहा।

सविता ने हँसकर शारदा के सिर पर स्नेह से हाथ फेरते हुए कहा, "तुम बहुत बुद्धिमान लड़की हो, मैं जानती हूँ।"

शारदा ने उत्साहित होकर कहा, "सच बात है माँ, इतनी भारी समानता मैंने बहुत कम देखी है। रेणुका तो ऐसी लगती है, जैसे आपके ही साँचे में भगवान् ने ढाला है।"

"ना-ना, ऐसी बात मत कहो शारदा! ईश्वर करे, मेरी तरह उसका कुछ भी न हो।" शंकित होकर सविता बोलीं।

"इस बात को छोड़िए, बाबूजी की बात बताऊँ?" शारदा ने कहा।

"अच्छा, सुनाओ।" सविता ने कहा।

"बाबूजी बहुत भले आदमी हैं माँ, लेकिन संसार में रहते हुए भी वे

संसार से उदासीन हैं। गोविन्दजी को लेकर ही पागल बने हुए हैं। देखने वाला हर कोई भी जान सकता है कि इस संसार में गोविन्दजी को छोड़कर और कोई भी वस्तु उन्हें प्रिय नहीं।"

"अपनी लड़की भी नहीं?" सविता ने पूछा।

"उन्होंने तो अपने हृदय का सब भाव, सब चिन्ताएँ इष्टदेव के चरणों में ही अर्पण कर दी हैं—लड़का भी इसके बाहर नहीं है, ऐसा मालूम पड़ता है।" गम्भीरता के साथ शारदा ने कहा।

सविता पाषाण-मूर्ति के समान बैठी रहीं।

शारदा ने सांत्वना दी, "दुःखी होकर भी मनुष्य क्या कर सकता है? इससे तो आदमी ईश्वर पर ही भरोसा करके रहे इसी में भला है।"

"यह तुम नहीं समझ पाओगी वेटी! तुम संतान की माँ नहीं हो। संतान क्या है, इसे पुरुष नहीं समझ सकता। रेणुका के सम्बन्ध में उनके समान निश्चिंत होकर नहीं बैठ सकती। चौबीसों घंटे गोविन्द-गोविन्द ने तो घर-द्वार सब नष्ट कर दिया, व्यापार की समाप्ति कर दी। अब भी उन्हें बुद्धि नहीं आती। वेटी का मुँह देखकर भी धर्मान्धता नहीं जाती। आज तक मैं यह जानती थी कि मेरे समान पति संसार में और किसी स्त्री के न हैं और न होंगे, लेकिन आज मानो मुझे भूल दिखाई पड़ी। अब मैं समझ गई हूँ कि मेरे पति के समान स्वयं सब-कुछ समझने वाले पुरुष संसार में थोड़े ही होंगे। अपनी स्त्री के प्रति, अपनी संतान के प्रति जो आदमी इस प्रकार अचेत और उदासीन रहता है, उसे शादी करने की क्या आवश्यकता थी? क्या शादी भी अपने गोविन्दजी के लिए ही की थी? जिसे तुम उनका महत्त्व कहती हो वह एकदम इससे उलटा है।"

"किसका महत्त्व उलटा है माँ?" राखाल ने घर में प्रवेश करते हुए पूछा।

सविता ने घूमकर उसकी तरफ देखा और शान्त स्वर में बोलीं, "तुम्हारे वावूजी का।"

पल-भर देखते-देखते राखाल का हँसमुख चेहरा गम्भीर हो गया। यह देखकर सविता मुस्कराकर बोलीं, "हमारा राजू अपने वावूजी की तनिक भी बुराई सहन नहीं कर सकता।"

"इसमें आश्चर्य की क्या बात है माँ ? लेकिन संसार में कहीं उनकी बुराई भी हो सकती है—यह क्या महान् आश्चर्य की वात नहीं ?" राजू ने कहा।

"राजू, मैं तेरे बाबूजी की बुराई नहीं करती, परन्तु आज···।" इतना कहते-कहते सविता मौन हो गईं।

"अव अधिक कुछ न कहिए माँ, मैं तो पुराना आदमी हूँ, आज की बातें मुझे मालूम नहीं और न कहना ही चाहता हूँ। जो कुछ पहले की बातें मालूम हैं—वे सब नष्ट-भ्रष्ट हो जाएँ, मुझे इसी की आशंका है।"

सविता फिर धीरे-धीरे बोलीं, "पागल लड़के ! एक समय की वात कभी भी हर समय के लिए नहीं हो सकती और इस धारणा को बलपूर्वक रोके रहने का अर्थ है कि आँखें होते हुए भी आँखें बन्द कर अन्धे बने रहना। दुनिया का एकमात्र यही नियम है।" इतना कहते-कहते सविता के चेहरे पर गम्भीर स्नेह की छाया छा गई।

शारदा की तरफ देखकर राखाल ने पूछा, "क्या तारक घर में है ?"

"आज तो कचहरी नहीं है। शायद नीचे अपने कमरे में होंगे।"

"तारक से मुझे कुछ आवश्यक काम है। मैं जा रहा हूँ नई-माँ।" राखाल ने कहा।

"चाय पीकर जाओ राजू। शारदा, तुमने आज जो कचौड़ियाँ बनाई हैं उन्हें राजू को चाय के साथ दे दो।" सविता बोलीं।

"वह तो शायद यह खाना नहीं चाहेंगे माँ, खाएँगे भी तो पसन्द न आएँगी।" शारदा ने हँसकर कहा।

राखाल की तबीयत ठीक नहीं थी, वरना शारदा की इस बात को लेकर उसे हराने के लिए राखाल बहुत-सी वातें सुनाता। मन दुःखी था इसलिए व्यथित कण्ठ से बोला, "ना, घर की वनी चीजें खाने की मेरी आदत नहीं है शारदा ! मन नहीं हो रहा है। जिसके लिए तुमने बनाई हैं, उसी को वे कचौड़ियाँ खिला देना।"

शारदा विस्फारित नेत्रों से राखाल की ओर देखती रह गई और उसका वह उतरा-उतरा मुख राखाल की दृष्टि में पड़ गया। मन के अन्दर मानो वेदना जागृत हो उठी। फिर भी मुँह से बिना कुछ कहे कमरे से बाहर

चला गया।

सविता ने शारदा की तरफ देखकर स्नेह-भरे स्वर में कहा, "उसकी बात से दुःख मत मानना शारदा ! मुझसे अप्रसन्न होकर ही वह तुम्हें कड़ी बातें सुना गया है। आजकल उसका मन ठिकाने नहीं है बेटी !"

शारदा विना कारण, विना अपराध के ऐसी भर्त्सना पाकर किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रही थी। सविता की सांत्वना पाकर अधिक नहीं रुका गया। रुकी हुई वेदना एकदम फूट पड़ी। सहसा झर-झर करके दोनों नयनों से जल गिरने लगा। आँसू विना रोके, आँसुओं से भीगा मुख लिए शारदा व्यथित स्वर में वोली, "मैंने ऐसा क्या अपराध कर डाला है माँ ! देवता चाहे किसी पर अप्रसन्न हों मुझी को छेद-छेदकर कटु बातें सुना जाते हैं !"

शारदा को अपने पास खींचकर सविता ने कहा, "वह तुम्हें बिलकुल अपना समझता है शारदा। तुमसे सचमुच प्रेम करता है। उसको अपना कहने के लिए दुनिया में भला कहीं कोई है शारदा ?"

आँसू अभी तक नहीं रुके थे। रुदन-भरे किन्तु अभिमान के स्वर में बोली, "मेरी ही दुनिया में सब कोई बैठे हैं न माँ ! मैं तो इस प्रकार जब-तब चाहे किसी बात का तीर नहीं मारती।"

"सबका स्वभाव एक-सा नहीं होता बेटी !" सविता ने हँसकर कहा।

शारदा ने चलते-चलते कहा, "यह बात वे भली प्रकार जानते हैं कि मैं सव-कुछ सहन कर सकती हूँ लेकिन उनका व्यंग्य किसी भी तरह सहन नहीं कर सकती। सब-कुछ जानते हुए उन्होंने मुझसे ऐसी-ऐसी बातें कहीं।"

उधर तारक की बैठक में घुसकर राखाल ने देखा कि बड़ी-सी मेज के आगे कुर्सी पर वैठा हुआ तारक किसी मुकदमे के कागजात बड़े गौर से पढ़ रहा है।

राखाल के जूतों की आवाज सुनकर सर उठाकर जब उसने देखा तो चकित होकर विस्मय-भरे कण्ठ से बोला, "ओह ! राखाल बाबू, आप हैं !"

कुर्सी पर वैठते हुए राखाल ने कहा, "क्यों, क्या मुझे आना नहीं चाहिए था ?"

"जरूर आना चाहिए था। तुम आते नहीं हो इसीलिए आश्चर्य कर रहा हूँ।"

"प्रायः आता तो रहता हूँ।"

"यह मैं जानता हूँ। लेकिन वह आना मेरे पास नहीं होता, अन्दर ही आते-जाते हो।"

"अन्दर से कोई बुलाता है, इसलिए अन्दर जाता हूँ।" राखाल ने हँसकर कहा।

"तब क्या आज इस बैठक के बुलाने से आए हो?"

"ना, आज बैठक से मुझे कुछ काम है।"

"किसी मुकदमे का काम है?"

"ना।"

तारक हँसने लगा। राखाल बोला, "सुना है, तुम्हारी वकालत अच्छी चल रही है।"

"किसने कहा तुमसे?" तारक ने पूछा।

"सुन लिया है। एक दिन दावत करनी पड़ेगी।"

तारक ने कहा, "क्या पागल हो गए हो? अभी तो केवल मुझे एक 'सीनियर' की जो कुछ वेगार होती है, उसी को गधे के समान ढोना पड़ता है।"

"ऐसी बात है! तब तो विमल बाबू ने गलत ही कहा।"

"विमल बाबू ने तुमसे यह बात कही थी?"

"हाँ।"

"उनसे तुम्हारा मिलाप कब हुआ? वे क्या कहते थे सुनाओ तो?"

"बहुत-सी बातें कहते थे। सुनने के लिए समय है?" राखाल ने हँसकर पूछा।

"है, तुम बताओ तो।"

"तो चलो, सामने वाले बगीचे में बैठकर बातचीत करेंगे।"

तारक जल्दी-जल्दी कागजात बाँधते हुए बोला, "जरा और ठहरो, चाय पीकर चलेंगे।"

"लेकिन मैं तो अभी अन्दर चाय न पीने को कहकर आया हूँ।"

"चाय के मामले में 'हाँ' या 'न' एक ही है।"

बदन पर कुर्ता और पैरों में चप्पल डाले तारक अन्दर से लौट आया।

उसके पीछे-पीछे नौकरानी 'ट्रे' में चाय और दो प्लेटों में कचौड़ियाँ लिए चली आई।

राखाल ने बिना कुछ बोले चाय का प्याला उठा लिया और कचौड़ियों वाली प्लेट अपनी ओर खींचकर खाना शुरू कर दिया और देखते-देखते ही खाली करके बोला, "तारक, अपनी चाय वाली नौकरानी को एक बार बुला दो।"

चाय का घूंट पीते-पीते तारक ने आवाज दी, "शिबू की मां ! जरा यहाँ तो आओ।"

नौकरानी लौटकर आई।

राखाल ने उससे कहा, "अन्दर जाकर कहो कि राजू बाबू के लिए थोड़ी-सी कचौड़ियाँ और चाहिए।"

नौकरानी के चले जाने पर तारक खाते-खाते हँसकर बोला, "राजू बाबू और कचौड़ियां खाना चाहते हैं, यह सुनकर शायद घर के अन्दर से एक टोकरी भरकर कचौड़ियाँ आ जाएँगी।"

दूसरे प्याले में चुस्की लगाकर राखाल ने कहा, "और जब यह मालूम होगा कि तारक बाबू और कचौड़ियाँ खाना चाहते हैं, यह सुनकर शायद एक गाड़ी कचौड़ियाँ आ जाएँगी।"

"फिर कचौड़ियां तो आएँगी ही नहीं। केवल यह सूचना आएगी कि कचौड़ियाँ समाप्त हो गईं और फिर अभी बाजार से गरम कचौड़ियाँ मँगा-कर भेजी जाएँगी।"

राखाल हँसकर बोला, "ऐसी बात है !"

तभी आधा घूंघट काढ़े एक अधेड़ नौकरानी ने आकर बड़े संकोच के साथ एक प्लेट गरम कचौड़ियाँ लाकर राखाल के आगे रख दीं।

"लो, देख लो। ठीक दर्जन के हिसाब से आई हैं।"

राखाल धीरे से हँसकर शिबू की माँ से बोला, "मैं तो राक्षस नहीं, मनुष्य हूँ। इतनी ढेर कचौड़ियाँ क्यों ले आईं?—लेकिन अब जब ले आई हो, तो मैं सभी खा लूंगा, लेकिन कचौड़ी तुम्हें बनानी नहीं आतीं। इतनी मिर्च भर दी हैं कि सारे पेट में आग-सी लग गई।"

"कचौड़ियाँ मैंने नहीं बनाईं, दीदी ने बनाई हैं।" लजाकर दासी बोली।

तारक के साथ जब राखाल पार्क में आकर बैठा तो दिन ढलने लगा था।

तारक बैठते हुए बोला, "आज बहुत दिनों के बाद इस तरह तुम्हारे साथ पार्क में आकर बैठना हुआ है।"

राखाल ने उत्तर में सूखी हँसी हँस दी।

तारक ने इसे लक्ष्य करके थोड़ा अनुभव तो किया लेकिन बात बदलकर बोला, "हाँ, अब सुनाओ। विमल बाबू से मेरे विषय में तुमने क्या सुना?"

"यही सुना था कि तुम बहुत अच्छे ढंग से काम करने वाले आदमी हो। तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है। तुम्हारे जैसे परिश्रमी और उद्योगी युवक के जीवन में उन्नति अवश्य होगी।" राखाल ने व्यंग्य बिल्कुल नहीं किया था। लेकिन उसके बोलने के भाव से तारक ने इस बात से यही समझा कि वह उसकी हँसी उड़ा रहा है। अन्दर-ही-अन्दर जल उठा, बाहर से शान्त कण्ठ से बोला, "तुम्हें बुलाकर एकाएक विमल बाबू के इन बातों के कहने का क्या अभिप्राय था?"

"यह सब मैं कैसे जान सकता हूँ?"

तारक ने गम्भीर होकर पूछा, "तुम्हें अभी और कुछ कहना है?"

"हाँ, कहना है।" राखाल ने कहा।

"कहो न। सन्ध्या को मस्त होकर पार्क में बैठकर वायु-सेवन के योग्य कोई बड़ा व्यक्ति मैं नहीं हूँ। तुम अपनी आँखों से अभी देख आए हो कि काम बीच में बन्द करके तुम्हारे साथ चला आया हूँ।"

तारक की इस बात पर हँसकर राखाल ने कहा, "जिनका वकालत पेशा हो, उन लोगों को इतनी अधीरता नहीं होनी चाहिए।" कुछ देर रुक-कर फिर बोला, "एक बहुत ही गम्भीर विषय में राय लेने के लिए तुम्हें यहाँ बुलाकर लाया हूँ।"

तारक मौन बैठा रहा।

"तुम्हारी शादी का प्रस्ताव लेकर आया हूँ।"

"क्यों व्यंग्य करते हो मुझसे!"

"व्यंग्य नहीं, वाकई मैं तुम्हारी शादी का प्रस्ताव लेकर आया हूँ।"

"तो फिर उस प्रस्ताव को आगे न बढ़ाकर यहीं समाप्त कर दो तो अच्छा है, क्योंकि शादी करने की मेरी इच्छा नहीं है और परिस्थिति भी ऐसी नहीं है।"

"यदि इस शादी से तुम्हारी परिस्थिति सुधर सके, तो?"

"तब भी नहीं, क्योंकि जब तक मैं स्वयं अपने पैरों पर खड़ा न हो जाऊँ तब तक शादी का उत्तरदायित्व नहीं पसन्द करता।"

"यदि इस शादी से धनोपार्जन में भी शीघ्रता से उन्नति हो, तब तो तुम्हें उज्र न होगा?"

"ऐसी कौन लड़की है? किसी वकील या बैरिस्टर की लड़की?"

"ना, बिलकुल दरिद्र-निराश्रय आदमी की लड़की है।"

"लेकिन तुमने तो अभी कहा था कि इस शादी से···।"

"हाँ, ठीक ही कह रहा था। गरीब की लड़की से शादी करने पर धन मिल जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं। मान लो, वह लड़की अपने धनवान् आत्मीय व्यक्ति की एकमात्र उत्तराधिकारिणी हो।"

"फिर भी वह लड़की है कौन?"

"पहले यह बताओ कि तुम सहमत हो या नहीं?"

"लड़की का परिचय बिना मालूम किए नहीं बता सकता।"

"क्या परिचय मालूम करना चाहते हो—सवाल करो, लड़की के वंश-कुल का परिचय, रूप, गुण और योग्यता?"

"पुरुष अपनी भावी पत्नी की सभी बातें मालूम करना चाहता है।"

"बहुत सुन्दर है। गुणवती, बुद्धिमती और सुशिक्षित है। उच्च ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुई। पिता किसी समय में धनी आदमी थे, लेकिन आज दिन हाथ में पैसा नहीं है। पिता का धन कुछ न होने पर भी लड़की अपनी माता का सब धन पाएगी। वह भी कोई छोटा-मोटा नहीं है। कुल, वर्ण, गोत्र के अनुसार तुम लोगों में उसका विवाह हो सकता है। हर प्रकार से वह किसी भी योग्य लड़के से विवाह करने के योग्य है।"

"लड़की के माता-पिता का नाम-पता और पेशा, क्या मैं जान सकता हूँ?"

"क्या इसी के ऊपर तुम्हारी 'हाँ', 'ना' निर्भर है ?"

"ना' और 'हाँ' पूरे नहीं तो कुछ अंशों में तो अवश्य इसी पर निर्भर है।"

राखाल कुछ देर चुप रहकर धीरे-धीरे वोला, "लड़की के पिता तुम्हारे लिए अपरिचित नहीं हैं। ब्रज बाबू की कन्या के विषय में ही कह रहा हूँ।"

तारक चौंक पड़ा। कहने लगा, "यह क्या ? तुम कौन-सी लड़की के सम्बन्ध में कह रहे हो ?"

"रेणुका के सम्बन्ध में।"

"तुम पागल तो नहीं हो गए हो राखाल ?"

"पागल हो गया होता तभी ठीक था।"

"तुम्हारे पागल होने में शेष ही क्या बचा है ? पागल न होते तो क्या नई-माँ की कन्या के साथ मेरी शादी का प्रस्ताव लेकर आते ?"

"लेकिन इसमें तुम्हारे इस प्रकार उत्तेजित होने की क्या बात है ?" राखाल ने कहा।

"बहुत बड़ी बात है। यह सब तुम्हारा रचा हुआ षड्यन्त्र है। मालूम पड़ता है, तुमने नई-माँ को भी यही राय दी है।"

"ना, उन्हें मेरी राय की कोई आवश्यकता नहीं है। उन्होंने तो बहुत पहले से ही तुम्हें चुन रखा है। मुझे यह बात मालूम भी न थी।" राखाल ने कहा।

"ऐसा नहीं हो सकता, झूठ बात है।"

"तारक ! तुम जानते हो कि मैं झूठ बात कभी नहीं कहता।"

"तुम्हीं रेणुका से शादी क्यों नहीं कर लेते।"

"मैं उसके योग्य नहीं हूँ—यह नई-माँ को मालूम है।" राखाल ने उत्तर दिया।

"और शायद मैं अभागा ही हर प्रकार से उनकी कन्या के लिए योग्य वर हूँ।"

"तुम इतना पढ़े-लिखे, परीक्षाएँ पास विद्वान् युवक हो। बुद्धिमान हो, स्वस्थ हो, चरित्रवान हो।"

"तुमने इतने बाण मारने से पहले यह नहीं विचार किया कि लड़की

को मैं अपने परिवार में पत्नी बनाकर नहीं रख सकता। गरीब होने का अर्थ इज्जत छोड़ना तो नहीं है।"

राखाल ने खिन्न स्वर में पुकारा, "तारक ! तारक !"

"सत्य बात कहने से क्यों डरते हो ? क्या तुम स्वयं इस लड़की को शादी करके घर ला सकते थे ?"

एकटक दृष्टि से तारक की तरफ देखकर राखाल बोला, "उसी लड़की की माँ के आश्रय में रहकर, उन्हीं की सब सहायता लेकर अपना भविष्य बनाते हुए तुम्हारे वंश की मर्यादा और कुल-गौरव उज्ज्वल हो उठा है। तारक, अपने मनुष्यत्व की हत्या करके यदि तुम अपनी उन्नति का रास्ता बना रहे हो तो यह अवश्य समझ लो कि वह रास्ता तुम्हें अवनति के गड्ढे में ही ले जाएगा।"

तारक झुँझलाकर बोला, "चुप ! मुँह सँभालकर बोलो राखाल ! मैं इन लोगों का हिसाब करके एक-एक पैसा लौटा दूंगा। इसी शर्त पर कर्ज के रूप में मैंने सहायता स्वीकार की है।"

"अच्छा, यह बात है ! तब फिर क्या बात है ? जिस दिन इन लोगों का कर्ज चुका दोगे उसी दिन शायद कृतज्ञता का सारा भार समाप्त हो जाएगा। थोड़ा-बहुत ब्याज और देना।"

तारक रूखे स्वर में बोला, "देखो राखाल, इन बातों को लेकर मेरे साथ मजाक मत करो। जिस काम को स्वयं नहीं कर सकते हो, उसी काम को करने के लिए दूसरों से कहते तुम्हें लज्जा नहीं लगती ?"

राखाल ने कहा, "मैं देखता हूँ तुम्हारे विषय में मैंने जो कल्पना की थी, वह ठीक ही थी। मैं तो पहले से ही जानता था कि तुम इसी प्रकार की कोई बात कहोगे। फिर भी जब मैंने यह सुना कि नई-माँ ने तुम्हें इस विषय में पहले ही थोड़ा-बहुत बतला दिया है तो मुझे आशा हो गई थी।"

तीखे स्वर में तारक ने कहा, "नई-माँ कभी ऐसी बात नहीं सोच सकतीं। उन्हें मालूम है, तारक राखाल नहीं है। इस प्रकार का प्रस्ताव राखाल के सामने रख सकती हैं, तारक के सामने नहीं।"

तारक उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना शीघ्रता से चला गया।

उन्तीस

अन्तिम बार विमल बाबू को सिंगापुर गए करीब डेढ़ साल हो गया, उसके बाद कलकत्ता फिर नहीं लौटे।

इन दोनों वर्षों में राखाल को लगभग छः-सात बार दौड़-दौड़कर वृन्दावन जाना पड़ा। इससे उसके काम-धाम में बहुत हानि हुई। दिन-दिन वह ऋण के जाल में जकड़ता जा रहा है और छुटकारे का कोई उपाय नहीं। स्वामी-पुत्री की आर्थिक सहायता करने के लिए सविता ने हजारों असफल प्रयत्न किए। जिनके लिए रमण बाबू की सहायता से जो सवा लाख रुपये की सम्पत्ति बहुत थोड़े दामों में सविता ने खरीदी थी, उन्होंने जब इस सम्पत्ति का स्पर्श तक न किया और भविष्य में भी किसी दिन स्पर्श करने की आशा न दिखाई दी तो सविता का दिल चकनाचूर हो गया। सील मोहर लगा जेवरों वाला बक्स बैंक में रेणुका के नाम से जमा करा दिया था। आज वह कल्पना भी स्वप्न हो गई।

सविता ने सोचा था कि यह सम्पत्ति वह दहेज के रूप में उसे देंगी। यह सम्पत्ति और किसी की नहीं, रेणुका के पिता की ही थी। उनकी यह इच्छा थी कि उनकी कन्या पूर्ण दाम्पत्य का सौभाग्य लेकर सुखी होगी और भरे-पूरे घर में रहकर सुखी जीवन व्यतीत करेगी। लेकिन जिसका भाग्य बुरा हो, उसकी अभिलाषाएँ सर्वदा नष्ट ही होती देखी गई हैं। आज इतने दिनों के बाद, सविता यह बात निश्चित रूप से जान सकी हैं कि पति और बेटी के जीवन में उनका कहीं तिलमात्र भी स्थान नहीं है। पर हाय, वह स्नेह का पात्र कहाँ हैं ?

आज शाम की डाक से एक पत्र मिला। यह पत्र विमल बाबू का था। उसमें लिखा था—

"सविता ! शारदा बेटी के छोटे से पत्र से मुझे पता चला कि तुम्हारा स्वास्थ्य खराब हो गया है। इस तरह तुम किसी दिन जरूर चारपाई पकड़ लोगी। बिगड़े स्वास्थ्य, अकर्मण्य जीवन बिताने का कष्ट मौत से भी बढ़कर होता है। तुम्हारी यही दशा रही तो आगे चलकर तुम्हें अत्यन्त कष्टकर

जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। इच्छा के विपरीत प्रयत्न करना मेरा स्वभाव नहीं है। इसीलिए तुम्हारी इच्छा के ऊपर अपनी इच्छा प्रकट करते हुए मैं दुःखी हो रहा हूँ। जीवित रहने वाले आदमी के लिए स्वास्थ्य कितना आवश्यक है—यह भी भूल गईं! कर्म-वेदना से अपनी सुध-बुध खोनी अच्छी नहीं। भूल करके आदमी अपने-आप ही यह समझ जाता है। लेकिन तब तक इतनी देर हो चुकती है कि फिर कोई उपाय ही शेष नहीं रहता। इसीलिए अनुरोध करता हूँ कि शरीर के प्रति लापरवाही मत करना।"

पत्र के अन्त में लिखा था, "तारक अपनी शादी की बात शायद तुम्हें बतलाए। इस शादी के विषय में तुम्हारा क्या विचार है? मेरी सम्मति और आशीर्वाद के लिए प्रार्थना करके उसने पत्र लिखा है। लड़की तारक के सीनियर वकील शिवशंकर बाबू की भतीजी है। यह विवाह उसकी वकालत की उन्नति में सहायक होगा।"

एक लम्बी साँस खींचकर सविता ने पत्र एक ओर रख दिया और फिर अपने काम में लग गईं। मन एकाएक रो उठा।

शाम को जब शारदा महिला शिक्षा सदन से लौटकर आई तो सविता ने उससे कहा, "एक शुभ समाचार सुना है शारदा! तुम्हारे तारक की शादी होगी।"

"कब होगी माँ? कहाँ से होगी? लड़की देखने में कैसी है?"

"यह सब तो नहीं मालूम बेटी, सुना है, तारक के सीनियर वकील शिवशंकर बाबू की भतीजी है।"

"यह क्या? आपको कुछ भी नहीं मालूम? फिर मालूम कैसे होगा?"

"समय आने पर सब मालूम हो जाएगा बेटी, मैंने तो अभी सिंगापुर से सूचना पाई है।" सविता हँसकर बोलीं।

"कैसे अजीब आदमी हैं तारक बाबू!" उदास चेहरे से शारदा ने कहा।

"वह मेरा बड़ा शर्मीला बेटा है। उसे दोष मत दो। विवाह की तैयारी करो।"

शारदा चुपचाप घर से बाहर हो गई।

डेढ़ साल से सविता ने शारदा को एक नारी-शिक्षालय में भर्ती करा

दिया है। वहाँ शारदा लिखना-पढ़ना, शिल्प-कला, बच्चों का पालन, सेवा-सुश्रूषा इत्यादि सीखती है। नौ बजे रोज स्कूल जाती है और पाँच बजे शाम को लौट आती है।

सविता उसके लिए भोजन लिए बैठी रहती हैं। तारक के साथ भी यही हाल है। उसके कचहरी से लौटने के पहले ही उसके विश्राम करने का और जलपान करने का प्रबन्ध अपने हाथों से किए बिना उन्हें संतोष नहीं होता।

तारक रोकता, पर वह जैसे सुन ही नहीं पातीं।

शारदा कहती है, "माँ, आपकी सेवा करने के लिए मैं आपके पास आई थी; पर आपने उलटी ही मेरी सेवा अपने हाथों में ले ली, यह मुझसे सहन नहीं हो सकता।"

सविता हँसकर कहती हैं, "बेटी, मुझे इसमें खुशी होती है। अपने पैरों पर खड़े होने का सहारा न होने पर नारी के लिए दुःखों का ठिकाना नहीं रहता, तुम्हें पढ़ा-लिखाकर अपना सहारा बनाना है।"

उस दिन रात को भोजन करते अचानक ही सविता उससे पूछ बैठीं, "तुम शादी कर रहे हो तारक?"

तारक ने विस्मय के साथ पूछा, "आपसे किसने कहा?"

"मेरे पास सिंगापुर से पत्र आया है।" सविता ने हँसकर कहा।

"हमारे घर की शादी की सूचना हमें समुद्र पार से मिली है।" शारदा ने कहा।

शारदा के इस व्यंग्य से तारक का हृदय जल उठा, लेकिन प्रकट कैसे करे?

सविता की तरफ देखकर कहा, "शिवशंकर बाबू अपनी भतीजी के लिए मेरे पीछे पड़े हैं। उन्हें मैंने निश्चित रूप से जवाब नहीं दिया है। अभी तक किसी से बात भी नहीं की। केवल विमल बाबू को परामर्श के लिए लिखा था।"

"यह सम्बन्ध तो तुम्हारे लिए हर तरह से ठीक ही है। ऐसे भले ससुर भाग्य से ही मिलते हैं। लड़की नापसन्द नहीं है, तो शुभ काम में देरी क्यों कर रहे हो?"

तारक संकुचित होकर बोला, "लेकिन शादी की कुछ अड़चनों के कारण जी चाहता है, मना कर दूं।"

"कैसी अड़चनें ?" सविता ने कहा।

शारदा के चेहरे पर अविश्वासपूर्वक हँसी आ गई। बोली, "माँ, मैं ऊपर जा रही हूँ।"

शारदा ऊपर चली गई।

तारक ने कहा, "शिवशंकर बाबू मेरे साथ अपनी भतीजी का विवाह करने के लिए बहुत उत्सुक हैं। पर उन्होंने कई शर्तें लगा रखी हैं। हालाँकि उन्हीं की जिम्मेदारी से मैंने इतने थोड़े दिनों में इतना नाम पा लिया है और आगे उन्हीं की सहायता से मेरी उन्नति होने की आशा है…।" लेकिन तारक आधी बात कहकर चुप रह गया।

सविता उसकी तरफ प्रश्नमय दृष्टि से ताकती रहीं।

थोड़ी देर ठहरकर फिर वह धीरे-धीरे बोला, "शिवशंकर बाबू की सबसे पहली और सबसे बड़ी शर्त यह है कि शादी के बाद कम-से-कम एक वर्ष तक मुझे उनके पास ही जाकर रहना पड़ेगा।"

"ऐसा क्यों ?"

"लड़की के पिता नहीं हैं। शिवशंकर बाबू के कोई अपनी कन्या नहीं है। इसीलिए…।"

"जान गई, भतीजी को ही बेटी करके पाला-पोसा है। शायद उसे अपने पास से दूर नहीं करना चाहते।"

"हाँ, उसे बेटी से अधिक स्नेह करते हैं। मुझसे कहा कि तुम यदि मेरे घर आकर रहोगे तो तुम्हें अपने काम में बहुत-सी सुविधाएँ मिलेंगी। फिर कुछ दिन के बाद तुम्हारा पृथक् मकान बनवा दूंगा।"

"इसमें तुम्हें क्या असुविधा है ?"

"असुविधा मेरे लिए कुछ भी नहीं है, यह कहना ठीक नहीं, बल्कि मुझे तो और सहायता मिलेगी। लेकिन मैं वहाँ कैसे जा सकता हूँ माँ ? आपकी देखभाल…।"

"अच्छा, ऐसी बात है ! लेकिन मेरे विषय में तुम कुछ चिन्ता न करो बेटा, मैं तो आज सवेरे ही सोच रही थी कि कुछ दिन कहीं बाहर ही रह

आऊँ, जीवन में आज तक तीर्थ नहीं कर सकी हूँ। सोचा था, अब तीर्थ कर आऊँ।" सविता हँसकर बोलीं।

"अकेले ही जाओगी ?"

"यदि मैं गई तो शारदा को भी साथ लेती जाऊँगी, न होगा तो स्कूल के होस्टल में ही उसको भर्ती कर दूंगी।"

"कब लौटोगी ?"

"अब कलकत्ते में लौटकर आने की आशा नहीं है। अगर उस ओर कोई जगह पसन्द आई तो वहीं एक छोटा-सा मकान खरीदकर रहूँगी।" साँस भरकर सविता बोलीं।

तारक चुप बैठा रहा।

सविता ने कहा, "शादी पक्की कर लो।"

"कुछ विचार लूं।" तारक ने कहा।

उसी रात को जब सविता पलंग पर लेटीं और शारदा मसहरी को चारों तरफ से ठीक कर रही थी तो सहसा वह शारदा से पूछ बैठीं, "शारदा वेटी, तुम्हारी पाठशाला की परीक्षा कब शुरू होगी ?"

"अभी तो ढाई महीना है।"

"कुछ दिनों के लिए मैं तीर्थ-भ्रमण करने जाना चाहती हूँ—तुम मेरे साथ चलोगी ?"

शारदा ने उत्साह-भरे कण्ठ से कहा, "हाँ-हाँ, जरूर चलूंगी। काशी को छोड़कर मैंने तो आज तक कोई तीर्थ नहीं देखा। गयाजी एक बार जरूर गई थी, लेकिन तब वहुत छोटी थी। हम लोग कब जाएँगे माँ ?"

"तारक की शादी के बाद कलकत्ता सदा के लिए छोड़ जाने की बात सोच रही हूँ।"

"मुझे तो अपने साथ ही रखिएगा न ?"

"ना वेटी, तुम्हें कलकत्ते लौट आना होगा।"

"क्यों माँ ?" शारदा का स्वर व्यथा से भरा था।

"तुम्हारी पढ़ाई अभी पूरी नहीं हुई। पढ़ाई पूरी करके मेरे पास आ जाना।"

शारदा उठ खड़ी हुई। न जाने क्या सोचती रही, फिर मलिन स्वर से

बोली, "मेरे लिए तीर्थ-भ्रमण आवश्यक नहीं है माँ।"

"क्यों? देश-देशान्तर में भ्रमण करने से बहुत-कुछ देखने को मिलेगा, बहुत-कुछ सीख जाओगी।"

"ना माँ, मैं नहीं जाऊँगी। यदि वे लोग मुझे देख लें।"

"कौन लोग?"

"मेरे पिता के घर के लोग।"

उसकी बात समझकर सविता ने कहा, "तो फिर मत जाना। यहीं रहकर लिखाई-पढ़ाई करना।"

"आपको छोड़कर रहने का मेरा साहस नहीं हो रहा है माँ, होस्टल में मुझे अकेली छोड़ते हुए आपको भय नहीं मालूम होता?"

"भय किसका? वहाँ तो तुम्हारी जैसी कितनी लड़कियाँ रहती हैं। राजू कलकत्ते में है। उससे कह जाऊँगी, तुम्हारी खोज-खबर लेता रहेगा। जब किसी वस्तु की आवश्यकता हो, उससे कह देना।"

अँधियारे मकान में सविता की चारपाई के पास खड़ी-खड़ी शारदा अस्पष्ट स्वर में पुकार उठी, "माँ!"

"क्या है शारदा, मैं तो जाग रही हूँ!"

"आज मुझे अपनी सारी कहानी आपसे कहने की इच्छा हो रही है।"

"रात बहुत हो गई बेटी, फिर किसी समय कहना। अब सो जाओ।"

"जा तो रही हूँ—माँ, मैं ग्यारह वर्ष की आयु में विधवा हो गई थी। ससुराल फिर नहीं गई। बहुत छोटी थी तभी माँ मर गई। पिताजी ने दूसरी शादी कर ली…।"

सविता बीच में बोलीं, "तुम्हें कुछ सुनाने की आवश्यकता नहीं शारदा, मुझे सब मालूम है।"

अगले दिन सविता ने विमल बाबू को यह पत्र लिखा, "कहीं बहुत दूर चले जाने के लिए मेरा मन दिन-रात बेचैन हो रहा है। बहुत सोच-विचार के बाद मैंने तीर्थाटन करने का निश्चय किया है। कलकत्ते फिर लौटने का मन नहीं है। मन हो रहा है, निरुद्देश्य होकर घूमते-घूमते जहाँ जिस स्थान पर मन लगे, वहीं रह जाऊँ। तारक के भावी ससुर उसे अपने पास ही रखना चाहते हैं। वकालत में सहायता देने के लिए और आगे चलकर

उसका घर बसा देने के लिए उत्तरदायित्व लेने को तैयार हैं। मैंने तारक को इस व्यवस्था के लिए राय दे दी है। शारदा पढ़ाई समाप्त होने तक पाठशाला के होस्टल में रहेगी। पढ़ाई समाप्त करके यदि इच्छा हुई तो मेरे पास आ सकती है। अपने राजू का कुछ प्रबन्ध नहीं कर पाई हूँ। वह कुछ दिन से काफी कर्जे में फँसा हुआ है। मेरी या किसी दूसरे की सहायता लेना उसे किसी प्रकार स्वीकार नहीं। उससे अनुरोध करने का भी मेरा साहस नहीं पड़ता। राजू को मैं अपने साथ ले जाऊँ इसका भी कोई मार्ग नहीं है, क्योंकि उसे बार-बार वृन्दावन जाना पड़ता है। कब उसे वृन्दावन बुला लिया जाए, पता नहीं। तारक को अदालत का काम छोड़ना असम्भव है, यह तुम जानते हो। इसीलिए पुराने दरबान और शिबू की माँ को साथ ले जाना है। कुछ दिन तो इधर-उधर घूमूंगी, उसके बाद किसी एक स्थान पर जमकर रहूँगी।"

उस दिन पाठशाला की किसी कारण से छुट्टी हो गई। शारदा दोपहर के एक बजे ही लौट आई।

सविता उस समय दर्शन के लिए दक्षिणेश्वर गई हुई थीं।

शारदा अकेली घर में बैठकर इतिहास की किताब पढ़ने में लग गई। इतने में ही द्वार से पुकार आई, "नई-माँ !" शारदा ने सुनकर द्वार खोल दिया। आने वाला वह व्यक्ति राखाल था।

"यह क्या बात ? आज तुम्हारी छुट्टी थी क्या ?"

"ना। आप आज यहाँ आएँगे इसी कारण छुट्टी हो गई।" शारदा ने व्यंग्य की हँसी हँसकर कहा।

"इस प्रकार की बातें करते तुम्हें शर्म नहीं आती ?" गम्भीरतापूर्वक राखाल ने कहा।

"जरा भी नहीं।" शारदा ने मुस्कराकर कहा।

"नई-माँ क्या कर रही हैं ? उनसे मुझे कुछ आवश्यक काम है।" सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते राखाल ने कहा।

"उनसे मिलने के लिए तो शाम तक रुकना होगा।"

"क्या वे घर पर नहीं हैं ?"

"आज उनका व्रत है। वह दक्षिणेश्वर दर्शन करने गई हैं।"

"आज कौन-सा व्रत है?"

"यह तो कुछ बतलाया नहीं। यही कहा कि व्रत है।"

"इतने व्रत-उपवास जाने कहाँ से चले आते हैं।"

"लेकिन मैं इसका कारण जानती हूँ, देवता।"

"बतलाओ न!" आश्चर्य से राखाल ने पूछा।

"आज रेणुका की सालगिरह है।"

"ठीक बात है। शायद तुमसे माँ ने बतलाया होगा।"

शारदा ने कहा, "सिर्फ इतना ही नहीं, आज के दिन माँ गरीब-दुखियों को दान भी देती हैं। रुपये-पैसे, नए कपड़े, कम्बल, अलवान यह सभी तो देती ही हैं, इसके अतिरिक्त अपनी पसन्द की सुन्दर-सुन्दर साड़ियाँ, रंगीन धोतियाँ, ब्लाउज, कुर्ती, यह सब खरीद लाकर भिखारिन की लड़कियों को दे देती हैं। घर पर नहीं बाँटतीं और कहीं जाकर बाँट आती हैं। जैसे—कालीघाट है, दक्षिणेश्वर है, गंगाघाट है, ऐसी ही किसी जगह।"

राखाल कुछ नहीं बोला। उदास मन से जाने क्या सोचता रहा।

"क्या आपने सुना है कि माँ कलकत्ते का घर सदा के लिए छोड़कर और किसी जगह जा रही हैं?" शारदा ने कहा।

"कहाँ जा रही हैं?" राखाल ने पूछा।

"पहले तीर्थ करेंगी और फिर कहीं किसी स्थान पर जाकर रहने लगेंगी।"

"कब जाएँगी?" राखाल ने पूछा।

"तारक की शादी हो जाने के बाद।"

"तारक की शादी? कहाँ से?" राखाल ने विस्मित होकर पूछा।

शारदा ने खोलकर सब कथा सुना दी।

राखाल ने कहा, "तारक क्या घर-जमाई बनने को राजी हो गया?"

"केवल एक वर्ष के लिए। इसके पश्चात् शिव बाबू, उनके ससुर, उनके लिए अलग घर देकर उनकी गृहस्थी बसा देंगे।"

राखाल ने हँसकर कहा, "फिर तो समझो तारक को राजकुमारी ही नहीं, आधा राज्य भी मिलेगा।"

"यह सुनकर आपको दुःख अवश्य हो रहा होगा, देवता।" शारदा हँसी

के स्वर में बोली।

राखाल ने इस व्यंग्य का उत्तर नहीं दिया। खोया-खोया-सा जाने क्या सोचने लगा।

"आप भी शादी क्यों नहीं कर लेते देवता?" शारदा ने विनती के स्वर में कहा।

राखाल कहकहा मारकर हँस पड़ा और फिर बोला, "क्या तारक का मुकाबला करने को शादी कर लूँ, शारदा?"

शारदा ने कहा, "इसमें मुकाबले की क्या बात है? क्या जीवन-भर इस प्रकार होटल में ही खाते रहोगे? गृहस्थी बसाने का मन ही नहीं है आपका?"

"मन होने से ही क्या हर व्यक्ति गृहस्थी बसा सकता है?"

राखाल जरा अनमना-सा होकर बोला, "क्या यह सत्य नहीं है कि एक दरिद्र दुखिया होते हुए भी, अभाव होते हुए भी, एक व्यक्ति गृहस्थी बसाने में सफल होता है और दूसरा धनी होने पर भी नहीं बसा पाता? अपनी ही तरफ विचार करके देखो। तुम्हारे प्रयत्न में कोई कमी नहीं रही लेकिन क्या तुम गृहस्थी बसा सकी हो?"

"मेरी बात रहने दीजिए। इतनी कम आयु में यदि विधवा न हो गई होती तो आज मेरी भरी-पूरी गृहस्थी होती। फिर नये सिरे से गृहस्थी बसानी चाही, लेकिन भगवान् से सहा नहीं गया, इसके लिए मैं क्या कर सकती हूँ?"

"इसी से तुम्हें जान लेना चाहिए कि यह भाग्य पर ही निर्भर है, शारदा!"

"शादी करने पर अगर आप गृहस्थी नहीं बसा पाते या घर बसाते ही बहू मर जाती या और कोई बात होती; तब मैं आपकी यह बात मान लेती। लेकिन आपने तो आज तक इसके लिए कभी प्रयत्न नहीं किया।"

"प्रयत्न करने से क्या होता है। यह सब इतिहास-भूगोल पढ़ना और गलीचा-दरी बुनना छोड़कर अब तुम कुछ दिन 'लॉजिक' पढ़ो।" राखाल ने कहा।

"लेकिन मुझे 'लॉजिक' पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। मुझसे तर्क

करके देखिए, कितनी जल्दी आपको परास्त कर देती हूँ।"

राखाल हाथ जोड़कर मुस्कराते हुए बोला, "मैं तुमसे हार मानता हूँ देवी! एक तो स्त्री और उसके ऊपर से बहुत कम शिक्षा, ऐसी दशा में कैसी भयंकर स्थिति होती है, वह बात मैं जानता हूँ। 'तर्क-शास्त्र' को बनाने वाले ऋषि-महर्षि और विद्वान् अगर स्वयं आकर तर्क करें तो वे भी तुमसे हार जाएँगे। इस चर्चा को छोड़कर काम की बात करो। नई-माँ अगर कलकत्ते का रहना छोड़कर तीर्थ-यात्रा करने जाएँगी तो तुम्हारा क्या होगा? क्या तुम भी नई-माँ के साथ ही जाओगी?"

"मान लो, यदि जाऊँ तो आप इससे प्रसन्न होंगे या अप्रसन्न?" शारदा ने हँसकर कहा।

"प्रसन्न न भी होऊँ, लेकिन अप्रसन्न होने का मेरा क्या अधिकार है?" राखाल ने कहा।

"यदि आपको अधिकार मिल जाए, तब?"

राखाल ने हँसकर कहा, "यह इतनी छोटी वस्तु नहीं है। अधिकार तो इस ढंग की वस्तु है जो दान के रूप में मिलने पर बहुत निर्बल होती है, इससे उसकी ज्ञान भी नहीं रहती। अधिकार अपनी जगह पर ही अपना प्रभाव रखता है।"

शारदा ने कहा, "तो फिर मुझे भी अनधिकार चेष्टा की बात नहीं करनी चाहिए। लेकिन मेरे माँ के साथ जाने से आप प्रसन्न होंगे, यह स्पष्ट ज्ञात होता है।"

"लेकिन यह बात तुम्हारे ही लाभ के कारण मेरे मन में है, शारदा।" इतना कहते-कहते राखाल का चेहरा गम्भीर हो गया, बोला, "इसमें मेरा अपना कुछ अर्थ है, यह सपने में भी मत सोचना।"

शारदा ने उदास होकर दूसरी तरफ मुंह करके कहा, "दुनिया में किस आदमी का किस बात में मतलब है, यह मेरे लिए समझना कठिन है, देवता! और न मैं समझना ही चाहती हूँ।"

"मैं असत्य नहीं कहता शारदा।" राखाल व्यथित होकर बोला।

शारदा ने हँसकर कहा, "मेरी पढ़ाई पूरी न होने तक मुझे स्कूल के होस्टल में ही रखने का माँ का विचार है।"

"ठीक तो है।" राखाल ने कहा।

शारदा का मुँह उदास हो गया। कुछ भारी स्वर में बोली, "लेकिन मुझे तो यह स्कूल बिल्कुल पसन्द नहीं, देवता!"

"ऐसा क्यों ?" आश्चर्य से राखाल ने पूछा।

शारदा सिर झुकाकर चुप हो गई।

राखाल ने फिर कहा, "काम सीखने में तो तुम्हें अच्छा लगना चाहिए, प्रसन्नता होनी चाहिए।"

"मुझे तो कुछ सीखना पसन्द नहीं।" शारदा ने कहा।

"फिर तुम्हें क्या पसन्द है ?" राखाल ने विस्मित होकर पूछा।

"यह बतलाने से कोई लाभ नहीं है। आप सुनकर व्यंग्य करेंगे।" शारदा ने उदास होकर कहा।

"तुम्हारे जीवन की सुख-दुःख की बात को लेकर व्यंग्य करूँ, मैं ऐसा नीच नहीं हूं, शारदा!"

"ऐसी बात नहीं है देवता! मुझे क्या अच्छा लगता है, यह बात मैं स्वयं नहीं समझ पाती। सिर्फ इतना ही कह सकती हूँ कि मशीन के समान स्कूल जाना, पढ़ना-लिखना, दस्तकारी सीखना, इनकी जगह पर मुझे गृहस्थी का काम ही अधिक पसन्द है। घर को ठीक-ठीक करके सजाकर रखना और हर प्रकार से प्रबन्ध करना इससे बढ़कर मुझे और कुछ अच्छा नहीं लगता है। इन कामों के करने में मेरे उत्साह का जैसे अन्त नहीं। छोटे-छोटे बच्चे मेरे लिए सबसे अधिक प्रसन्नता की चीजें हैं। नई-माँ के उस घर में रहती थी तब किरायेदारों के सारे बच्चे ही पास सो जाते थे। अपने हाथों से अपने आदमी की सेवा करने में कितनी तृप्ति और कितना आनन्द मिलता है, इस बात को नारी के अलावा और कोई नहीं समझ सकता।"

"अपना मकान न होने के कारण गृहस्थी की तरफ तुम्हारा इस प्रकार झुकाव है शारदा!" राखाल ने दुःखी होकर कहा।

"शायद ऐसी ही बात हो। इसीलिए तो आपसे प्रार्थना करती हूँ, देवता कि आप शादी कर लीजिए। गृहस्थ हो जाइए। मैं आपकी गृहस्थी लेकर जीवित रहूँगी। दोनों प्राणियों की अपने तन-मन-प्राण से सेवा करूँगी। अपने हाथों से घर को ऐसी सुन्दरता से सजाकर रखूँगी कि कोई

आकर देखे तो दंग रह जाय और इसके बाद बाल-बच्चों का सारा भार मैं अपने सिर पर लिए रहूँगी। यह जो सिलाई-बुनाई मैं इतना परिश्रम करके सीख रही हूँ, यह क्या मैं सचमुच ही अस्पताल में जाकर या लोगों के द्वार-द्वार भटककर नौकरी के स्वार्थ से सीख रही हूँ? ऐसा मत सोचिएगा देवता! मैं आपकी शादी करवाकर रहूँगी। स्वयं लड़की पसन्द करूँगी। घर की व्यवस्था करूँगी। बाल-बच्चों को पाल-पोसकर आदमी बनाऊँगी। ईश्वर न करें ऐसा दिन आए, कभी यदि घर में अभाव आ पड़े, गरीबी आ घेरे, तो किसी के आगे जाकर हाथ नहीं पसारने दूँगी, मैं स्वयं नौकरी करके जैसे भी हो, सँभाल लूंगी।"

"शारदा, क्या तुम यही सोचकर स्कूल में दाखिल हुई हो?" राखाल ने बहुत उत्सुकता से पूछा।

राखाल के चेहरे की तरफ देखकर शारदा ने कहा, "आपके होते हुए क्या मैं सचमुच पेट के लिए दूसरे के द्वार पर जाकर हाथ पसारकर नौकरी करके रह सकूँगी! भला मैं क्यों जाऊँगी?" इतना कहते-कहते उसका स्वर काँप उठा।

शारदा के मुख पर पूरी दृष्टि डालकर राखाल धीमे स्वर में बोला, "शारदा, यह क्या कह रही हो, अपना सारा जीवन इसी तरह दूसरे की गृहस्थी बनाने में बिता दोगी? अपना पति नहीं, अपनी सन्तान नहीं, अपना घर नहीं—क्या तुम अपने जीवन में प्रसन्न रह पाओगी?"

"आपसे तर्क करके यह बात नहीं समझा सकती देवता! मैं तो यही जानती हूँ कि नारी के लिए उसका पति, सन्तान, गृहस्थी, यही वस्तुएँ उसके जीवन की सबसे बड़ी आकांक्षा की वस्तु हैं। जो नारी वास्तव में इन चीजों को प्यार करती है, वह नारी कभी इनमें जरा भी कालिमा न लगने देगी। कोई भी नारी यह नहीं चाहती कि उसकी अपनी सन्तान के माथे पर माँ-बाप के किसी कलंक की छाप लगे। मेरे जीवन में अपवित्रता का धब्बा लग चुका है। अपने पति, अपने पुत्र को हीन करके मैं स्त्री बनूं, इतनी स्वार्थी मैं नहीं हूँ। पति को नहीं पा सकी, सन्तान को नहीं पा सकी, लेकिन जिन्हें हृदय से स्नेह करती हूँ, भक्ति करती हूँ, उनकी सन्तान क्या अपनी सन्तान से कम स्नेह की वस्तु है? उनका घर-द्वार क्या अपने घर-

द्वार से कम प्रसन्नता का होगा ?''

राखाल चुपचाप पाषाण-मूर्ति के समान सुनता रहा।

कुछ देर तक रुककर फिर शारादा बोली, "मैं पागल नहीं हूँ, देवता। आप शादी कर लीजिए। आपकी बहू को मैं प्यार कर सकूँगी, वही बहू मुझे सब-कुछ देगी। अपना घर, अपनी सन्तान, अपने सम्पूर्ण सुख के सब सामान मैं उसी से पा जाऊँगी।"

राखाल विचारों में डूबता-उतराता रहा।

अन्त में सिर उठाकर गम्भीरता से कहा, "तुम्हारे इतने अनुरोध से आज मैं सचमुच ही अपने भविष्य-जीवन के विषय में विचार करने पर लाचार हो गया हूँ। अभी जा रहा हूँ। कभी आऊँगा, तब फिर सोचूँगा। नई-माँ आएँ तो कहना कि मैं आया था। उन्हें मेरा नमस्कार कहना।"

तीस

तारक का विवाह हो गया।

विमल बाबू के साथ तीर्थ-भ्रमण करने के लिए सविता तैयार हो गई हैं। कल वे लोग रवाना हो जाएंगे। पुराने दीवान महादेव के अलावा एक दासी और मिसरानी भी साथ जाएगी।

सविता ने राखाल को बुलाया और उसके हाथ में अपने पति का दिया हुआ मोहरवन्द गहनों का बक्स देकर कहा, "लो, ये रेणुका के जेवर हैं। वह यदि इन्हें न लेना चाहे तो तुम जगत् की मातृहीन लड़कियों के बीच में इन्हें बाँट देना। जिसके लिए इतने दिनों तक यह सब जोड़कर रखे रही, वही आज परम दरिद्र होकर जीवन काट रही है तो मैं अब और क्यों इस भार को लेकर मरती रहूँ। डेढ़ लाख रुपये की जो सम्पत्ति रेणुका के नाम रजिस्ट्री कर दी है, यह लो उसके कागजात। इस सम्पत्ति को भी यदि ग्रहण न करे तो फिर तुम्हें जो अच्छा लगे वह प्रबन्ध इसका कर देना और यह कई हजार के कम्पनी के शेयर हैं और यह हैं मेरी चूड़ियाँ, यह सब शादी के अवसर पर पिताजी ने मुझे दिया था। तुम्हारी गृहस्थी जो बसाने

आएगी, यानी मेरी बहूरानी, उसके लिए मैं यह सब वस्तुएँ दिए जा रही हूँ, मेरी ओर से उसे भेंट। यह उसकी सास की ओर से आशीर्वाद है, इसे तुम लौटाना मत बेटा !"

शारदा दूर पर खड़ी राखाल के चेहरे की तरफ देख-देखकर मुस्कराती रही।

राखाल ने एक बार उधर देखकर सिर नीचा कर लिया। फिर कुछ दुःखी होकर बोला, "माँ ! अपने लड़के की विद्या-बुद्धि को आप जानती हैं। फिर इतना भारी काम मुझ पर छोड़े जा रही हैं ? मैं क्या इन सबका प्रबन्ध कर पाऊँगा ? तारक के सुपुर्द कर जातीं। वह वकील है, जमीन-जायदाद के मामले समझ सकता है। उससे यह व्यवस्था कराना अच्छा रहेगा।"

"क्या तू मुझे निश्चिन्त होकर नहीं जाने देगा राजू ?" सविता ने कहा, प्यार से बोलीं, "जिस उद्देश्य को लेकर मैंने एक दिन यह सब तुम्हारे बाबूजी के हाथों से अपने हाथों में ले लिया था, वह उद्देश्य तो पूरा नहीं हुआ बेटा ! तुम्हारे बाबूजी का व्यापार उस दिन डूब रहा था, उसके साथ ही यह भी डूब जाता, तभी ठीक था। शायद उस समय मैं आज से अधिक सन्तोष अनुभव करती।"

राखाल ने दुःखी होकर कहा, "लेकिन इस विषय में आप कुछ भी कहें नई-माँ ! मैं इन रुपयों-पैसों के मामले में एकदम अनाड़ी हूँ।"

सविता ने धीमे स्वर में कहा, "डरो नहीं बेटे, इस विषय में तुम जो कुछ व्यवस्था करोगे वही कल्याणकारी होगी।"

इकतीस

सर्वप्रथम इन लोगों ने द्वारिका की यात्रा की, वहाँ से फिर भ्रमण करते-करते गुजरात, राजपूताना होते हुए आगरा पहुँच गए।

विमल बाबू पूछने लगे, "सविता ! अब मथुरा-वृन्दावन चलोगी न ? यहाँ से बिलकुल निकट है…।"

सविता ने कहा, "श्रीकृष्णजी की लीला-भूमि देखी, द्वारिका देखी, मथुरा-वृन्दावन ही अब क्यों शेष रहें—चलो न !"

वे लोग मथुरा आकर एक परिचित धनी की कोठी में ठहर गए। व्यापार के सम्बन्ध में उनका अच्छा परिचय था।

सेठ ने अपने अतिथि भवन में रहने के लिए व्यवस्था कर दी और अपनी एक कार घूमने के लिए दे दी।

उसी कार से ये लोग वृन्दावन पहुँचे। यहाँ आकर फिर विमल बाबू ने पूछा, "सविता ! ब्रज बाबू से भेंट करोगी ?"

सविता ने कहा, "पागल हो गए हो ! हम लोग तो भगवान् का दर्शन करने आए हैं। दर्शन करके लौट जाएँगे।"

फिर कुछ देर चुप रहकर सविता ने कहा, "सुनते हैं, वृन्दावन में गोविन्दजी की आरती बड़ी सुन्दर होती है, क्या आरती देखकर नहीं चलोगे ?"

विमल बाबू बोले, "आरती देखकर ही चलेंगे।"

एक लम्बे-चौड़े मैदान के किनारे वृक्ष के नीचे मोटर खड़ी कर, दरी बिछाकर वे लोग विश्राम करने लगे।

महादेव दरबान ने कार से चाय बनाने का सामान उतारकर स्टोव जलाया और पानी गर्म करने लगा।

सविता चाय नहीं पीतीं, लेकिन बनाती वे ही हैं।

"महादेव ! आज तुम्हीं चाय बना दो। मैं घूमते-घूमते थक गई हूँ।" सविता ने थके स्वर में कहा।

"अगर तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है, तो फिर मन्दिर की भीड़-भाड़ में जाने की क्या आवश्यकता है ?" विमल बाबू ने कहा।

"ना, ऐसी कोई बात नहीं है। आरती देखूँगी। सोच लिया है तो बिना देखे नहीं जाऊँगी।"

पश्चिम में सूरज डूब गया।

गाढ़े लाल रंग के प्रकाश से सारा नीला आसमान और विस्तृत मैदान लाल रंग का हो गया।

विमल बाबू ने कहा, "चलो, मन्दिर में चलें, देर हो जाने पर भीड़ के

बीच से जाने में कठिनाई होगी।"

मानो सविता ने सोते से चौंककर कहा, "तो चलो।" फिर गाड़ी में बैठकर एकाएक जाने क्या सोचकर बोलीं, "देखो तो, हम लोग थोड़ी देर बाद ही मन्दिर जाएँगे। पहले आरती के शंख-घड़ियाल बजने दो। भला ऐसी भी क्या भीड़ होगी?"

विमल बाबू इसके उत्तर में चुप रहे।

समय बहुत हो चुका था। इस समय मन्दिर के घण्टे-घड़ियाल बजने लगे।

विमल बाबू आदि ने मन्दिर में प्रवेश किया।

गोविन्दजी की आरती होनी आरम्भ हो गई थी।

मूर्ति के आगे खड़ी होकर सविता दर्शन कर रही थीं, तो भी जैसे उनकी दृष्टि मूर्ति पर स्थिर नहीं थी, आसपास दौड़ती-फिरती थी।

एकाएक उन्होंने देखा कि उसी बरामदे के एक कोने में उनके स्वामी खड़े हैं। दोनों हाथ जोड़े एकटक भगवान् पर दृष्टि जमाए, होंठ धीरे-धीरे काँप रहे हैं, जप कर रहे हैं ऐसा मालूम होता है।

आरती समाप्त हुई। भीड़ छँट गई।

विमल बाबू आगे बढ़कर आए और व्रज बाबू के चरण छुए। साँप के काटे के समान पीछे हटकर वह बोल उठे, "गोविन्द! गोविन्द! यह क्या? भगवान् के मन्दिर में मुझे प्रणाम किया! महानरक में डुबो दिया।" उनका शरीर काँप रहा था।

विमल बाबू सकपकाकर बोले, "मैं नहीं जानता था कि मन्दिर में किसी को प्रणाम नहीं किया जाता। क्षमा कीजिएगा।"

"गोविन्द, गोविन्द, आप विमल बाबू हैं? चलिए, चलिए, उधर आँगन में तुलसी कुंज की ओर चलकर बैठेंगे।"

विमल बाबू ने कहा, "अच्छा, चलिए।"

इसी समय व्रज बाबू भगवान् की मूर्ति के आगे लम्बे लेटकर बार-बार अपने नाक-कान पकड़कर शायद प्रणाम के अपराध की क्षमा माँगने लगे।

सविता पृथ्वी पर पड़े स्वामी की ओर देख रही थीं।

लम्बे प्रणाम के बाद व्रज बाबू सविता और विमल बाबू के साथ

मन्दिर के एक कोने पर जाकर खड़े हो गए।

ब्रज बाबू की दाढ़ी, मूँछ और चेहरा घुटा हुआ है। पीछे की ओर सफेद बालों की चोटी झूल रही है। गले में तुलसी-माला है। माथे पर तिलक है, हाथ में सुमरनी और कन्धे पर हरिनाम का दुपट्टा। गोरा-लम्बा शरीर बुढ़ापे के कारण आगे को थोड़ा झुक गया है।

ब्रज बाबू ने कहा, "गोविन्दजी ने इस दीन-हीन पर बहुत कृपा की है। ब्रजभूमि में मैं आ गया हूँ, ब्रज रेणुका जिसने पाई है, यमुना-स्नान किया है, गिरि-गोवर्धन देखा है—उसके लिए फिर क्या कहीं अकल्याण है? वृन्दावन में तो सब प्रकार कुशल है। संसार में मेरे लिए अब कोई कामना शेष नहीं रही।"

सविता ने आगे आकर कहा, "राजू के मुँह से सुना था कि तुमने शायद यहाँ आकर वैष्णव बाबा से दीक्षा ले ली है। क्या दिन-रात उसी को लेकर निमग्न रहते हो?"

उन्होंने कुछ रुक-रुककर कहा, "तुम क्या जानो नई-बहू, मेरे जीवन के शेष दिनों में गोविन्दजी ने मुझे अपने चरणों में बुला लिया है, बहुत भारी दया की है। यहाँ आकर सचमुच ही दुनिया का सब दुःख चला गया।"

सविता ने विस्मित होकर ब्रज बाबू की ओर देखकर कहा, "तुम्हारी यह बात तो घुड़दौड़ में सब-कुछ हारकर मदिरा पीकर नशे में चकनाचूर हो जाने वाले खिलाड़ी के समान है— इस आनन्द का मूल जानते हो?"

मन्दिर में कीर्तन-मण्डली गा रही थी, "प्रेमानन्द अमृत का सागर डूबे हरि भक्त तृप्त हुए···।"

ब्रज बाबू के दोनों नेत्रों से झर-झर आँसू गिरने लगे। विह्वल होकर बोले, "नई-बहू, अब यही प्रार्थना करो कि इस मन्दिर का उन्माद कभी न उतरे।"

"और तुम्हारी बेटी? मेरी रेणुका?" गम्भीर स्वर से सविता ने कहा, "वह कहाँ है?"

"कौन मेरी लड़की? अब अधिक अपना-पराया न करो नई-बहू, यहाँ तो सभी तुच्छ हैं—अपना कहलाने वाला कोई भी नहीं। यहाँ तो केवल ब्रजनंदन श्रीकृष्ण ही अपने हैं—वे ही सब-कुछ हैं। मैंने रेणुका को उन्हीं के

चरणों में अर्पित कर दिया है। जब तक उसे अपना करके मानता रहा, सोच-विचार में भटकता रहा। अब तो उन्हीं के हाथों में तुम्हारी रेणुका को सौंपकर निश्चिन्त हो गया हूँ। वे जो कुछ प्रबन्ध करेंगे उसे तोड़ने का साहस किसी में नहीं है। हृदय में बैठकर वे हँस-हँसकर जिस ओर को उँगली हिलाते हैं, उसी तरफ का पासा पलट जाता है। हम उस कठपुतली वाले की कठपुतलियाँ हैं। मनुष्य अपनी इच्छा से कुछ कर ही नहीं सकता, उसी की इच्छा सब-कुछ है।"

न जाने सविता क्या उत्तर देने जा रही थीं कि सहसा आवाज आई, "बाबा…!"

इस आवाज से चौंककर सविता ने पीछे मुड़कर देखा तो रेणुका। उनका मुख उदास हो गया, बाल रूखे हैं, मुख पर दरिद्रता का चिह्न दिखाई दे रहा है। शरीर पर आधी मटमैली वृन्दावनी धोती है, उसके गले में भी तुलसी की माला है, मस्तक पर चन्दन का तिलक है।

बेटी को देखकर सविता पागल-सी हो गईं।

लेकिन रेणुका ने सविता की ओर बिना देखे ही पुकारा, "बाबा, घर चलिए, बहुत रात हो गई।"

"तूने अपनी माँ को नहीं पहचाना रेणुका?" उन्होंने कहा।

"पहचान लिया है। लेकिन मन्दिर में प्रणाम नहीं किया जाता।" माँ के चेहरे की ओर एक बार शान्त दृष्टि से देखकर उसने पिता की ओर घूमकर कहा, "चलिए बाबा, दिन-भर एकादशी का व्रत रख चुके हो, अब कब प्रसाद लोगे?"

माँ के प्रति बेटी का ऐसा पराया व्यवहार देखकर वह मन-ही-मन बहुत व्यथित हुए। शायद इसीलिए सविता से कहा, "नई-बहू, तुम एक दिन के लिए गोविन्दजी की कुटी में सेवा करने के लिए…।"

एक बार रेणुका के चेहरे की ओर देखकर सविता ने उनसे कहा, "ना। मुझ जैसी अपवित्र स्त्री के लिए यहाँ फिर आना ठीक नहीं है।"

व्रज बाबू ने दाँतों से जीभ काटकर कहा, "गोविन्द, दीनदयाल, दीनबन्धु तो पतितपावन हैं। वह तो आश्रयहीन के आश्रयदाता हैं, नई-बहू!"

हृदय के उमड़ने वाले रुदन को किसी तरह रोककर सविता ने कहा,

"तोते के समान यह सब केवल मुख से बोली जाने वाली बातें हैं, तुम लोगों का धर्म तुम लोगों को कैसा बना देता है, यह बात तुम लोग अपने नेत्रों से नहीं देख सकते। जिस धर्म में क्षमा नहीं है, यह धर्म अधर्म से क्या कम है?"

सविता यह सब कहकर तेज चाल से मन्दिर से बाहर चली गईं। पागल की भाँति ब्रज बाबू से विमल बाबू ने कहा, "मुझे आपसे कुछ कहना है, आपको कब अवकाश मिलेगा ?"

"जब आप कहें।"

"अच्छी बात है, मैं कल दोपहर को आऊँगा। आपका घर···?"

"मन्दिर से बाहर निकलकर बाईं ओर के रास्ते से थोड़ी दूर जाने पर दाहिने हाथ की ओर एक गली गई है। मैं वहीं रहता हूँ। बाबा घनश्याम का कुंज पूछने से मालूम हो जाएगा···"

"बाबा, कल तो गुरु महाराज के कुंज में अखंड कीर्तन होगा, वैष्णव सेवा होगी। कल तो तमाम दिन हम लोग वहीं रहेंगे।" रेणुका बीच में ही बोल पड़ी।

ब्रज बाबू ने कहा, "तुमने अच्छी याद दिला दी, बेटी! विमल बाबू, कल के लिए क्षमा कीजिए। कल तमाम दिन मैं अपने गुरुदेव बाबा बैकुण्ठ दास की कुटी में रहूँगा। परसों प्रातःकाल आप आ जाएँ तो···।"

"अवश्य। परसों प्रातःकाल ही मैं आपके पास आऊँगा। प्रणाम।"

"गोविन्द, गोविन्द !"

सविता ने कार में बैठकर गद्दे पर शरीर डालकर कहा, "अब और जगह मारे-मारे फिरना मुझे पसन्द नहीं। अब आराम करना चाहती हूँ, दयामय।"

"क्या वृन्दावन में ही रहना निश्चय किया है ?" विमल बाबू ने पूछा।

"ना। यहाँ तो मुझे अब एक पल भी रहना कठिन हो रहा है। मुझे सिंगापुर ले चलो।" व्यथित स्वर में सविता बोलीं।

"यह क्या कह रही हो सविता ?"

"हाँ, कल प्रातः ही यात्रा की तैयारी कर लो। एक दिन का भी विलम्ब न हो।" सविता ने कहा।

"इस प्रकार अधीर न होओ सविता, कल तो जाना हो नहीं सकेगा। रेल की तो यात्रा है नहीं, जहाज से जाना होगा। पहले कलकत्ता जाना पड़ेगा। इसके अलावा मैंने ब्रज बाबू को अभी वचन दे दिया है कि परसों प्रातःकाल उनसे अवश्य भेंट करूँगा इसलिए कल रुके बिना तो काम चलेगा नहीं। हाँ, परसों रात की ट्रेन से हम लोग अवश्य मथुरा छोड़ सकेंगे।"

"ना, मुझसे यह न हो सकेगा। यहाँ तो अब मेरी साँस घुट रही है। अब तुम किसी प्रकार मुझे इस देश से सदैव के लिए कहीं दूर विदेश ले चलो। बहुत दूर, जिस जगह रीति-नीति, समाज, मानव सब-कुछ और प्रकार का हो। मैं अपना सब अतीत वहाँ धो डालूंगी।"

विमल बाबू सविता के मन की दशा समझकर मौन हो गए।

दूसरे दिन !

सुबह-सुबह विमल बाबू ने नींद से जागकर देखा, सविता के कमरे के द्वार अभी तक बन्द हैं।

विमल बाबू सदा ही विलम्ब से उठते हैं, पर सविता की प्रातः ही उठने की आदत है। इतना विलम्ब हो जाने पर सविता के द्वार बन्द देखकर वे कुछ चकित हुए। द्वार के सामने आकर खड़े हुए और सोचने लगें कि धक्का दूँ या नहीं कि ठीक उसी समय द्वार खोलकर सविता बाहर आ गईं। दोनों आँखें लाल, रात-भर जागने की क्लान्ति और कालिमा चेहरे पर छायी हुई थी, मानो सविता रात-भर योंही पड़ी रही थीं।

विमल बाबू ने संतप्त दृष्टि से उनकी तरफ देखा लेकिन कुछ पूछा नहीं।

सविता ने कुछ लजाकर कहा, "देखती हूँ, दिन बहुत चढ़ आया। तुमने अभी तक चाय नहीं पी होगी। मैं अभी तैयार करती हूँ। जरा स्नान करके कपड़े बदल लूँ।"

"चाय ठाकुर बना देगा, तुम विश्राम करो।"

"ना, वह ठीक प्रकार से नहीं बना सकेगा। मुझे अधिक समय न लगेगा।" और इसके बाद वह फिर बोलीं, "रात में मुझे ठीक तरह नींद नहीं आई। कल तो मेरा मस्तिष्क ऐसा बिगड़ गया कि रात की नींद हराम हो गई। अभी स्नान करके आती हूँ।" कहकर तौलिया ले सविता स्नाना-

गार की ओर चल दीं।

चाय ढालते-ढालते सविता ने निश्चिन्त भाव से कहा, "कल मैंने अच्छी तरह विचार कर उनके विषय में कर्त्तव्य निश्चय कर लिया है। समझ गए न ?"

"किसके विषय में ?" विमल बाबू ने पूछा।

"उन्हीं लोगों के विषय में···।"

यह 'उन्हीं' का प्रयोग किसके लिए किया गया है, विमल बाबू समझ गए। पूछा, "क्या तय किया है सविता ?"

"मैंने सिंगापुर ही जाना तय किया है।"

"मेरे विचार से अभी कुछ दिन और तीर्थ-भ्रमण किया जाए, उसके बाद भी अगर मन करे तो सिंगापुर चलेंगे। ठीक रहेगा न ?"

"ना, अब अधिक तीर्थ-यात्रा नहीं करूँगी। मनुष्य के हाथों से बनाई मूर्तियों के खेल-तमाशे इन तीर्थों में भटकने से हृदय को भारी जिज्ञासा का जवाब कहीं नहीं मिलता। इस तमाशे में और चाहे किसी का मन भूला रहे, पर जिसे सत्य की चाहना है उसका मन भूला नहीं रह सकता। मैं अब विश्राम चाहती हूँ, विमल बाबू !"

"परन्तु जिस स्थान पर तुम विश्राम की इच्छा कर रही हो, यदि उसी जगह भी तुम्हारी इच्छा पूरी न हो सकी तब क्या होगा ? तुम्हारे हाथों से, जीवन के अन्त में, ईश्वर ने जो कुछ मेरे पास भेजा है, वह मामूली नहीं है। जो फूल टहनी से टूटकर नीचे आ गिरा, वह फूल फिर कभी लौटकर टहनी में नहीं लग सकेगा। मृगतृष्णा के समान मारे-मारे फिरना अब व्यर्थ है।"

"इस बात को मैंने अच्छी प्रकार से जान लिया है।" बहुत सावधानी से सविता ने कहा।

"न हो तो सिंगापुर तार दे दूँ, सिंगापुर वाले जहाज में दो केबिन हमारे लिए रिजर्व हो जाएँगे ?"

सविता ने सिर हिलाकर स्वीकृति दे दी।

विमल बाबू अगले दिन सवेरे कार में बैठकर मथुरा से वृन्दावन को चलने लगे तो सविता से बोले, "उन्होंने तुम्हें भी बुलाया है। यदि चलो, तो मैं समझता हूँ, कोई हानि न होगी।"

सविता इसके लिए तैयार न हुईं। विमल बाबू हारकर अकेले ही वृन्दावन पहुँचकर ब्रज बाबू का घर खोजकर उनके डेरे पर पहुँचे।

वहाँ देखा कि रेणुका एक दिन पहले की रात से हैजे से बीमार पड़ी है। इलाज और सेवा का कुछ भी प्रबन्ध नहीं है। केवल हरिनाम का कीर्तन सुनाया जा रहा है।

रेणुका के पिता भगवान् के आगे लम्बे लेटे हुए हैं। बीच-बीच में वहाँ से उठ मृत्यु के मुख में पड़ी बेटी के मुँह में भगवान् का चरणामृत डाल जाते हैं और फिर दुःखी मन लिए भगवान् की मूर्ति के आगे जा लेटते हैं। उनके गुरुदेव बाबा बैकुण्ठदास की कुटी में सूचना भेज दी गई है। उन्होंने आश्रम से एक वैष्णवी दासी को भेज दिया है, पर वह इस विषय में कुछ भी नहीं जानती। अर्धचेतना कन्या के प्यास लगने पर पानी और बाबा बैकुण्ठदास की दी हुई दवाई और भगवान् का चरणामृत दिया जा रहा है।

रोगिणी की चारपाई और वस्त्रों की दशा भी उनकी दृष्टि से छिपी नहीं रही। यह दशा देखकर वह तुरन्त सविता को लेने के लिए मथुरा लौट चले। रेणुका की दशा चिन्ताजनक हो गई है, यह समझने में उन्हें देर न लगी। सूचना पाकर सविता जैसे पत्थर-सी हो गईं।

विमल बाबू अधिक विलम्ब न करके उन्हें साथ लेकर वृन्दावन की ओर चल दिए। कार में बैठी सविता के चेहरे की ओर उस समय देखा नहीं जा रहा था। भूकम्प-सा उनके हृदय में आ रहा था।

एकाएक पानी में डूबते आदमी की तरह छटपटाकर वह बोलीं, "ओह, गाड़ी इतने धीरे क्यों चल रही है? मेरा तो दम घुट रहा है।"

विमल बाबू ने दो-एक सान्त्वना की बातें कहीं भी पर सविता के कानों में आवाज नहीं पहुँची।

सविता फिर एकाएक कह उठीं, "दयामय, तुमने तो अनेक देशों के अनेक इतिहास पढ़े हैं। स्वयं माँ अपनी बेटी की इतनी बड़ी दुर्गति का कारण हुई है, ऐसा कहीं पढ़ा है?"

विमल बाबू ने कोई उत्तर न दिया।

मार्ग में एक जगह कुएँ के पास पानी भरने के लिए कार रुकी। किनारे

के किसानों की झोंपड़ियों से बालकों के कातर क्रन्दन की ध्वनि आ रही थी।

सविता चौंककर सिहर उठीं और व्यथित कण्ठ से कहने लगीं, "ओह! इन बालकों को क्या हुआ है? क्यों रो रहे हैं? सुनते हो दयामय?"

विमल बाबू सविता की ऐसी दशा देखकर बहुत दुःखी हुए। बोले, "कुछ बात नहीं है। छोटे बच्चे तो ऐसे रोते ही रहते हैं। लेकिन सविता, तुम यदि चिन्तित होओगी तो वहाँ पहुँचकर रोगी की सेवा-सुश्रूषा कैसे कर सकोगी?"

सविता ने घबराकर कहा, "ना, मैं जरा भी नहीं घबरा रही हूँ। ये कुछ है, सब वहीं पहुँचकर एक बार उसे छाती से लगाकर ठीक हो जाएगा। वह चाहे मुझ पर क्रोध करे, चाहे घृणा करे। घृणा करने की ही बात है। मैंने चाहे कैसी ही भूल क्यों न की हो, फिर भी मैं उसकी माँ हूँ। इस बात को क्या वह समझ न सकेगी? अवश्य समझ लेगी, देख लेना। यह उसका क्रोध नहीं, घृणा नहीं, माँ पर अभिमान है। मेरी बेटी बचपन से ही अभिमानिनी है।"

विमल बाबू एक लम्बी साँस लेकर दूसरी ओर देखने लगे। बहुत जल्द ये लोग मकान पर पहुंच गए।

मकान के सामने अर्थी का सामान और गेरुआ वस्त्रधारी वैष्णवों की भीड़ देखकर विमल बाबू ने शंकित दृष्टि से सविता की ओर देखा।

स्थिर, धीर मुखमण्डल पर अब और व्यथा नहीं थी। विमल बाबू चौंक उठे। याद आया, जिस दिन पहली बार उन्होंने सविता को देखा था, उस दिन भी इसी प्रकार की वेशभूषा थी, दुःख की छाया लिए हुए थी।

सविता ने अधीरता प्रकट नहीं की।

कार से उतरकर सीधी घर में घुसती चली गईं। शोक से व्रज बाबू भरे-भरे स्वर में बोले, "नई-बहू, तुम आई हो! देखो तो, ये सब रेणुका को यहाँ से ले जाने के लिए जिद कर रहे हैं। मैंने इनसे कहा है—यह नहीं हो सकता। जिसकी सम्पत्ति है उसे आ जाने दो, इसके बाद तुम्हारा मन हो सो करना। तुम्हारी धरोहर मैं सुरक्षित नहीं रख सका, उसे खो दिया। मुझे क्षमा कर दो सविता! मुझे क्षमा कर दो!" वे फूट-फूटकर रो पड़े।

सविता चुप थीं।

कलेजा थामकर धूल-भरे आँगन में पड़े बिस्तर की ओर देखती रहीं। जमीन पर मैले कपड़ों में लिपटाकर ठण्डा शरीर पड़ा हुआ है। आसपास पानी का लोटा, चरणामृत-पात्र, दवाइयाँ आदि हैं।

सविता ने आगे बढ़कर काँपते हाथों से शव के मुँह पर से वह मैला कपड़ा हटा दिया। अत्यन्त शीर्ण, विवर्ण, रक्तहीन मुख है, आँखें भीतर को धँस गई हैं। चेहरे और गले की हड्डियाँ ऊपर को उभर आई हैं। स्नेहमयी माता के नयनों में उस समय मानो सारी दुनिया की वेदना आकर इकट्ठी हो गई थी। रेणुका के ठण्डे पड़े प्राणहीन शरीर के शीतल मस्तक का एक बार चुम्बन लिया। फिर शव को ले जाने वाले आ गए।

यह देखकर सविता स्वयं ही अलग हटकर खड़ी हो गईं। लेकिन बूढ़े पिता अपने सम्पूर्ण जीवन का संयम और साधना और भगवद्ज्ञान भूलकर आज बालक के समान रो-रोकर मिट्टी में लोटने लगे। पुकारते रहे, "बेटी, अपने इस बूढ़े बाप को किसके भरोसे छोड़े जाती हो, रेणुका?"

सब-कुछ शोकमग्न और वेदना से भरा-भरा।

बत्तीस

कई दिन व्यतीत हुए।

रेणुका के मरने का समाचार पाकर कलकत्ते से राजू आ गया। ब्रज बाबू की छोटी पत्नी आ गईं। इन्हीं इने-गिने दिनों के बीच, सविता के शरीर पर आकस्मिक बुढ़ापे के चिह्न दिखाई देने लगे। सूखे होंठों पर लावण्य बिलकुल न रहा। शोक में डूबे पति की सेवा का समस्त भार अपने पर लेकर सविता दिन-रात इसी काम से लगी रहने लगीं।

घर के आँगन में बैठकर सविता खीलें बीन रही थीं। सिर पर की धोती बहुत मैली और जगह-जगह पर तेल, घी के धब्बे लगे हुए थे। माथे की माँग उलटी-सीधी, टेढ़ी-मेढ़ी हो गई थी।

इसी समय विमल बाबू आकर उपस्थित हुए।

"आप कब तक यहाँ रहेंगे ?"

"जब तक तुम कहो।" विमल बाबू ने उत्तर दिया।

"छोटी बहू आ गई हैं, उनके आने से पहले ही मुझे यहाँ से चला जाना चाहिए था। आपका क्या विचार है ?"

"मुझसे अच्छा तो स्वयं ही विचार सकती हो।"

"लेकिन यह सब उन्हें निश्चिन्तता से नहीं रहने देंगे। यहाँ से उन्हें कलकत्ते ले जाने के लिए ही ये लोग यहाँ आए हैं।"

"इसमें क्या हानि है ?" विमल बाबू ने पूछा।

"ना, ऐसा नहीं हो सकता। ऐसे असहाय रोग-शोक से जीर्ण व्यक्ति को उनके अन्तिम सहारे वृन्दावन से अलग कर देने के समान और क्या निर्ममता हो सकती है ? हृदय की पुकार को यदि सुन पातीं तो छोटी बहू यहीं रहकर स्वामी की सेवा करतीं।"

विमल बाबू ने कोई उत्तर नहीं दिया।

सविता ने फिर कहा, "इस धूल-भरे देश में तुम्हें खूब दुःख हो रहा है, मुझे मालूम है। अब तुम जाओ। मैं यहीं रह जाऊँगी।"

"ठीक है।" कहकर विमल बाबू ज्योंही चले कि पीछे से सविता ने पुकारा, "सुनो तो, एक बात का उत्तर देकर जाना।"

विमल बाबू ठहर गए।

सविता फिर कहने लगीं, "जन्म-जन्मान्तर में भी क्या मुझे इसी क्षमा-हीन ग्लानि को सहन करना होगा ?"—गला उनका रुँधा हुआ था, कहने लगीं, "रेणुका ने एक दिन मुझे 'माँ' कहकर पुकारा था, अपने हाथों से मेरी सेवा की थी—इतने पर भी क्या मेरे मुँह का कलंक नहीं छूटा था ?"

"तुम्हारा हृदय ही इस बात का सही उत्तर दे सकता है सविता।"

"अच्छा, एक बात और पूछनी है। मानव के हृदय का एकमात्र अव-लम्ब जब टूट जाए—मानव तब किस प्रकार जीवित रहेगा, किसके सहारे रहेगा ?"

"मेरे खयाल से तुमने जो खो दिया है, उसे तुम संसार के अभागे लोगों के बीच में ढूँढ़कर कहीं पा सकोगी।"

सविता का विचार ठीक निकला। छोटी बहू अपनी एक बहिन को

साथ लेकर पति को अपने साथ कलकत्ते ले जाने के लिए आई थीं।

इस विषय में व्रज बाबू के कुछ कहने के पूर्व ही सविता ने कहा, "उन्हें ऐसी हालत में कलकत्ता ले जाना ठीक नहीं। जीवन का अन्तिम कष्टदायक समय वृन्दावन में ही काटने के लिए इन्हें रहने दो।"

"यहाँ रहकर एक मानव ने तो बिना इलाज के अपने प्राण गँवा दिए। अब यदि ये बीमार पड़े तो कौन देखभाल करेगा ?"

"सेवा करनी चाहो तो तुम स्वयं यहाँ रह सकती हो। उन्हें यहाँ से ले नहीं जा सकोगी।" सविता ने उत्तर दिया।

"आपको मैं पहचान नहीं पाई।"

"मैं तुम्हारी ससुराल की एक स्त्री हूँ—सम्बन्ध की। तुमसे मेरा कभी मिलाप नहीं हुआ। तुम मुझे पहचान न पाओगी।"

छोटी बहू में आसानी से कोई बात समझ जाने की बुद्धि न थी। कहने लगीं, "भैया की राय नहीं थी कि मैं वृन्दावन आऊँ। बहुत हाथ-पाँव जोड़ने पर दो-चार दिन के लिए ही उन्होंने मुझे भेजा है। स्वामी को यहाँ से ले जाना ही मेरे लिए उचित है।"

"लेकिन उनके लिए यह बात हर प्रकार से अनुचित है।"

"यदि ये मेरे साथ नहीं जाएँगे तो यहाँ देखभाल कौन करेगा ? हम लोगों को कल तक अवश्य लौट जाना चाहिए।"

"जिस समय आप लोगों में से कोई भी उनका अपना नहीं था, उन्हें पहचानता भी नहीं था, उस समय जिस व्यक्ति पर उनकी सम्पूर्ण देखभाल का भार था, उस व्यक्ति ने फिर उनका भार अपने ऊपर ले लिया है। अपने भैया से बता देना।"

"वह व्यक्ति कौन है ?" छोटी बहू ने उत्कण्ठा से प्रश्न किया।

"पहचान न पाओगी, बहन ! अपने भाई से कहोगी तो वे पहचान लेंगे।"

अपनी छोटी बहन के साथ छोटी बहू कलकत्ता लौट गईं।

सिंगापुर लौटने की व्यवस्था विमल बाबू भी करने लगे। जब वे रवाना होने लगे तब सविता ने अपराधिन की तरह नमस्कार करके कहा, "तुम

मुझे गलत मत समझना। मेरे भाग्य में कदाचित् जीवन में बार-बार आश्रय-हीन होना ही लिखा है।"

विमल बाबू मौन रहे। कार में बैठे। कार धूल उड़ाती वृन्दावन की पवित्र धूलि उड़ाती हुई आँखों से ओझल हो गई।

सविता स्तब्ध। उनके रक्तहीन पांडुर मुख की ओर देखकर राखाल ने शंकित होकर कहा, "माँ...माँ...ओ नई-माँ!"

सविता ने राखाल की पुकार सुनी। अचानक वह धरती पर पछाड़ खाकर गिर पड़ीं और तड़पकर क्रन्दन कर उठीं, "राजू! मेरी बेटी रेणुका ने मुझे जिस दिन क्षमा नहीं किया, उसी दिन मैं समझ गई थी कि संसार में मैं किसी से भी क्षमा नहीं पा सकूंगी।"

राजू कुछ नहीं बोला। उसके नेत्र भर-भर आए।

कई माह बाद!

सविता को विमल बाबू का एक पत्र मिला। सिंगापुर से। लिखा था —रेणुका की माँ! तुम्हारी तीर्थयात्रा समाप्त हो गई है और अब मेरी विश्व-यात्रा आरम्भ। तुम्हारे प्रति मेरे मन में कोई शिकवा-शिकायत नहीं है। ऐसा तुम कभी सोचना भी नहीं। तुम्हारा परिचय मेरे जीवन के लिए अनमोल है। मैं हतभागा जीवन में अपना घर नहीं बसा पाया। केवल सम्पदा ही एकत्रित कर सका। यौवन के मधुर व प्रणय-भरे क्षण तो आपाधापी में ही बीत गए। अब प्रौढ़ता ने बुढ़ापे को दस्तक दे दी है। बस, एक गृहस्थ का आनन्द तुम्हारे साथ पाकर मैं कृतज्ञ हो उठा हूँ। मैं हमेशा तुम्हारा ऋणी रहूँगा।

सविता! मेरे मन में तुम्हारे प्रति अथाह श्रद्धा और गम्भीर प्रेम है। मेरी जीवन-नैया तट से कितनी ही दूर रहे, उसका लंगर तो तुम्हारे पास रहेगा।

हाँ, जब कभी मेरी जरूरत हो तो मुझे तार दे देना, विश्व के किसी भी स्थान में क्यों न रहूँ, मैं आऊँगा, विश्वास रखो।

मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि धरती पर एक प्राणी ऐसा भी है जो अन्त समय सारी बाधाओं को पार करके मेरे पास आ सकता है।

जीवन का यह अन्तिम विश्वास क्या मेरे जीवन का विराट अवलम्बन नहीं है ?

अनेक स्मृतियों के सुमन अर्पण करता है ।

—विमल

सविता के नयनों से अश्रुओं के निर्झर झर-झर बहने लगे ।

०००



पूजा के फूल कितने पवित्र होते हैं। उनसे भी अधिक पवित्र हैं शरत् के उपन्यास। तुलसी की पवित्रता सूख सकती है, मगर शरत् के उपन्यासों की हरियाली पवित्रता अमर है। पढ़ते-पढ़ते लगता है जैसे गंगा की धारा में मन-प्राण निर्मल हो रहे हों। पढ़ने पर दिमाग में दीवालियां झिलमिला उठती हैं।

जो लोग कहते हैं कि आज की पीढ़ी को उपन्यासों ने बिगाड़ दिया है, उन्हें हम अपनी शरत्-उपन्यास-माला से अपनी मनपसन्द के फूल चुनने की दावत देते हैं। हमें विश्वास है कि धीरे-धीरे आप पूरी माला खरीदने पर मजबूर हो जायेंगे।

याद रहे, यह 'सुबोध'-प्रकाशन है!

सुबोध पब्लिकेशन्स